गुरु अर्जुन देव

राधास्वामी सत्संग ब्यास

गुरु अर्जुन देव

महिन्दर सिंह जोशी

राधास्वामी सत्संग ब्यास

ॐ अन्नपूर्णा®
Charitable Trust
WZ-5A/1, Ram Nagar,
Choukhandi Chowk,
New Delhi-110018

विषय सूची

प्रकाशक की ओर से 7
पाठकों से निवेदन 9

जीवन 11
एक परीक्षा 25

उपदेश 29
मिलन की बरीआ 31
साहिब मेहरबान 45
मित्र विचोला 74
नउ निध अंम्रित 111
अंधी गलियाँ 160
जल मह कमल 175
चरण-शरण 190
निमख-निमख बलिहार 198
एक विनती 212

वाणी 215
सुखमनी 217
बारह माहा 231
बावन अखरी 246
सलोक सहसक्रिती 253

दिन-रैन 259
डखणे यानी श्लोक 262
गुरु की रहमत 267
सर्वसमर्थ 271
गुरु की महिमा 274
मनुष्य बेचारा 276
एक ही टेक 281
प्रभु की कृपा से 284
नाम का दाता 286
सेवा 288
मालिक की मेहर और बख़्शिश 291
एक नाम 293
हरिरस का अमृत 295
सहज अवस्था 297
झूठे सहारे 301
विषय-विकार 306

संदर्भ सूची 309
संदर्भ ग्रंथ 323
परमार्थ संबंधी पुस्तकें 325

जीवन

गुरु अर्जुन देव का जन्म गोइंदवाल में दिनांक 25 अप्रैल, 1563ई., विक्रमी संवत् 1620 के कृष्ण पक्ष की सप्तमी को हुआ था। आपके पिता गुरु रामदास जी थे और माता बीबी भानी गुरु अमरदास जी की सुपुत्री थीं।

आपने गुरवाणी का अध्ययन भाई बुड्ढा जी की देखरेख में किया, पंडित केशव और गोपाल से हिंदी और संस्कृत सीखी। फ़ारसी की शिक्षा के लिए आप स्थानीय सरकारी पाठशाला में गए। जिन महापुरुषों की गोद में पलकर आप बड़े हुए, वे आध्यात्मिक जगत की महान हस्तियाँ थीं। इनके अलावा आप कई विद्वान और कीर्तिमान व्यक्तियों के संपर्क में आए जो आपके पिताजी से मिलते रहते थे। इस प्रकार आपके व्यक्तित्व के विकास के लिए संपूर्ण वातावरण उपयुक्त था। इसी लिए अर्जुन देव ने न केवल उस समय की प्रचलित भाषाओं में ही योग्यता प्राप्त की, बल्कि विभिन्न धर्मों के दर्शनों का भी भलीभाँति अध्ययन किया।

आपके मासूम बचपन की एक घटना का वर्णन अकसर किया जाता है। एक दिन जब आप कुछ साथियों के साथ खिद्दो खूंडी (एक खेल) खेल रहे थे, तो आपकी गेंद गुरु अमरदास जी के पलंग के नीचे जा गिरी। बालक अर्जुन गेंद का पीछा करते हुए बिना किसी झिझक के अपने नानाजी के पलंग के नीचे जा घुसे और उसे ज़ोर से हिला दिया। बजाय इसके कि गुरु साहिब अपनी समाधि टूट जाने से नाराज़ होते, उनके मुखारविंद से ये शब्द निकले कि उनकी चारपाई को हिलानेवाला

उनका दोहता 'बानी का बोहिथा' (शब्द का जहाज़)—एक महान पुरुष बनेगा। उनके कहे ये वचन आगे चलकर सत्य सिद्ध हुए।

सन 1581 की बात है। गुरु रामदास जी से उनके निकट संबंधी सहारीमल के बेटे के विवाह में शामिल होने के लिए विनती की गई। आपको उस समय गुरु-गद्दी से संबंधित अनेक कार्यों से रत्ती भर भी फ़ुरसत नहीं थी। इसलिए आपने स्वयं उपस्थित न हो पाने के लिए क्षमा माँगी, लेकिन अपनी जगह अपने किसी एक पुत्र को लाहौर भेजने का वादा कर लिया।

इस कार्य के लिए गुरु साहिब का ध्यान पिरथी चन्द की ओर जाना स्वाभाविक था। वह आपका सबसे बड़ा पुत्र था और दुनियादारी के मामलों में काफ़ी चतुर था। परंतु पिरथी चन्द यह नहीं चाहता था कि सेवा या भेंट के तौर पर प्राप्त होनेवाली धन-संपत्ति की सँभाल कुछ दिनों के लिए भी उसके हाथ से चली जाए। फिर कहीं ऐसा न हो कि कोई दूसरा अपने अच्छे आचरण और व्यवहार के कारण गुरु साहिब के मन को भा जाए। यह सब कुछ सोचकर उसने अमृतसर छोड़ने से इनकार कर दिया।

गुरु रामदास जी का मझला बेटा महादेव विरक्त स्वभाव का व्यक्ति था। विवाह, सगाई जैसे रीति-रिवाजों में उसकी तनिक भी रुचि नहीं थी। इन परिस्थितियों में गुरु साहिब के लिए अपने कम उम्र के छोटे पुत्र अर्जुन देव को लाहौर भेजने के सिवाय कोई चारा न था।

अपने गुरुपिता की निकटता अर्जुन देव के प्राणों का सहारा बनी हुई थी। आप एक पल के लिए भी अपने इष्ट से अलग नहीं होना चाहते थे। फिर भी आपने उनके हुक्म के आगे सिर झुका दिया और अपने सतगुरु द्वारा सेवा का यह अवसर बख़्शे जाने के लिए आभार प्रकट किया।

अर्जुन देव को घर से भेजते समय गुरु रामदास जी ने अपनी मौज में आज्ञा दी कि विवाह का काम पूरा होने के बाद भी लाहौर में ठहरकर संगत की अगुआई करना और बुलाए जाने पर ही वापस आना। फिर मानों गुरु रामदास जी ने उन्हें मन से भुला ही दिया।

विवाह की रस्म पूरी हो गई। दिन गुज़रकर सप्ताह बन गए, धीरे-धीरे पखवाड़े बन गए, फिर दो पखवाड़ों ने महीने का रूप ले लिया, पर गुरु ग्राम से न कोई बुलावा आया और न संदेश। विरह से पीड़ित अर्जुन देव के प्राण सूखने लगे। जब इंतज़ार करते-करते सब्र की हद पार हो गई, तो आपने पत्र द्वारा अपने सतगुरु को याद दिलाने का विचार किया और लिख भेजा:

> मेरा मन लोचै गुर दरसन ताई॥ बिलप करे चात्रिक की निआई॥
> त्रिखा न उतरै सांत न आवै बिन दरसन संत पिआरे जीउ॥१॥
> हउ घोली जीउ घोल घुमाई गुर दरसन संत पिआरे जीउ॥१॥रहाउ॥[1]

सेवादार के हाथ पत्र भेजने के बाद भी कई दिन बीत गए। अर्जुन देव की बेचैनी दुगुनी हो गई, लेकिन आप अपने मन का कहना मानकर अमृतसर नहीं लौट सकते थे। गुरु के आदेश का उल्लंघन करना किसी प्रकार संभव न था। दूसरा कोई मार्ग दिखाई न देने पर एक और पत्र लिखने का निर्णय किया। उस पत्र के शब्द इस प्रकार थे:

> तेरा मुख सुहावा जीउ सहज धुन बाणी॥ चिर होआ देखे सारिंगपाणी॥
> धंन सो देस जहा तूं वसिआ मेरे सजण मीत मुरारे जीउ॥२॥
> हउ घोली हउ घोल घुमाई गुर सजण मीत मुरारे जीउ॥१॥रहाउ॥[2]

आश्चर्य की बात है कि सफलता इस बार भी नसीब न हुई, पर दिल को दिल से राह होती है। गुरु रामदास आपसे कितना प्यार करते थे, इससे अर्जुन देव अनजान नहीं थे। उनके मन में किसी प्रकार की कोई नाराज़गी पैदा होने के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता था। इस स्थिति में यह अनुमान लगाना कठिन न था कि पहले दोनों पत्र गुरु रामदास जी तक पहुँच नहीं पाए। इसलिए अर्जुन देव जी ने एक और पत्र लिखा जिसमें उनके हृदय की कसक रह-रहकर प्रकट होती थी; वियोग सहन नहीं हो रहा था:

इक घड़ी न मिलते ता कलिजुग होता॥
हुण कद मिलीऐ प्रिअ तुध भगवंता॥
मोहे रैण न विहावै नीद न आवै बिन देखे गुर दरबारे जीउ॥ ३॥
हउ घोली जीउ घोल घुमाई तिस सचे गुर दरबारे जीउ॥ १॥ रहाउ॥[3]

अर्जुन देव जी ने पत्र के ऊपरी भाग पर तीन का अंक लिख दिया और सेवादार को सावधान कर दिया कि इस बार पत्र केवल सतगुरु के हाथ में ही दिया जाए। जब यह तीसरा पत्र गुरु रामदास जी ने देखा, तो वे तुरंत समझ गए कि पहले दो पत्रों के उन तक न पहुँचने के लिए कौन ज़िम्मेदार हो सकता है। जब पिरथी चन्द से पूछा गया तो उसके टाल-मटोल करने पर गुरु साहिब ने उसका चोग़ा मँगवाया और अर्जुन देव जी के वे दोनों पत्र उसकी जेब से मिल गए।

यह घटना सारी संगत के सामने घटी और इस प्रकार पिरथी चन्द का कपट प्रकट हो गया। गुरु साहिब ने पत्र पढ़े तो अर्जुन देव जी द्वारा प्रकट की गई वेदना से आपके नेत्र सजल हो गए। आपने भाई बुड्ढा को भेजकर फ़ौरन अर्जुन देव को लाहौर से वापस बुला लिया।

जिस प्रकार अपने सतगुरु से बिछुड़ने का कष्ट अर्जुन देव की सहनशक्ति से परे था, उसी प्रकार मिलाप द्वारा प्राप्त आनंद की भी कोई सीमा न थी। उस समय की मानसिक अवस्था आपकी निम्नलिखित पंक्तियों से प्रकट होती है:

भाग होआ गुर संत मिलाइआ॥ प्रभ अबिनासी घर मह पाइआ॥
सेव करी पल चसा न विछुड़ा जन नानक दास तुमारे जीउ॥
हउ घोली जीउ घोल घुमाई जन नानक दास तुमारे जीउ॥[4]

बच्चे बाहर से और अंदर से क्या होते हैं, यह माँ-बाप से छिपा नहीं रहता। फिर पिरथी चन्द के पिता गुरु रामदास जी तो अंतर्यामी प्रभुरूप थे। इस विचार से कि कोई यह न कहे कि सबसे बड़े पुत्र को छोड़कर सबसे छोटे को क्यों गद्दी सौंप दी; आपने अर्जुन देव को लाहौर भेजने

का छोटा-सा नाटक रचकर पिरथी चन्द के चरित्र की असलियत अपनी श्रद्धावान संगत के सामने बेनक़ाब कर दी। वह कितना धोखेबाज़, लालची और ईर्ष्यालु है, यह जान लेने के बाद उसे अपने मार्गदर्शक के रूप में कौन स्वीकार करता? इसके अतिरिक्त महादेव न तो गुरु रामदास जी का वारिस बनने के योग्य था और न ही कोई ऐसी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेने में उसकी दिलचस्पी थी।

इसके विपरीत, अर्जुन देव परमात्मा और अपने सतगुरु के अनन्य प्रेमी ही नहीं, बल्कि उनका जन्म ही संत-सतगुरु की गद्दी को सुशोभित करने के लिए हुआ था। इसलिए गुरु रामदास जी ने नानक-घर द्वारा स्थापित परंपरा के अनुसार पाँच पैसे और नारियल उनके चरणों में रखकर माथा टेका और भाई बुड्ढा जी से तिलक लगवाकर अपना स्थान उन्हें सौंप दिया। उस शुभ दिन—1 सितंबर, 1581ई. को आपकी आयु अठारह वर्ष और साढ़े चार महीने थी।

गुरु रामदास जी के इस चुनाव से पिरथी चन्द को गहरा धक्का लगा और उसके संजोए सपने चूर-चूर हो गए। उसने क्रोध में गुरु साहिब को ख़ूब भला-बुरा कहा, उनका बहुत अनादर किया। गुरु रामदास जी ने उसे समझाया कि अपने जन्मदाता के प्रति ऐसा व्यवहार बिलकुल अनुचित है:

काहे पूत झगरत हउ संग बाप॥
जिन के जणे बडीरे तुम हउ तिन सिउ झगरत पाप॥
जिस धन का तुम गरब करत हउ सो धन किसह न आप॥
खिन मह छोड जाए बिखिआ रस तउ लागै पछुताप॥[5]

पिरथी चन्द ने इस समझाने की कोई परवाह न करते हुए पहले की तरह ही उनकी निंदा और विरोध करना जारी रखा। इन हालात में गुरु साहिब ने कहा, "तू मीणा है और मेरे शिष्य तेरा कहना नहीं मानेंगे, तेरे साथ कोई संबंध नहीं रखेंगे।"* लोभ से अंधे पिरथी चन्द ने प्रतिज्ञा की कि वह

---

* इन्दुभूषण बैनर्जी, *एवोल्यूशन ऑफ़ द खालसा*, भाग 1, पृ. 189

अर्जुन देव को पछाड़कर गुरु-गद्दी पर बैठेगा। उसने यह भी कहा कि उसकी माँग के सही होने से शहंशाह भी इनकार नहीं कर सकता।

गुरु रामदास जी का देहांत होते ही पिरथी चन्द ने पारिवारिक संपत्ति के लिए शोर मचाना शुरू कर दिया और स्थानीय चौधरियों से मिल-जुलकर उन्हें अपने पक्ष में कर लिया। गुरु अर्जुन देव जी तो त्याग की जीती-जागती मूरत थे, आपने गुरु बाज़ार* के किराए और जक़ात इकट्ठा करने का अधिकार पिरथी चन्द को दे दिया और पासियाँ चौक की संपत्ति महादेव के सुपुर्द कर दी। इस प्रकार आप अपनी ख़ुशी से ही अपनी पैतृक संपत्ति से पूरी तरह वंचित हो गए।

इतना ही नहीं, पिरथी चन्द सबसे बड़ा पुत्र होने के नाते गुरु-गद्दी पर अपना ही अधिकार मानता था और बहुत-से भोले-भाले शिष्य, जिन्हें गुरु रामदास जी द्वारा अर्जुन देव जी को गुरु-गद्दी दिए जाने का पता नहीं था, पिरथी चन्द का दावा सच्चा मानने लगे। उसने अपने चापलूस सेवक रामदासपुर के मार्गों पर तैनात कर रखे थे, जिनका यत्न होता था कि प्रत्येक सेवा या भेंट पिरथी चन्द के द्वार पर पहुँच जाए। इस घेराबंदी के फलस्वरूप अर्जुन देव जी को लगातार लंगर जारी रखने में कठिनाई आने लगी। चूल्हों के ठंडे रहने तक की नौबत आने लगी।

गुरु रामदास जी के देहांत के समय भाई गुरदास गुरुमत के प्रचार के लिए दौरे पर गए हुए थे। जब वे राजस्थान, मध्य भारत, दक्षिण आदि की यात्रा ख़त्म करके आगरा के रास्ते वापस लौटे, तो उन्हें लंगर में मिस्सी रोटी† खाने को मिली। उन्होंने हैरान होकर अपनी बहन भानी से पूछा कि पहले तो गुरु के लंगर में रोज़ घी वाला हलवा और खीर बाँटी जाती थी, अब ऐसा क्या हो गया है कि बात मिस्सी रोटी तक पहुँच गई है?

माताजी जी ने जब बिगड़ी आर्थिक स्थिति के कारणों की जानकारी दी, तो भाई गुरदास ने भाई बुड्ढा और अन्य बुज़ुर्गों के साथ सलाह की

* अमृतसर में एक बाज़ार का नाम

† अनाजों के मिले-जुले आटे की रोटी

और पिरथी चन्द के झूठे प्रचार द्वारा फैलाए जानेवाले भ्रमों को निर्मूल सिद्ध करने की योजना बनाई। सत्य तो सत्य ही था। जैसे-जैसे लोगों को पता चलने लगा, पिरथी चन्द के द्वारा बहकाई गई संगत फिर सही मार्ग पर आनी शुरू हो गई।

गुरु अमरदास जी के समय में गुरुमत का बहुत प्रचार हुआ था और बहुत-से बड़े और छोटे केंद्र स्थापित हो गए। बड़े केंद्रों की संख्या 22 थी और उन्हें 'मंजी' का तथा छोटे 52 केंद्रों को 'पीढ़ी' का नाम दिया गया। केंद्र या संगत का मुखिया 'संगतिया' कहलाता था और प्रबंध कार्य करने के साथ-साथ वह गुरवाणी का प्रचार भी करता था।

समय बीतने पर बहुत-से संगतियों के उत्तराधिकारी स्वार्थी निकले तथा गुरु-घर से अलग हो गए और इस प्रकार यह व्यवस्था उपयोगी होते हुए भी बेअसर होकर रह गई। गुरु अर्जुन देव ने भाई गुरदास, भाई बुड्ढा आदि की सहायता से केंद्रों को फिर से व्यवस्थित किया और धीरे-धीरे ये केंद्र काबुल, कश्मीर, दिल्ली, आगरा, ढाका आदि दूर-दूर स्थानों तक फैल गए। इन केंद्रों के प्रभारी 'गुरु-घर के अहलकार' या 'मसन्द' कहलाते थे और वे लंगर चलाने के अलावा गुरुमत के प्रचार के लिए भी ज़िम्मेदार थे। उनका एक और महत्त्वपूर्ण कार्य यह था कि वे संगत से उनकी नेक कमाई का दसवाँ भाग (दसवंध) एकत्र करें और उसे पूरे का पूरा निश्चित समय पर अमृतसर पहुँचाएँ। मसन्द अपनी गृहस्थी निजी कारोबार से चलाते थे। उनके लिए संगत के पैसे या रसद को अपनी आवश्यकताओं के लिए काम में लेना ज़हर खाने के समान था।

जैसे-जैसे दिन बीतते गए, पिरथी चन्द का भेद खुलता गया और नानक-घर के गुमराह हुए श्रद्धालु उसकी ओर से मुँह मोड़कर फिर से गुरु अर्जुन देव के सच्चे दरबार में पहुँचने लगे।

गुरु साहिब के लिए सबसे पहला कार्य रामदास सरोवर के निर्माण को पूरा करना था। आपने मिट्टी निकलवाकर उसकी गहराई बढ़ाई और उसका विस्तार किया, इसके अतिरिक्त ईंटों से उसे पक्का भी करवा दिया।

इतना हो जाने पर भी आपकी तसल्ली न हुई। सोचा होगा कि अगर किसी तालाब में कमल खिले हों तो उसकी शोभा को चार चाँद लग जाएँगे। फिर जो कमल उनकी कल्पना से उपजा, वह तो अपने आप में अनूठा था। यह सुंदर मंदिर, अनेक देवी-देवताओं में से किसी एक को समर्पित नहीं, बल्कि उस परमपिता परमात्मा की याद दिलाने के लिए था, जो धर्म, नस्ल या कुल, जाति, रंग, देश या क़ौम के आधार पर भेदभाव नहीं करता। जिसकी दृष्टि में प्रत्येक जीव उसका अपना है—*नानक का प्रभ सोए जिस का सभ कोए॥*[6]

गुरु अर्जुन देव जानते थे कि जहाँ एक धर्म के माननेवालों का विश्वास है कि परमात्मा पश्चिम दिशा में रहता है, वहाँ दूसरे धर्म को माननेवालों का विश्वास है कि उसके पूजा स्थान में यदि पूर्व की ओर से प्रवेश करें, तभी उसकी उपस्थिति में पहुँच सकते हैं। हिंदू, मुस्लिम दोनों ही अपने पूजा स्थलों के द्वार अपनी-अपनी मान्यता के अनुसार रखते हैं। सिरजनहार के किसी भी प्रेमी के मन में कोई भ्रम या शंका न रहे, इस विचार से आपने निश्चय किया कि इस मंदिर के द्वार चारों दिशाओं में खुलेंगे। उसमें दाख़िल होने के लिए न तो ब्राह्मण कहलानेवाले किसी व्यक्ति को पहल मिलेगी और न ही निम्न जाति के किसी व्यक्ति को बाहर से ही टाल दिया जाएगा।

प्राचीन काल से चली आ रही परंपरा के अनुसार मंदिर, श्रद्धा और सम्मान प्रकट करने के लिए चारों ओर के सभी मकानों से ऊँचे धरातल पर बनाया जाता था। इसके विपरीत गुरु साहिब का विचार था कि जो कोई भी अपने इष्ट के सम्मुख उपस्थित होने की कामना से आए, वह अपने अहं को त्यागकर, नम्रता अपनाकर आए। इसी लिए इस मंदिर की सीढ़ियाँ ऊपर चढ़ने के बजाय नीचे उतरने के लिए बनाई गईं।

परमपुरुष का कोई रूप नहीं और न उसकी कोई शक्ल-सूरत बनाई जा सकती है, इसलिए इस मंदिर में किसी मूर्ति की स्थापना नहीं की गई और न वहाँ कोई तसवीर बनाई या लटकाई गई। इस प्रकार आपने मंदिर में किसी प्रकार का विरोध या विवाद पैदा होने की बिलकुल कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी।

गुरु अर्जुन देव ने इस हरिमंदिर की नींव* विक्रमी संवत् 1645 के माघ माह की पहली तारीख़ को लाहौर के प्रसिद्ध सूफ़ी फ़क़ीर मियाँ मीर से रखवाई तथा 'कार सेवा' की देखरेख भाई बुड्ढा जी के सुपुर्द कर दी। इस योजना के पूर्ण होने में लगभग सोलह वर्ष लगे। इस हरिमंदिर (स्वर्ण मंदिर) की गिनती आज जगत की श्रेष्ठ इमारतों में की जाती है।

रामदास सरोवर और हरिमंदिर के निर्माण के अतिरिक्त गुरु अर्जुन देव के अन्य कार्य भी उल्लेखनीय हैं। आपने संतोखसर[7] पूर्ण कराया तथा रामसर की योजना बनाकर उसे भी पूरा किया। अमृतसर से 25 किलोमीटर की दूरी पर तरनतारन और 66 किलोमीटर के फ़ासले पर गंगसर नामक दो तालाब खुदवाए, जिनके चारों ओर आज तरनतारन और करतारपुर नगर आबाद हैं। लाहौर की बावली और वडाली का छेहरटा कुआँ और क़सबा भी आपकी देन हैं, परंतु आपकी सर्वश्रेष्ठ देन है—आपके द्वारा रचित वाणी और आदि ग्रन्थ का संपादन।

आदि ग्रन्थ का संपादन

गुरु नानक साहिब ने अपने जीवन काल में, विशेषकर अपनी उदासियों† के दौरान अनेक लोगों को प्रभुप्राप्ति द्वारा इस अनमोल मनुष्य जीवन को सार्थक बनाने की शिक्षा दी। उन्होंने अनेक अवसरों पर वाणी का उच्चारण किया, जिसे उनके कुछ ज्ञानवान शिष्यों और सेवकों ने लिख लिया। इस संदर्भ में सैदों, शीहाँ, मनसुख आदि के नाम प्रमुख हैं। गुरु नानक साहिब ने अपनी रची वाणी और कबीर साहिब, संत रविदास, भगत सैन, शेख़ फ़रीद आदि महात्माओं की विभिन्न स्रोतों से प्राप्त वाणी गुरु अंगद देव जी को सौंप दी थी।

गुरु नानक साहिब के बाद वाणी रचने का कार्य गुरु अंगद देव और उनके बाद गुरु अमरदास व गुरु रामदास ने भी जारी रखा। वाणी के

---

* कुछ विद्वानों का विचार है कि हरिमंदिर साहिब की नींव गुरु अर्जुन देव ने रखी।

† आध्यात्मिकता के प्रचार के लिए किया जानेवाला भ्रमण

सर्वकालीन महत्त्व के कारण गुरु अर्जुन देव ने निश्चय किया कि भक्तों की पवित्र वाणी जहाँ कहीं भी मिले, एकत्रित करके भलीभाँति सँभाल ली जाए। इसके लिए उन्होंने हुक्मनामें जारी किए। देश-विदेश में जहाँ भी किसी संत-महापुरुष की वाणी मिलने की संभावना थी, वहाँ आपने विशेष शिष्यों को भेजकर, वाणी इकट्ठी कर ली। आपने इस विशाल सामग्री की छानबीन अत्यंत परिश्रम के साथ की। इस एकत्र किए हुए साहित्य के उस भाग को जो गुरुमत के बुनियादी उसूलों के साथ मेल नहीं खाता था या जिसकी प्रामाणिकता संदेहजनक थी, उसे अस्वीकार कर दिया।

गुरु अर्जुन देव प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के धनी थे। आप उत्तरी भारत में प्रचलित पंजाबी, हिंदी, संस्कृत, उर्दू और फ़ारसी भाषाओं के विद्वान थे। आपको संगीत का भी ज्ञान था। आपने ख़ुद भी वाणी की रचना की।

इस प्रकार प्रामाणिक वाणी का संपादन करके आपने भाई गुरदास जी से आदि ग्रन्थ लिखवाया। यह काम रमणीक और शांत स्थल 'रामसर' में संपन्न हुआ। भाई बन्नो ने आदि ग्रन्थ की जिल्द लाहौर से बँधवाई। इस महान ग्रन्थ का प्रकाश पहली बार हरिमंदिर साहिब, अमृतसर में भादों सुदी प्रथमा, विक्रमी संवत् 1661 (16 अगस्त 1604 ई.), बृहस्पतिवार को हुआ। बाबा बुड्ढा जी पहले मुख्य ग्रंथी नियुक्त किए गए।

आदि ग्रन्थ के संपादन के समय न तो किसी संत के धर्म की ओर ध्यान दिया गया और न जाति या प्रदेश की ओर। अगर इसमें धन्ना जाट शामिल थे, तो रामानंदजी ब्राह्मण, कबीर साहिब जुलाहे, नम्रता के पुंज रविदास जी और शेख़ फ़रीद मुसलमान भी शामिल थे। जयदेव जी बंगाल के, नामदेव जी महाराष्ट्र के, राजा पीपा राजस्थान के और भगत सधना जी सिंध के निवासी थे। गुरु नानक साहिब और उनके उत्तराधिकारियों के अलावा मरदाना जैसे रबाबियों की रचना को भी इसमें स्थान दिया गया।

मनुष्य का जन्म चाहे किसी भी मज़हब, जाति या वर्ण में हो, वह संतान तो उस एक सिरजनहार प्रभु की ही है। अलग-अलग उद्देश्यों की सिद्धि के लिए मनुष्य द्वारा किए गए बँटवारे, प्रभु से उसके संबंध को

किसी प्रकार भी प्रभावित नहीं कर सकते। इसलिए जब प्रभु के भेजे संत उसके चुने हुए जीवों को संसार से मुक्त करवाने के लिए आते हैं, तो उनकी दृष्टि में उसके हुक्म का आधार कोई धर्म, जाति, वंश आदि नहीं होता। उनकी शिक्षा बिना किसी भेदभाव के सारी मानव जाति के लिए होती है। गुरु नानक साहिब की तरह गुरु अर्जुन देव भी सभी प्राणियों के हित के लिए काम करते रहे। वे तो एक ही धर्म को स्वीकार करते और उसी का प्रचार करते थे, वह था—सिरजनहार से प्रेम करके वापस उसमें समा जाना। इस सच्चे धर्म का पालन करते हुए हर कोई अपने परंपरागत धर्म को बदले बिना अपनी आध्यात्मिक मंज़िल पर पहुँच सकता है।

गुरु साहिब ने जहाँ एक ओर मुसलमानों को समझाने की कोशिश की, वहीं दूसरी ओर हिंदुओं को भी समझाया। मिसाल के तौर पर उन्होंने मुसलमान भाइयों को बताया कि आप उस अल्लाह के जीव हैं जो मन और बुद्धि की पहुँच से परे है। गुरु साहिब ने समझाया कि उसके दर पर अपनाए जाने के लिए कुछ शर्तें हैं—आप सांसारिक धंधों से दिलचस्पी हटाएँ, तृष्णाओं को शांत करने का बीड़ा उठाएँ और दूसरों के चरणों की धूलि बन जाने की नम्रता ग्रहण करें। अपनी कायारूपी मसजिद में पक्के विश्वास का मुसल्ला (नमाज़ पढ़ने की चटाई) बिछाकर अपने मनरूपी मुल्ला की सहायता से पाक-पवित्र निदाए-सुल्तानी (शब्द) का कलमा पढ़कर उस सच्चे मालिक की नमाज़ अदा करें।

सच्ची शरीअत, तरीक़त, मारफ़त और हक़ीक़त का मार्ग दिखाते हुए आपने सलाह दी कि क़ुरान शरीफ़ जैसे पवित्र ग्रंथ को ज़बानी याद कर लेना या ऊँची-ऊँची आवाज़ में पढ़ लेना काफ़ी नहीं, बल्कि उसके उपदेश को हृदय में बिठाना और उस पर अमल करना ज़रूरी है। हाजी वह नहीं जो सिर्फ़ मक्का हो आए। हाजी बनने के लिए दिल पाक-साफ़ होना चाहिए। तस्बीह (माला) फेरने का मतलब मनके घुमाने के बजाय दस इंद्रियों को वश में करके, परमात्मा को याद करना है। इसी प्रकार सुन्नत का अर्थ है, अपनी काम वासना को नियंत्रण में रखना।

सच्चा मुसलमान रहमदिल, अंतर की मलिनता से रहित, सांसारिक मोह से मुक्त और फूल, रेशम और घी जैसा पवित्र होता है:

अलह अगम खुदाई बंदे॥ छोड खिआल दुनीआ के धंधे॥
होए पै खाक फकीर मुसाफर इह दरवेस कबूल दरा॥
सच निवाज यकीन मुसला॥ मनसा मार निवारिहो आसा॥
देह मसीत मन मउलाणा कलम खुदाई पाक खरा॥
सरा सरीअत ले कंमावहो॥ तरीकत तरक खोज टोलावहो॥
मारफत मन मारहो अबदाला मिलहो हकीकत जित फिर न मरा॥
कुराण कतेब दिल माहे कमाही॥ दस अउरात रखहो बद राही॥
पंच मरद सिदक ले बाधहो खैर सबूरी कबुल परा॥
मका मिहर रोजा पै खाका॥ भिसत पीर लफज कमाए अंदाजा॥
हूर नूर मुसक खुदाइआ बंदगी अलह आला हुजरा॥
सच कमावै सोई काजी॥ जो दिल सोधै सोई हाजी॥
सो मुला मलऊन निवारै सो दरवेस जिस सिफत धरा॥
सभे वखत सभे कर वेला॥ खालक याद दिलै मह मउला॥
तसबी याद करहो दस मरदन सुंनत सील बंधान बरा॥ ...
मुसलमाण मोम दिल होवै॥ अंतर की मल दिल ते धोवै॥
दुनीआ रंग न आवै नेड़ै जिउ कुसम पाट घिउ पाक हरा॥[8]

अपने धर्म को कैसे निभाया जाए, इसकी नसीहत गुरु साहिब अगर मुसलमानों तक ही सीमित रखते तो उन पर शायद पक्षपाती होने का दोष लग जाता, परंतु जो कमियाँ उन्हें इसलाम के सिद्धांतों का पालन करनेवालों में दिखाई दीं, वही दूसरे धर्मों के माननेवालों में भी मौजूद थीं। इस विषय में आपने ब्राह्मणों के प्रति भी कोई रिआयत नहीं की, जो वेद-शास्त्रों के पठन-पाठन पर अपना एकाधिकार जमाकर और मंदिरों को अपनी निजी संपत्ति मानकर हिंदू धर्म के ठेकेदार बने बैठे थे। छाप, तिलक आदि से सजे इन धर्म के व्यापारियों के आंतरिक खोखलेपन को बेनक़ाब करते हुए आप फ़रमाते हैं:

मुख ते पड़ता टीका सहित॥ हिरदै राम नही पूरन रहत॥
उपदेस करे कर लोक द्रिड़ावै॥ अपना कहिआ आप न कमावै॥[9]

अर्थात् जहाँ तक दूसरों को उपदेश देने का संबंध है, पंडित धर्मग्रंथों को केवल पढ़ता ही नहीं, बल्कि उनकी व्याख्या करके सुना भी देता है। उनके सार को वह ख़ुद समझ नहीं पाता, परमात्मा के लिए उसके दिल में कोई जगह नहीं और न ही उसका रहन-सहन प्रभुभक्ति के अनुसार है। वह दूसरों को शिक्षा देकर उस पर चलने की ताकीद करता है, परंतु ख़ुद उस पर बिलकुल अमल नहीं करता। आप फ़रमाते हैं:

आगै राखिओ साल गिराम॥ मन कीनो दह दिस बिस्राम॥
तिलक चरावै पाई पाए॥ लोक पचारा अंध कमाए॥[10]

अर्थात् उसने पूजा के उद्देश्य से अपने इष्ट भगवान की मूर्ति अपने सामने रखी हुई है, पर मन वहाँ हाज़िर नहीं है, वह तो दसों दिशाओं में जहाँ-तहाँ भटक रहा है। मस्तक पर तिलक लगाकर अपने इष्ट के पैर छूना झूठ का व्यापार है, जिससे लोगों को तो बहलाया जा सकता है, किंतु कोई रूहानी फ़ायदा नहीं होता। आपका कहना है:

खट करमा अर आसण धोती॥ भागठ ग्रिह पड़ै नित पोथी॥
माला फेरै मंगै बिभूत॥ इह बिधि कोए न तरिओ मीत॥[11]

अर्थात् वह प्राचीन शास्त्रों में बताए गए छः कर्मों (वेद पढ़ना-पढ़ाना आदि) की कार्यवाही निभाता है, 'धौती-नेति' जैसी यौगिक क्रियाओं द्वारा शरीर की सफ़ाई कर लेता है और फिर धनवान लोगों के घर पाठ करके, माला फेरकर अपनी मज़दूरी वसूल करता है। इस प्रकार के कर्म अपनाकर कोई भवसागर से पार नहीं हो सकता।

गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं कि सच्चा पंडित वह है, जो गुरु से दीक्षा लेकर शब्द की कमाई करता है, जिसने तीन गुणों और माया से छुटकारा पा लिया है और जिसको चारों वेद हरि के नाम की भक्ति से

परिपूर्ण नज़र आते हैं। गुरु साहिब कहते हैं कि मैं ऐसे पंडित के चरणों की शरण चाहता हूँ:

सो पंडित गुर सबद कमाए॥ त्रै गुण की ओस उतरी माए॥
चतुर बेद पूरन हर नाए॥ नानक तिस की सरणी पाए॥[12]

इसी प्रकार आपने बताया कि योग का अभ्यास कैसे किया जाता है:

जोग जुगत सुन आइओ गुर ते॥[13]

वैष्णव किसे कहा जाता है:

बैसनो सो जिस ऊपर सुप्रसंन॥[14]

'भगउती' कौन होता है:

भगउती भगवंत भगति का रंग॥ सगल तिआगै दुसट का संग॥[15]

आपके लिए तो सभी दया के पात्र थे। आपके हृदय में हर एक के लिए दर्द था।

एक परीक्षा

बादशाह अकबर गुरु अर्जुन देव की महिमा सुनकर नवंबर 1598ई. में जब गोइंदवाल आए तो गुरु साहिब से मिलकर और उनके मुख से सुरीली आवाज़ में बोली गई इलाही वाणी सुनकर बहुत प्रभावित हुए। यहाँ तक कि आपने पंजाब के किसानों के हित के लिए की गई गुरु साहिब की सिफ़ारिश पर उस साल का सरकारी लगान माफ़ कर दिया। पर जब 1605ई. में अकबर का इस ओर फिर दौरा हुआ तो गुरु साहिब के विरोधियों ने बादशाह को यह कहकर बहका दिया कि गुरु अर्जुन देव द्वारा संपादित ग्रन्थ में इसलाम और हज़रत मुहम्मद के प्रति अपमानजनक वचन दर्ज किए गए हैं और हिंदुओं के अवतारों तथा देवताओं को भी बुरी तरह बदनाम किया गया है। इस शिकायत के सच-झूठ का निर्णय करना आवश्यक समझकर अकबर ने गुरु साहिब को ग्रन्थ साहिब सहित बटाला बुलाया।

गुरु अर्जुन देव स्वयं तो नहीं गए, अपनी जगह अपने दो प्रमुख सिक्खों—भाई बुड्ढा और भाई गुरदास—को भेज दिया। अकबर ने भाई गुरदास से मँगवाई गई बीड़ (आदि ग्रन्थ) में से कोई पद पढ़कर सुनाने के लिए कहा तो यह पद निकला:

खाक नूर करदं आलम दुनीआए॥
असमान जिमी दरखत आब पैदाइस खुदाए॥[1]

अर्थात् मिट्टी और ज्योति के द्वारा संसार की रचना की गई है। आकाश, पृथ्वी, वृक्ष, जल, सब ख़ुदा के पैदा किए हुए हैं।

यह देखकर मायूस हुए पिरथी चन्द ने कोई और शब्द सुने जाने की ज़िद की। उसने कहा कि लगता है कि यह शब्द इसने अपनी याद से सुना दिया है। अकबर ने और तसल्ली करने के लिए साहिब दयाल नाम के एक अनजान व्यक्ति से दूसरा शब्द पढ़वाया तो वह इस प्रकार था:

घर मह ठाकुर नदर न आवै॥ गल मह पाहण लै लटकावै॥[2]

जब इस बार भी किसी को कोई अनुचित बात न मिली तो अकबर ने अपने संकेत पर तीसरी रचना पढ़वाई, जिसके शब्द थे:

कोई बोलै राम राम कोई खुदाइ॥ कोई सेवै गुसईआ कोई अलाह॥[3]

इस तरह निजी तौर पर की गई जाँच-पड़ताल से अकबर समझ गए कि गुरु साहिब के विरुद्ध लगाए गए आरोप निराधार हैं और उन्होंने कहा, 'इस ग्रन्थ में प्रेम और प्रभु भक्ति के सिवाय अभी तक न मुझे किसी की स्तुति मिली है न निंदा। यह ग्रन्थ आदर के योग्य है।' मुलाक़ात के अंत में उन्होंने 51 अशरफ़ियाँ ग्रन्थ साहिब की भेंट कीं; भाई बुड्ढा और भाई गुरदास को सरोपे दिए और एक सरोपा उनके हाथ गुरु साहिब के लिए भी भेजा।

भारत के प्राचीन धर्मग्रंथों में मनुष्य जीवन को पच्चीस-पच्चीस वर्षों के चार आश्रमों में बाँटा गया है। अर्जुन देव जी के जीवन का पहला चरण चिंता से मुक्त 18 वर्षों में सिमट गया और दूसरे में आपने अपने निजी परिवार के बजाय सारे संसार की ज़िम्मेदारी सँभाल ली। दूसरे चरण के ढाई दशकों में रामदास सरोवर पूर्ण हुआ जिसके बीच में एक अनूठे 'हरिमंदिर' का निर्माण हुआ; 'गुरु का चक्क' (गुरु का ग्राम) ने कुछ समय बाद रामदास पुर का और फिर धीरे-धीरे अमृतसर शहर का रूप धारण कर लिया: *वसदी सघन अपार अनूप रामदास पुर॥*[4] अलग-अलग कलाओं में कुशल कारीगर सदा के लिए वहाँ आ बसे; चारों ओर के क्षेत्र में रहनेवाले साधारण किसान ज़मींदार बन गए और छोटे-छोटे दुकानदार सौदागर। ख़ुशी-ख़ुशी आनेवाली दसवंध (दशमांश) की भेंट से संगत पर किए जानेवाले ख़र्च की ओर से बेफ़िक्री हो गई। जब 'आदि ग्रन्थ' का प्रकाश हुआ तो मानों ज्ञान के सूर्य का उदय हो गया। अगर एक ओर संगत को अपने सतगुरु में 'सच्चा पातशाह' नज़र आता था तो दूसरी ओर समय के शासक भी सजदा करने में पीछे न रहे।

ऐसा लगता था जैसे अर्जुन देव जी ने अपने गुरुपद के पच्चीस वर्षों में गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास के तीनों आश्रम समेट लिए थे और अब केवल शरीर के वजूद की सीमारेखा को पार करना बाक़ी था। जहाँ पहले वे इतने महान कार्य कर चुके थे, इसके लिए भी उन्होंने एक आदर्श मार्ग चुना और वह था सच्चे धर्म की रक्षा के लिए सिरजनहार की रज़ा को स्वीकार करते हुए, सर्वसमर्थ होते हुए भी, भवसागर में तड़पते जीवों के उद्धार के लिए अपनी क़ुरबानी देना।

उन दिनों सरहिंद के इलाक़े में नक्शबंदी फ़िरक़े से संबंधित शेख़ अहमद फ़ारूक़ी का बोलबाला था। वह 'मुजद्दिद अलफ़ सानी' के नाम से जाना जाता था, जिसके अर्थ हैं—हज़रत मुहम्मद साहिब के हज़ार साल बाद इसलाम धर्म में फिर से जागृति लानेवाला। वह मानता था कि अकबर की उदार नीति ही इसलाम के कमज़ोर हो जाने का कारण थी और इस कमज़ोरी को दूर करना उसने अपना कर्तव्य समझा। गुरु अर्जुन देव की लोकप्रियता और प्रभाव उसे बुरी तरह खटकते थे। इसलिए उसने आपके विरुद्ध 'इमाम ए कुफ़्र' का फ़तवा दिया और आपके विनाश के लिए जहाँगीर और उसके अफ़सरों को भड़काने लगा।

जहाँगीर के कान भरते हुए उसने बताया कि गुरु अर्जुन देव तुम्हारे पिता के चहेते हैं और उनके प्रभाव से अनेक हिंदू ही नहीं, बल्कि मुसलमान भी गुरु साहिब के सेवक बन गए हैं। फिर उसने यह भी आरोप लगाया कि जब खुसरो* गुरु साहिब से मिलने आया तो चाहिए

* शाहज़ादा खुसरो—वह जहाँगीर का सबसे बड़ा बेटा और अकबर का पोता था। उसने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया था और मुग़ल सेना से बचने के लिए इधर-उधर भागता फिरता था।

तो यह था कि उसको पकड़कर आपके हवाले करते, इसके विपरीत गुरु साहिब ने खुसरो की आर्थिक सहायता की और तिलक लगाकर उसे तख़्त का वरदान भी दिया। यह सुनकर जहाँगीर के मन में गुरु साहिब के प्रति विरोध और बदले की भावना पैदा हो गई।

यह ठीक है कि अपनी जान बचाने के लिए जब खुसरो भागता-फिरता गुरु साहिब के पास आया तो उन्होंने अकबर बादशाह के आदरपूर्ण और उदार व्यवहार को ध्यान में रखते हुए उसके पौत्र की दीन दशा देखकर उस पर दया की और उसे आर्थिक सहायता देने से इनकार नहीं किया। वैसे भी गुरु अर्जुन देव के लिए दया का अपात्र कोई था ही नहीं। आपके हृदय में हर एक के लिए दर्द था। तिलक लगाना भी बड़े लोगों का स्वागत करने की प्रचलित प्रथा ही थी, कोई आशीर्वाद अथवा वरदान देना नहीं। उस समय के हालात देखते हुए गुरु साहिब पर लगाए गए आरोपों की जाँच-पड़ताल करना जहाँगीर की कोई मजबूरी नहीं थी, उसे तो केवल अपने शासन को स्थिर करने के लिए कट्टरपंथियों का सहयोग चाहिए था। इसलिए उसने गुरु साहिब को लाहौर बुलाया और अन्य लोगों को सबक सिखाने के विचार से आपको कठोर यातनाएँ देकर मौत के घाट उतारने का फ़ैसला सुना दिया। साथ ही दो लाख रुपये जुर्माना भी किया गया।

जहाँगीर हुक्म देकर कश्मीर चला गया। जिस बेदर्दी से उसके हुक्म का पालन हुआ, वह हृदय विदारक इतिहास है।

गुरु अर्जुन देव 30 मई, 1606ई. को ज्योति-जोत समा गए। उस समय आपकी आयु 43 वर्ष थी।

उपदेश

मिलन की बरीआ

मिल जगदीस मिलन की बरीआ॥
चिरंकाल इह देह संजरीआ॥

गुरु अर्जुन देव

मनुष्य जीवन में हमें इतना तो पता चल जाता है कि कोई मनुष्य सदा जीवित नहीं रहता, पर यह बात कितने लोग सोचते होंगे कि इस मनुष्य जीवन से पहले भी हम किसी रूप में जीवित थे? इस ओर ध्यान न देना हमारे हित में नहीं है, क्योंकि इस सच्चाई से विमुख होने पर हमें अपने मौजूदा जन्म के अमूल्य वरदान की क़द्र और पहचान नहीं होगी, जो हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। अपार अंतर्दृष्टि के स्वामी गुरु अर्जुन देव जी हम पर उपकार करने के प्रयोजन से बताते हैं:

कई जनम भए कीट पतंगा॥ कई जनम गज मीन कुरंगा॥
कई जनम पंखी सरप होइओ॥ कई जनम हैवर ब्रिख जोइओ॥
कई जनम सैल गिरि करिआ॥ कई जनम गरभ हिर खरिआ॥
कई जनम साख कर उपाइआ॥ लख चउरासीह जोनि भ्रमाइआ॥[1]

हमने न जाने कितने युग बेबस पत्थर के रूप में बिताए। कभी ऐसा भी हुआ कि माँ के पेट में आए, पर संसार में आँख खोलने तक की नौबत नहीं आई। कभी पेड़-पौधे के रूप में आए, लेकिन उसके अंकुर को ही कोई भेड़-बकरी चर गई या गाय-भैंस ने अपने पैरों के नीचे कुचल डाला। साँपों की योनि में अपनी रक्षा करने के लिए घातक विष का हथियार मिला, पर अपने ज़हर की आग में ख़ुद ही जलते रहे।

कीड़े-पतंगे बनकर उड़ान भरने लगे तो आयु ने साथ छोड़ दिया और कुछ दिनों में ही ख़त्म हो गए। पतंगों से ऊपर पक्षियों के स्तर पर पहुँचे। फिर भी क्या हुआ? न वर्षा से बचाव, न आँधी-तूफ़ान से; घोंसला हर दूसरे-चौथे दिन तिनका-तिनका हो जाता। मछली का शरीर लेकर आए तो बड़ी मछलियाँ हमारी जान की दुश्मन थीं। मृग के जन्म में फुर्तीला और लंबी छलाँगें भरनेवाला शरीर मिला तो शेर-चीतों द्वारा खा लिए जाने का भय बना रहा। बैल, घोड़े, हाथी बनने से जो शक्तिशाली देह मिली, वह दूसरों का बोझ ढोने के ही काम आई, अपना तो कुछ भी नहीं सँवार सके। हर योनि के अपने दु:ख, अपनी उलझनें हैं। सुख और सच्ची शांति किसी भी योनि में नहीं मिलती। ऐसी स्थिति में गुरु साहिब सावधान करते हैं कि मनुष्य जन्म ही एक ऐसा अवसर है जिसका लाभ उठाकर जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा पाया जा सकता है। चौरासी का चक्र तब शुरू हुआ जब आत्मा अपने स्रोत सतपुरुष से अलग हुई और वह समाप्त भी उसी वक़्त होगा जब आत्मा वापस अपने स्रोत में समा जाएगी। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए संत-सतगुरु की शरण लेनी होगी, उनकी कृपा का पात्र बनना होगा और उनसे दीक्षा प्राप्त करने के बाद उनकी शिक्षा के अनुसार हरि के नाम का अभ्यास करना होगा:

> मिल जगदीस मिलन की बरीआ॥ चिरंकाल इह देह संजरीआ॥...
> साधसंग भइओ जनम परापत॥ कर सेवा भज हर हर गुरमत॥[2]

अज्ञानी और विवेकहीन लोग संसार की जीवन यात्रा को हँसी-मज़ाक समझते हैं, मानों वे किसी मेले में आए हों। पचास, साठ या सत्तर वर्ष बे-नकेल ऊँट की तरह इधर-उधर घूमते गुज़ारे, आख़िर मौत का ग्रास बने और वापस पाँच तत्त्वों में मिलकर समाप्त हो गए। जीवन का खेल न इतना आसान है और न ही सीधा-सादा। यह खेल सिरजनहार द्वारा रचित है। वही इसका संचालक है। वह अपनी रचना को देख-देखकर ख़ुश होता है: *वेख विडाण रहिआ विसमाद॥*[3] परंतु हम जीवों के लिए

तो यह रचना अग्नि का सागर है। जिस प्रकार लोहे की अँगूठी तेज़ाब के मटके में फेंकने पर पहले डूबती है और फिर गल जाती है, उसी तरह हम लोग रचना में आकर इसकी दलदल में धँस जाते हैं और हमारे जीवन का अंत हो जाता है।

वास्तव में मृत्यु हो जाने से हमारे जीवन का अंत नहीं हो जाता। वह तो निरंतर जारी रहता है। जन्म से पहले भी हमारा जीवन था, साँस समाप्त होने के बाद भी जीवन रहेगा। यहाँ आने से पहले कहाँ थे, वर्तमान यात्रा समाप्त करके कहाँ जाना है? यह भेद हमें नहीं बताया जाता। पर आवागमन किसी को डराने के लिए रचा गया ढकोसला नहीं, एक हक़ीक़त है, जो निबौली जैसी कड़वी, लेकिन साल वृक्ष के तने जैसी ठोस है।

हर पौधे में जान होती है और उसके अपने एहसास होते हैं, परंतु वह चल-फिर नहीं सकता। उसकी छोटी-बड़ी सैकड़ों जड़ें उसे ऐसा नहीं करने देतीं। उसी प्रकार मनुष्य गृहस्थी में बँध जाता है। उसे ज्ञान होता है कि जिन माता-पिता ने उसे जन्म दिया है, पालन-पोषण किया है, विवाह किया है और उसे अपने पैरों पर खड़ा किया है, उनके प्रति उसके कुछ कर्तव्य हैं। अपने बहन-भाइयों से उसका ख़ून का रिश्ता है; अगर उन्हें उसकी सहायता की आवश्यकता पड़े, तो वह इनकार नहीं कर सकता। पत्नी उसकी जीवन संगिनी होती है और बच्चे पूरी तरह उस पर निर्भर। उनकी सँभाल वह नहीं करेगा तो और कौन करेगा? इसी प्रकार की ज़िम्मेदारियाँ वह अन्य संबंधियों, मित्रों, सहधर्मियों और देशवासियों के प्रति निभाना चाहता है। इन सबसे अधिक उसे अपनी चिंता होती है, अपने शरीर और स्वास्थ्य की, अपने रोज़गार की उन्नति की, अपने नाम की क़द्र और बड़ाई की। नतीजा यह होता है कि उसे कई प्रकार के सांसारिक झमेलों से क्षणभर की भी फ़ुरसत नहीं मिलती। वह पूर्ण रूप से इनका क़ैदी होकर रह जाता है। लेकिन जिस सिरजनहार परमात्मा ने उसे पैदा किया, जिसने उसे घरबार, जायदादें दीं, परिवार और संबंधी बख़्शे, उसका ख़याल उसे सपने में भी नहीं आता:

जो घर छड गवावणा सो लगा मन माहे॥
जिथै जाए तुध वरतणा तिस की चिंता नाहे॥[4]

जब आत्मा संसार में भेजी जाती है, मन रास्ते में उसके साथ हो जाता है। मन नवीनता का आशिक़ है और परिवर्तन चाहता है। शायद इसी लिए उसे मृत्यु लोक में उलझाए रखने के लिए चौरासी लाख विभिन्न योनियों का प्रबंध किया गया है। इस प्रकार चाहते या न चाहते हुए भी आत्मा मन के साथ आवागमन के कभी न समाप्त होनेवाले चक्र में भटकती रहती है, दु:खी और बेइज़्ज़त होती रहती है।

किसी की पत्नी सुंदर, सुशील, गुणवती हो, पुत्र आज्ञा में रहे, कारोबार में नित्य उन्नति हो रही हो, मान-प्रतिष्ठा भी चढ़ते सूर्य की तरह ऊपर की ओर जा रही हो, ख़ुशामद करने आए ज़रूरतमंदों का ताँता लगा रहे और खाने, पहनने, मौज-मस्ती करने के लिए धन-दौलत की कोई कमी न हो, तो घमंड अपने आप आ जाता है और यह भ्रम भी होने लगता है कि यह सब कुछ कहीं जानेवाला नहीं, ऐसे ही रहेगा:

किआ तू रता देख कै पुत्र कलत्र सीगार॥
रस भोगह खुसीआ करह माणह रंग अपार॥
बहुत करह फुरमाइसी वरतह होए अफार॥
करता चित न आवई मनमुख अंध गवार॥[5]

एक ख़ुशहाल इनसान को ताक़त देनेवाली ख़ुराक की क्या कमी होती है? स्वस्थ रहने के लिए वह मनचाहा खेल खेलता है या कोई आसान कसरत कर लेता है। कभी शरीर अस्वस्थ हो भी जाए, तो बढ़िया इलाज उसकी पहुँच से बाहर नहीं होता। इसलिए लंबी आयु की दृष्टि से बेफ़िक्र वह बीत रहे पलों से अधिक से अधिक स्वाद और ख़ुशियाँ प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। भविष्य का ख़याल उसे पहले तो आता ही नहीं और आए भी तो सोच लेता है कि ऐसी भी क्या जल्दी है,

जब भजन-बंदगी की उम्र आएगी तब उधर भी ध्यान दे लेंगे। ऐसी अज्ञानता से कोई विरला ही बच पाता है।

हरी नाही नह डडुरी पकी वढणहार॥
लै लै दात पहुतिआ लावे कर तईआर॥
जा होआ हुकम किरसाण दा ता लुण मिणिआ खेतार॥[6]

कौन कह सकता है कि अपने आत्मिक उद्धार के लिए हमारा चुना गया समय ज़रूर आएगा और तब तक हम यहाँ से कूच करके अगले जहान के लिए रवाना नहीं हो चुके होंगे? हमारी बुद्धि यही सोचती है कि फ़सल पक जाने पर ही काटी जाती है, पर असलियत यह है कि जब खेत का मालिक अपना हिसाब करके काटनेवालों के हाथ में हँसिया पकड़ा देता है, तो वे पके हुए ही नहीं, अधपके और कच्चे पौधे भी बेधड़क काट देते हैं। इसी तरह अगर कोई जीव बीस, पच्चीस या तीस वर्षों की आयु भोगने के लिए ही दुनिया में भेजा गया हो, तो धर्मराज के दूत इससे अधिक आयु जीने के लिए उसे यहाँ क्यों रहने देंगे?

अभी तो भरपूर जवानी है और शरीर को तो हमने सँवारकर हर तरह से हृष्ट-पुष्ट रखा हुआ है। इसलिए हम सोच लेते हैं कि मौत की ओर से कोई भय नहीं। परंतु सच तो यह है कि हमारी काया सदा रहनेवाली नहीं है, वह धुएँ के बादल के समान है और धुएँ के बादल की क्या हस्ती है? हवा ने एक झटका दिया और वह बिखर गया। इसलिए देह के टिकाऊ होने का क्या भरोसा, हर वक़्त शरीर की ओर ही ध्यान देने से क्या हासिल होगा?

रे नर काहे पपोरहो देही॥
ऊड जाइगो धूम बादरो इक भाजहो राम सनेही॥[7]

अगर बालू से बना नदी का किनारा बाढ़ की चपेट में आ जाए तो वह कितनी देर प्रबल लहरों का मुक़ाबला कर सकता है? कोई मूर्ख ही होगा जो विश्वास कर ले कि वह ढह नहीं जाएगा:

बालू कनारा तरंग मुख आइआ॥
सो थान मूड़ निहचल कर पाइआ॥[8]

अपनी मंज़िल के लिए उतावले पथिक को उसके सफ़र में अगर कोई भला आदमी अपने घर में रात बिताने की सुविधा दे दे, तो वह उस घर को अपना पक्का ठिकाना नहीं मान लेता। जब शाखा पर खिला कोई फूल मुरझा जाए, तो उसे तोड़कर फेंक दिया जाता है और बग़िया उसके बाद भी पहले की तरह अपनी जगह प्रफुल्लित और सुगंधित रहती है। इसी प्रकार हमें भी अपने प्रारब्ध का निश्चित समय बिताकर यहाँ से जाना पड़ता है।

जैसे रैण पराहुणे उठ चलसह परभात॥
किआ तूं रता गिरसत सिउ सभ फुला की बागात॥[9]

मौसम की तबदीली से जब गूजरों के अपने इलाक़े में घास सूख जाती है, तो वे लोग पशुओं को किसी दूसरी जगह के हरे-भरे चरागाह में ले जाते हैं। उनके पशुओं द्वारा कुछ समय तक वहाँ की वनस्पति को चर लेने से वह पराई धरती उनकी अपनी नहीं हो जाती, उन्हें तो वहाँ से जाना ही पड़ता है। इसी प्रकार हमारा संसार में आना और यहाँ से जाना हमारे कर्मलेख के अनुसार होता है। इस दुनिया में सदा के लिए कौन रहता है?

गोइल आइआ गोइली किआ तिस डंफ पसार॥
मुहलत पुंनी चलणा तूं संमल घर बार॥[10]

एक टाँग पर खड़ा बगला जब अपनी तरफ़ चले आ रहे मेंढक पर नज़र गड़ाता है, तो उसे यह ख़याल नहीं रहता कि ऊपर आकाश में बाज़ उस पर झपटने के लिए तैयार है। उसी तरह हमारी हालत है। माया के मोह में रंगरलियाँ मनाते समय हमें भी मौत याद नहीं आती:

कुदम करे पसु पंखीआ दिसै नाही काल॥
ओतै साथ मनुख है फाथा माइआ जाल॥[11]

हमारी मस्ती का जादू तोड़ने के लिए गुरु साहिब फ़रमाते हैं:

प्राणी तूं आइआ लाहा लैण॥
लगा कित कुफकड़े सभ मुकदी चली रैण॥[12]

हमें परमात्मा की सच्ची दरगाह से साँसों की अमूल्य पूँजी इसलिए बख़्शी गई थी कि हम इसका सदुपयोग करते हुए प्रभु के नाम की कमाई करें और उससे मालामाल होकर ख़ुशी से उस परमात्मा के पास लौटें। इसके विपरीत हमने जी बहलाने के लिए संसार के कपटपूर्ण जुएख़ाने के वे खेल चुने हैं जिनमें हारना निश्चित है और आज साँसों की पूँजी का बचा-खुचा हिस्सा भी हमारे हाथ से छूटता जा रहा है।

धन से अनेक सुख और आराम ख़रीदे जा सकते हैं। मनुष्य कोशिश करता है कि लखपति बन जाए। एक लाख जमा हो जाए तो दस लाख का लक्ष्य आगे रखकर अपनी सरगर्मियाँ और तेज़ कर देता है। परंतु दस लाख का मालिक बनने पर भी उसे सब्र नहीं आता, बल्कि करोड़ की भूख जाग उठती है और करोड़ इकट्ठा हो जाने पर अरब की। हाथ में आई हुई दौलत को जैसे-तैसे बचाना, अपनी अतृप्त तृष्णाओं को पूरा करने के लिए संघर्ष करना, यही एक धंधा उसके लिए मुख्य रह जाता है। अतृप्त मन किसी दूसरी ओर नहीं मुड़ता। ऐसी स्थिति को देखकर संत-महात्मा चेतावनी देने के लिए मजबूर हो जाते हैं:

मेरी मेरी किआ करह जिन दीआ सो प्रभ लोड़॥
सरपर उठी चलणा छड जासी लख करोड़॥[13]

भले आदमी! दुनियावी दौलत की रट लगाना छोड़ और उस परमात्मा को याद कर, जिसकी दया से तुझे यह मिली है। इसे पाकर

इतराना नादानी है, क्योंकि अंत में इसे दूसरों के प्रयोग के लिए यहीं रह जाना है, किसी भी हालत में यह तेरा साथ नहीं देगी। अनेक योनियों में भटकने के बाद मिला यह मनुष्य जन्म अमूल्य है, क्योंकि केवल इसी जन्म में मालिक से मिलने का प्रयत्न किया जा सकता है। क्या पता मौत का बिगुल किस पल बज उठे? इसलिए अब दुनियावी पदार्थों का मोह छोड़कर सिरजनहार प्रभु की आराधना में ध्यान लगाना चाहिए:

लख चउरासीह भ्रमतिआ दुलभ जनम पाइओए॥
नानक नाम समाल तूं सो दिन नेड़ा आइओए॥[14]

सिरजनहार प्रभु ने अपनी सृष्टि में अनेक प्रकार के जीव पैदा किए हैं—बड़े डील-डौल वाले हाथी और गैंडे; फुर्तीले चीते-मृग; हंस, मुर्ग़ाबी; गधे, गिद्ध इत्यादि। इनकी आयु, ख़ुराक, रंग, नस्ल और स्वभाव में अपने-अपने दोष तथा अपने-अपने गुण हैं, पर मनुष्य योनि इन सबसे श्रेष्ठ है जिसमें वह गुरु के मार्गदर्शन में साधना करके चौरासी के चक्कर से सदा के लिए छुटकारा पा सकता है। अगर यह अवसर चूक गया तो फिर जन्म-मरण का दुःख कभी समाप्त नहीं होगा:

लख चउरासीह जोनि सबाई॥ माणस कउ प्रभ दीई वडिआई॥
इस पउड़ी ते जो नर चूकै सो आए जाए दुख पाइदा॥[15]

माता-पिता बच्चों को जन्म देते हैं। इस ख़ून के रिश्ते से अधिक गहरा और कौन-सा रिश्ता हो सकता है? जब पति-पत्नी का नाता जुड़ता है, तो वे भावुक होकर जन्म-जन्मांतरों तक साथ निभाने की क़समें खा लेते हैं। जिगरी दोस्त आवश्यकता पड़ने पर एक दूसरे के लिए जान तक न्योछावर कर देने का वचन निभाते हैं। एक व्यक्ति ज़मीन ख़रीदता है, तो उसे यक़ीन होता है कि यह स्थायी चीज़ है, मिट्टी होते हुए भी बिखर नहीं जाएगी। दूसरा व्यक्ति लोहा, पत्थर, सीमेंट से मकान बनाकर उसकी मज़बूती के बारे में बेफ़िक्र हो जाता है। किसी को यह विचार नहीं आता कि जो कुछ भी दिखाई देता है, वह नाशवान है।

अगर स्थायी है तो एक प्रभु है। फिर इन सबका मोह-प्यार छोड़कर, उस अविनाशी में ही लीन होकर स्वयं अविनाशी होने का प्रयत्न क्यों न किया जाए?

सूरत देख न भूल गवारा॥ मिथन मोहारा झूठ पसारा॥
जग मह कोई रहण पाए निहचल एक नाराइणा॥[16]

संसार में फैलाया गया माया का जाल ऐसा कारगर है, इतना मनमोहक है कि इसमें फँसे जीव ख़ुद ही इससे मुक्त नहीं होना चाहते। वे हर समय विषयों के रस में आसक्त रहते हैं, चाहे उन्हें इसकी क़ीमत असह्य दुःख सहकर चुकानी पड़े:

बिखई दिन रैन इव ही गुदारै॥
गोबिंद न भजै अहंबुध माता जनम जूऐ जिउ हारै॥[17]

अगर कोई इस जाल में से निकलने का मार्ग ढूँढ़ना चाहे, तो वह अपनी मेहनत से कभी सफल नहीं हो सकता। उसकी खोज के लिए गुरु की शरण लेनी पड़ती है। चाहे कितनी ही खोज कर लें, लेकिन वास्तविकता यही है कि जीव की सच्ची सहायता करनेवाला केवल सतगुरु है, उसके अलावा कोई और नहीं हो सकता। झूठे दावे करनेवाले की सहायता कभी कारगर सिद्ध नहीं होती।

फाथे सेई निकले जे गुर की पैरी पाहे॥
कोई रख न सकई दूजा को न दिखाए॥[18]

यह बहुमूल्य मनुष्य जन्म कौड़ियों के मोल गँवाने की हमारी नासमझी को देखकर गुरु साहिब फ़रमाते हैं:

अब पूछे किआ कहा॥
लैनो नाम अंम्रित रस नीको बावर बिख सिउ गह रहा॥
दुलभ जनम चिरंकाल पाइओ जातउ कउडी बदलहा॥

काथूरी को गाहक आइओ लादिओ कालर बिरख जिवहा॥
आइओ लाभ लाभन कै ताई मोहन ठागउरी सिउ उलझ पहा॥
काच बादरै लाल खोई है फिर इह अउसर कद लहा॥[19]

मनुष्य इस संसार में नाम के सिमरन और अभ्यास के लिए आया था, परंतु इस उद्देश्य को भुलाकर उसने ठगिनी माया से संबंध जोड़ लिया है। यह तो ऐसे है, जैसे कोई मूर्ख अमृत को फेंककर ज़हर पीने लगे, कस्तूरी की ख़रीद के लिए चला वह बैल की तरह खारी मिट्टी ढोने लगे या अपना असली और बहुमूल्य रत्न किसी व्यर्थ काँच से बदल ले। जो अवसर गँवाया जा रहा है, वह दोबारा कब मिलेगा? जब इस नादानी का उत्तर माँगा जाएगा, तो हमारे पास कोई जवाब नहीं होगा।

मनुष्य को सृष्टि की सर्वोत्तम रचना, सृष्टि का सिरमौर इसलिए माना जाता है कि सिरजनहार ने जिस श्रेष्ठ बुद्धि से इसका शृंगार किया है, वह किसी और योनि के जीव के भाग्य में नहीं आई। दुर्भाग्य से यह उस बुद्धि का प्रयोग नहीं करता, उससे लाभ नहीं उठाता। इसी लिए इंद्रियों के विषयों की अंधी लालसा उसे जीवन के असली मनोरथ के बारे में सोचने का समय ही नहीं देती। अगर उनसे कभी फ़ुरसत मिल भी जाए, तो यह अहं के गुब्बारे फुलाते, बिरादरी के प्रति ईर्ष्या से जलते, व्यर्थ के झगड़े खड़े करते और शत्रुता मोल लेते हुए अपने जीवन को गँवा देता है। इसके आत्मघाती कार्यों पर मौत भी हँसती है, फिर भी इसे समझ नहीं आती:

सुआद बाद ईरख मद माइआ॥
इन संग लाग रतन जनम गवाइआ॥[20]

तथा:

मिरत हसै सिर ऊपरे पसूआ नही बूझै॥
बाद साद अहंकार मह मरणा नही सूझै॥[21]

उद्देश्य

जब सुबह उठते हैं तो हमें मालूम होता है कि पहले कुल्ला करना है, मुँह धोना है, शौच कार्य से निवृत्त होना है। पाँव में जूता पहनते हुए हम यह जानते हैं कि किधर जाना है। इसी प्रकार हर नया दिन जो जीवन की एक महत्त्वपूर्ण इकाई होता है, उसे आरंभ करते हुए क्या हमें यह ज्ञान नहीं होना चाहिए कि जीवन का मनोरथ क्या है?

जैसे कोल्हू का बैल चक्कर लगाता रहता है, पहले के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा, इसी प्रकार हम अपने दिन, महीने और साल गुज़ारते चले जाते हैं। रोज़ाना सुबह जागे, कुछ खाकर, कपड़े पहनकर तैयार हुए और अपनी आजीविका कमाने चल दिए। उससे फ़ुरसत मिली तो घरेलू ज़रूरतों की ओर ध्यान दिया, किसी प्रकार दिल बहलाने का अवसर ढूँढ़ लिया और फिर खाना खाकर सो गए।

स्कूल जानेवाला बच्चा दिन की पढ़ाई ख़त्म करके घर की ओर दौड़ता है। इसी प्रकार किसान, मज़दूर, कर्मचारी, दुकानदार और कारख़ानेदार भी अपनी रोज़ी कमाकर घर लौटते हैं, क्योंकि घर पहुँचने पर शरीर को आराम मिलता है और मन को शांति। बाहर जाकर कष्ट उठाना पड़ता है, परेशानी, बेआरामी और थकावट होती है। रात होने पर विश्राम करने के लिए जिसका कोई घर न हो, उससे ज़्यादा अभागा कौन होगा?

हम भलीभाँति जानते हैं कि एक दिन हर एक को मरना है। कोई बचपन में मरे, जवानी में या बूढ़ा होकर, मौत तो आनी ही है। जिस काया में हम अपनी उम्र व्यतीत करते हैं, वह अंत में हमारी नहीं रहेगी। जिस घर का छिन जाना निश्चित है, वह घर हमारा अपना घर नहीं हो सकता।

हमारा असली घर सचखंड है, जो सतपुरुष का घर है। उस घर में जाकर हम फिर बेघर नहीं होते। हमारे बनाए हुए घर रैनबसेरा होते हैं, उन पर हमारा कोई हक़ नहीं होता। स्थायी सुख हमें अपने पैतृक घर में ही मिलता है। वही घर हमारे जीवन के सफ़र की मंज़िल है। हमें प्रत्येक दिन उस घर तक पहुँचने की दिशा में प्रयत्न करने के लिए मिलता है।

उसे किसी भी अन्य धंधे में लगाना उसका दुरुपयोग करना है यानी 'अमानत में ख़यानत' है।

गुरु अर्जुन देव फ़रमाते हैं:

फफा फिरत फिरत तू आइआ॥ द्रुलभ देह कलिजुग मह पाइआ॥
फिर इआ अउसर चरै न हाथा॥ नाम जपहो तउ कटीअह फासा॥[22]

हमारा यह मनुष्य शरीर बहुमूल्य है। इसे प्राप्त करने से पहले हमें लाखों निचली योनियाँ भुगतनी पड़ी हैं। यही एक ऐसा जन्म है जिसमें हम प्रभु के नाम की कमाई करके आवागमन के फंदे से मुक्ति पा सकते हैं। एक बार इसे गँवा दिया तो यह अवसर फिर हाथ नहीं आएगा। *भई परापत मानुख देहुरीआ॥ गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ॥*[23] मनुष्य देह में ही आत्मा को यह ज्ञान प्राप्त हो सकता है कि मैं सतपुरुष की अंश हूँ; काल और माया के जिस संसार में आ गिरी हूँ, वह जेलख़ाना है। इसमें रहते हुए चाहे-अनचाहे, अच्छे-बुरे कर्म होते रहते हैं और उनका फल भुगतने के लिए हर नए जन्म के समय नए प्रारब्ध की रूपरेखा तय कर दी जाती है। इस प्रकार कर्मों और जन्मों का क्रम कभी समाप्त नहीं होता। इसलिए अगर इस बार अपने सिरजनहार से मिलने का प्रयत्न न किया गया, तो फिर कभी नहीं किया जा सकेगा। हमारे समझने में कोई कमी न रह जाए, इसलिए आप स्पष्ट रूप से बताते हैं:

या जुग मह एकह कउ आइआ॥[24]

हमें संसार में केवल एक उद्देश्य पूरा करना है—प्रभु से मिलाप और उस उद्देश्य की पूर्ति का साधन है किसी समर्थ संत की शरण में जाकर, उसके मार्गदर्शन में नाम का अभ्यास करना। उस अभ्यास के सिवाय अन्य जो भी उपाय किए जाएँ, उन सबके दायरे सीमित हैं:

अवर काज तेरै कितै न काम॥ मिल साधसंगत भज केवल नाम॥[25]

शुभ समय

नाम का सिमरन करने के लिए किसी शुभ घड़ी की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं। जो भी घड़ी, आधी घड़ी उस मालिक की याद में लग जाए, वही शुभ है। शुक्ल पक्ष हो या कृष्ण पक्ष, दिन हो या रात; सिमरन के लिए सब महीने, तिथियाँ, दिन, पहर उत्तम हैं:

सा वेला सो मूरत सा घड़ी सो मुहत सफल है मेरी जिंदुड़ीए
जित हर मेरा चित आवै राम॥[26]

विचार करें कि हम अपने सिरजनहार की ओर से मुँह मोड़कर अपना समय किस प्रकार बिताते हैं? अपने मित्रों और संबंधियों के साथ का आनंद लेते हुए, उनकी इच्छाओं को पूरा करते हुए, ज़मीन-जायदाद खरीदते और सँभालते हुए, धन कमाते हुए, मान-बड़ाई का पीछा करते हुए या शारीरिक सुख भोगते हुए। अगर हमारी दृष्टि में इन चीज़ों को हासिल कर लेना ही सबसे बड़ी प्राप्ति है, तो यह हमारी नादानी है। यह तो कौड़ियों के बदले अपने बहुमूल्य रत्नों को गँवा बैठना है। ये नश्वर चीज़ें बटोरना तो अमूल्य मनुष्य जन्म को बरबाद कर लेना है:

खसम बिसार आन कंम लागह॥ कउडी बदले रतन तिआगह॥[27]

वास्तव में जो समय हमें मानव शरीर में जीने के लिए मिला है, उसका मूल्य किसी सिक्के, रुपये-पैसे या किसी संपत्ति के साथ तुलना करके नहीं आँका जा सकता। उसे गँवाना सांसारिक दौलत गँवाना नहीं, बल्कि अपने आप की हत्या करना है और अपने आप अर्थात् इस दुर्लभ मनुष्य देह जैसी क़ीमती कोई भी वस्तु नहीं हो सकती:

दुलभ देह पाई वडभागी॥ नाम न जपह ते आतम घाती॥[28]

सोचने की बात यह है कि जो भोजन खा-पीकर हम संतुष्ट और प्रसन्न होते हैं, स्वस्थ रहते हैं; जो वस्त्र हमारे शरीर की शोभा बनते हैं,

मौसम के प्रहार से हमारी रक्षा करते हैं और अन्य सुख-सुविधाएँ जो हम दिन-रात भोगते हैं, वह सब कुछ परमेश्वर का ही दिया हुआ है। यह जानते हुए भी उस परमात्मा को भुलाए रखना कहाँ तक उचित है?

जिस का दीआ पैनै खाए॥ तिस सिउ आलस किउ बनै माए॥[29]

साहिब मेहरबान

साहिब मेरा मेहरवान॥ जीअ सगल कउ देइ दान॥

गुरु अर्जुन देव

सभी मनुष्यों को पैदा करनेवाला परमपिता एक है, परंतु उसकी संतान ने उसके कितने ही मनमाने नाम रख दिए हैं। इतना ही नहीं, अपने रखे इन नामों के आधार पर इसने मनुष्य जाति का विभाजन भिन्न-भिन्न धर्मों में कर लिया है। इसके फलस्वरूप उस सिरजनहार को अल्लाह अथवा ख़ुदा कहकर उसकी इबादत करनेवाले इनसान मुसलमान कहलाते हैं, उसे गॉड कहनेवाले ईसाई और उसको राम, स्वामी तथा गोबिंद आदि शब्दों द्वारा याद करनेवाले हिंदू। यदि किसी पिता के पुत्रों में से एक पुत्र तो पिता को पिताजी, दूसरा अब्बू और तीसरा पापा कहे तो वे एक दूसरे को अपना सगा भाई ही समझेंगे। परंतु परमात्मा को सबका जन्मदाता मानते हुए भी अलग-अलग नाम लेनेवालों ने एक दूसरे से शत्रुता कर ली है और सुख-शांति से जीना दूभर कर लिया है। इस प्रकार के दुर्भाग्यपूर्ण भेदभाव के लिए भिन्न-भिन्न धर्मों के नेताओं और प्रचारकों का अज्ञान, सीमित दृष्टिकोण अथवा निजी स्वार्थ ही ज़िम्मेदार होता है। संतों की दृष्टि में सब समान होते हैं। इसी विचार से गुरु अर्जुन देव जी ने क्षत्रिय जाति के हिंदू होते हुए भी अपनी वाणी में उसे अल्लाह कहा है। आपके वचन हैं:

ना हम हिंदू न मुसलमान॥ अलह राम के पिंड परान॥[1]

कहने का भाव यह है कि हमारे शरीर और आत्मा दोनों का स्वामी अल्लाह या राम है। इस प्रकार हम न हिंदू हैं, न मुसलमान। इसी बारे में गुरु साहिब के ये वचन भी हैं:

एक गुसाई अलह मेरा॥ हिंद तुरक दुहां नेबेरा॥[2]

गोसाईं मेरा है, अल्लाह मेरा है और वह एक है। इस प्रकार मैंने हिंदुओं और मुसलमानों दोनों के भेदभाव से छुटकारा पा लिया है।

गुरु अर्जुन देव कहते हैं कि उस ख़ुदा ने मिट्टी जैसी तुच्छ वस्तु में अपनी ज्योति मिलाकर सारा संसार, सारे खंड-ब्रह्मांड पैदा कर दिए। वह सूर्य, जिसकी धूप से अनाज, फल, सब्ज़ियाँ आदि हमारा आहार पैदा होता है और जिसके प्रकाश की सहायता से हम अपना सांसारिक कारोबार चलाते हैं; सुंदरता के प्रतीक चाँद, तारे, ग्रह और उपग्रह; गगनचुंबी पर्वत और हरी-भरी घाटियाँ; रंग-बिरंगे वृक्षों, पौधों फूलों जैसी वनस्पति; विशाल और अथाह सागर, सर्पिणी की तरह बल खाकर चलती नदियाँ, निद्रा में डूबी शांत झीलें और उछलते कलकल करते झरने, ये सब उसी सिरजनहार की भव्य कलाकृतियाँ हैं:

खाक नूर करदं आलम दुनीआए॥
असमान जिमी दरखत आब पैदाइस खुदाए॥[3]

इसी प्रकार सारे वर्ण—क्षत्रिय, ब्राह्मण, शूद्र और वैश्य—एक ही सतपुरुष के जीव हैं। उनको बनानेवाले सिरजनहार ने न तो किसी का पक्ष लिया है और न किसी के प्रति कोई कटुता दिखाई है। सबके नाक, मुँह, दिल और दिमाग़ एक जैसे हैं। अगर किसी विशेष वर्ग को विद्या पढ़ने-पढ़ाने और किसी को सेवक बनने के लिए चुना होता तो उनकी कुछ अलग पहचान बनाकर इस संसार में क्यों नहीं भेजा?

जिस प्रकार अलग-अलग धर्म परमात्मा ने नहीं, बल्कि ख़ुद मनुष्यों ने बनाए हैं, उसी प्रकार अनेक जातियों और वर्णों में बँटवारा करके उन्होंने ख़ुद अपने लिए समस्याएँ खड़ी कर ली हैं। यह अटल सत्य है

कि जीवों को बनानेवाला प्रभु एक है और वह बिना किसी भेदभाव के सबके अंदर उनकी जीवन शक्ति के रूप में विराजमान है:

सगल बनसपति मह बैसंतर सगल दूध मह घीआ॥
ऊच नीच मह जोत समाणी घट घट माधउ जीआ॥
संतहो घट घट रहिआ समाहिओ॥
पूरन पूर रहिओ सरब मह जल थल रमईआ आहिओ॥[4]

दातार

उस जैसा महान दाता और कोई नहीं हो सकता। विचार करें, बच्चा जन्म बाद में लेता है, उसकी परवरिश के लिए माँ के शरीर में दूध पहले से ही पैदा हो जाता है। माँ उसकी सारी ज़रूरतें पूरी करती है और यह ख़ुराक उसे तब तक मिलती रहती है, जब तक वह दूसरा भोजन खाने और पचाने के योग्य नहीं हो जाता:

पहिलो दे तैं रिजक समाहा॥ पिछो दे तैं जंत उपाहा॥
तुध जेवड दाता अवर न सुआमी लवै न कोई लावणिआ॥[5]

परमपिता की ज़िम्मेदारी किसी को जन्म देने या उसके दाँत आने पर ख़त्म नहीं हो जाती, बल्कि उसके पूरे जीवन काल के लिए होती है:

अपुने जीअ जंत प्रतिपारे॥ जिउ बारिक माता संमारे॥
दुख भंजन सुख सागर सुआमी देत सगल आहारे जीउ॥[6]

माँ-बाप बुढ़ापे में बच्चों के काम आने के योग्य नहीं रहते और बच्चे इससे बहुत पहले आत्मनिर्भर हो जाते हैं। लेकिन वह प्रभुरूपी बाप वक़्त की रफ़्तार से प्रभावित नहीं होता और न ही कभी ऐसा वक़्त आता है कि उसकी संतान को उसकी सँभाल की ज़रूरत न रहे। हम अपना आहार गले से नीचे उतारकर ही निश्चिंत हो जाते हैं, लेकिन हमारे पेट में गई ख़ुराक को हज़म करने के लिए और कई अलग-अलग तत्त्वों में

बाँटकर सही मात्रा में दिल, दिमाग़, जिगर, ग्रंथियों आदि भिन्न-भिन्न अंगों तक पहुँचाने का कर्तव्य उस प्रभु को निभाना होता है।

जब हमारा जन्म होता है, हम ख़ाली हाथ और नंगा शरीर लेकर आते हैं। अपनी ज़रूरतें पूरी करने के लिए हमें माता-पिता से और अन्य लोगों से माँगना ही माँगना है। लेकिन किसी के देने से तृप्ति नहीं होती। वे तो ख़ुद माँगते रहते हैं और जो ख़ुद माँगता है वह किसी और को क्या तृप्त करेगा? जीव की भूख दूर करके तृप्त करनेवाला तो केवल एक परमपिता परमात्मा ही है, कोई और है ही नहीं।

यह उस दाता की बड़ाई है कि उसने कुछ चुनिंदा व्यक्तियों की ज़रूरतें पूरी करने का ही दायित्व नहीं सँभाला, बल्कि वह सबका पालन-पोषण करता है। वह सभी में मौजूद है—चाहे वह जड़ हो या चेतन। उस प्रभु का भंडार अथाह है। वह हमारी हर इच्छा पूरी करता है:

> ददा दाता एक है सभ कउ देवनहार॥
> देंदे तोट न आवई अगनत भरे भंडार॥[7]

ऐसे समर्थ दाता को छोड़कर दूसरों के आगे हाथ फैलाना नासमझी है, क्योंकि उन लोगों की देने की सामर्थ्य का क्या भरोसा है? न जाने कब उनके साधन जवाब दे जाएँ या उनकी अपनी नीयत ही बदल जाए। पूर्ण तृप्ति प्रभु की बख़्शिश का अभिन्न अंग होती है; वह तृष्णा को जड़ से उखाड़ देती है, दोबारा माँगने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती:

> मानुख की टेक ब्रिथी सभ जान॥ देवन कउ एकै भगवान॥
> जिस कै दीऐ रहै अघाए॥ बहुर न त्रिसना लागै आए॥[8]

वास्तव में प्रभु से सांसारिक पदार्थ माँगना नासमझी है, क्योंकि हमारे हित के लिए हमारी ज़रूरतें उसे पहले ही मालूम होती हैं और वह उन्हें अपने आप जन्म के समय हमारे प्रारब्ध में लिखकर पूरी कर देता है। फिर उनके लिए बार-बार दुहाई देने से क्या लाभ है? हम तो आग्रह भी उस चीज़ के लिए करते हैं जो माँगने लायक़ नहीं और जो हमारा जीना दूभर

कर दे। अगर कुछ माँगना ही है, तो केवल उसकी दया-मेहर माँगनी चाहिए जिससे जन्म-मरण ख़त्म हो जाए और उसके साथ माँगने की मजबूरी भी:

> ममा मागनहार इआना॥ देनहार दे रहिओ सुजाना॥
> जो दीनो सो एकह बार॥ मन मूरख कह करह पुकार॥
> जउ मागह तउ मागह बीआ॥ जा ते कुसल न काहू थीआ॥
> मागन माग त एकह माग॥ नानक जा ते परह पराग॥[9]

मनुष्य बेचारा किसी को दे भी क्या सकता है? देनेवाला मनुष्य अगर अपनी पूरी सामर्थ्य से दे भी दे, तब भी लेनेवाले को संतोष नहीं आता। इसके अलावा दी गई वस्तु लेनेवाले के पास रहे या न रहे, इस का भी क्या भरोसा है? फिर उस मनुष्य पर क्यों निर्भर रहना और किस लिए उसके आगे झोली फैलाना?

यदि किसी को देश-विदेश की बादशाहत प्राप्त हो जाए तो जिस प्रकार हाथी के पाँव में सब का पाँव समा जाता है, उसी प्रकार राज मिल जाने पर सांसारिक पदार्थों की कोई कमी नहीं रहती। लेकिन इतिहास साक्षी है कि हुकूमत सदा से छिनती चली आई है और उसके जाते समय जो तबाही मचती है, उसका हाल सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं, कँपकँपी होने लगती है। केवल शासकों का ही नहीं, बल्कि उनके परिवार, अधिकारियों, सेना और प्रजा तक का सर्वनाश हो जाता है। शीश महल में रहनेवालों को फूस की छत भी नसीब नहीं होती, रेशम पहननेवालों को चीथड़े भी नसीब नहीं होते, सख़्त ज़मीन पर ही सोना पड़ता है। सोने के थाल में खानेवाले भिक्षापात्र पकड़ लेते हैं, सात परदों के पीछे पली कुँआरी कन्याएँ खुले बाज़ार में नीलाम हो जाती हैं।

इसके विपरीत जब किसी पर परमेश्वर दयाल होता है, तो उसकी सब कामनाएँ पूरी हो जाती हैं, कोई आशा अधूरी नहीं रहती, उसे कोई कमी नहीं सताती। उसको जो प्रभु के नाम की अमूल्य दात मिलती है, वह ख़त्म नहीं होती और न ही उसे कोई छीनने के लिए उस पर हाथ डाल सकता है:

हर जीउ तेरी दाती राजा॥
माणस बपुड़ा किआ सालाही किआ तिस का मुहताजा॥
जिन हर धिआइआ सभ किछ तिस का तिस की भूख गवाई॥
ऐसा धन दीआ सुखदातै निखुट न कब ही जाई॥[10]

दैनिक जीवन में हमारा वास्ता उच्च पदों पर सुशोभित अधिकारियों से पड़ता रहता है। कई प्रकार के कार्यों में व्यस्त रहते हुए उन्हें फ़ुरसत नहीं मिलती। किसी समस्या पर लंबी चर्चा की ज़रूरत होती है तो किसी पर गंभीर चिंतन की। ऐसी स्थिति में कई बातों का—जो किसी और के लिए चाहे ज़िंदगी और मौत का सवाल हों—याद न रहना स्वाभाविक है। बहुत-से विषयों में उनका निर्णय अंतिम होता है, लेकिन निचले अधिकारी इधर-उधर के बहाने बनाकर प्रार्थी को उन तक पहुँचने नहीं देते। परंतु सृष्टि का पालनकर्ता परमेश्वर सर्वशक्तिमान है। उसके लिए कुछ भी असंभव नहीं। उसकी स्मृति कभी चकमा नहीं देती, उसकी समझ धोखा नहीं खाती। वह किसी नियम, मर्यादा का पाबंद नहीं। वह सब कुछ जानता है, इसलिए उसे कोई जाँच-पड़ताल करवाने की ज़रूरत नहीं है। जब भी उसे अपने जीव पर दया करनी होती है, वह एक पल में कार्य सँवार देता है:

अभूल न भूलै लिखिओ न चलावै मता न करै पचासा॥
खिन मह साज सवार बिनाहै भगति वछल गुणतासा॥[11]

अगर इनसानों के आगे हाथ फैलाकर कष्ट उठाने पड़ें या व्यर्थ भटकना पड़े, तो क्यों न हम उस परमात्मा का ही द्वार खटखटाएँ, क्योंकि वह न केवल हमारी ज़रूरतों को पूरा करनेवाला है, बल्कि हमारा मुक्तिदाता भी है।

मांगउ राम ते सभ थोक॥
मानुख कउ जाचत स्रम पाईऐ प्रभ कै सिमरन मोख॥[12]

तथा:

जा कै सिमरण सभ कछ पाईऐ बिरथी घाल न जाई॥
तिस प्रभ तिआग अवर कत राचहो जो सभ मह रहिआ समाई॥[13]

सार समालै नित प्रतिपालै प्रेम सहित गल लावै॥[14]

प्रभु की शरण लेने से सब कार्य संपन्न हो जाते हैं। जन्म-मरण से छुटकारा हो जाता है, फिर उसे नीच योनियों में ख़्वार नहीं होना पड़ता:

जो मागह सोई सोई पावह सेव हर के चरण रसाइण॥
जनम मरण दुहहू ते छूटह भवजल जगत तराइण॥[15]

उस प्रभु के भक्तों को कोई कमी नहीं होती:

कछू न थोरा हर भगतन कउ॥ खात खरचत बिलछत देवन कउ॥[16]

ना ओह निरधन ना हम भूखे॥[17]

प्रभु का भंडार हमेशा भरा रहता है। उसके भक्त जीवन में हमेशा संतुष्ट रहते हैं:

जो प्रभु ऐसा दाता है, हमारा प्रतिपालक है, क्षमाशील है, दयालु है, फिर क्या हमें उसका मन, वचन और कर्म द्वारा निरंतर ध्यान नहीं करना चाहिए?

मन बच क्रम प्रभ एक धिआए॥ ...आद मध अंत प्रभ सोई॥[18]

सोते-जागते, उठते-बैठते, हर स्थिति में उसे याद करना चाहिए।

सो प्रभ अपुना सदा धिआईऐ सोवत बैसत खलिआ॥[19]

किसी घड़ी, मुहूर्त, पल या क्षण उसे नहीं भूलना चाहिए।

सो ऐसा दातार मनहो न वीसरै॥
घड़ी न मुहत चसा तिस बिन ना सरै॥[20]

उसका और हमारा संबंध प्रेम और विश्वास का है। प्रभु अपने सेवक के मनोरथ को पूरा करता है:

जो चाहत सोई हर कीओ मन बांछत फल पाए॥[21]

दया ही दया

हालाँकि वह प्रभु दिखाई नहीं देता, पर जो कुछ हमारी आँखें देखती हैं, सब उसी का रूप या प्रतिबिंब है: *जो दीसै सो तेरा रूप॥*[22] उसके गुण अनगिनत हैं: *गुण निधान गोविंद अनूप॥*[23] दयालुता उसका एक मुख्य गुण है। इसी लिए उसकी सर्जना का कोई बड़े से बड़ा कुकर्मी भी उसकी दातों से वंचित नहीं रहता।

ऐसे कृपानिधान की शरण में जीव को घबराने या डरने की क्या ज़रूरत है? उसने जिसको जन्म दिया है, उसकी सँभाल भी करता है; उसको भोजन देता है, उसका पालन करता है। इतने व्यापक दायित्व के साथ वह कहीं दूर कैसे जा सकता है? वह हमारे अंग-संग रहता है:

तू काहे डोलह प्राणीआ तुध राखैगा सिरजणहार॥
जिन पैदाइस तू कीआ सोई देइ आधार॥
जिन उपाई मेदनी सोई करदा सार॥
घट घट मालक दिला का सचा परवदगार॥[24]

उसकी शक्ति, उसकी सामर्थ्य अपरंपार है; उसका वर्णन करना तो दूर, हम उसका अनुमान भी नहीं लगा सकते। हमारी तुच्छ बुद्धि के लिए तो इतना ही जान लेना काफ़ी है कि हमारे तन और प्राण दोनों इस दुनिया से प्रभु की नामरूपी दौलत कमाकर ले जाने के लिए हमें बख़्शी गई उसकी पूँजी है। हमारा सुख और आराम उसकी दया का ऋणी है:

कुदरत कीम न जाणीऐ वडा वेपरवाह॥
कर बंदे तू बंदगी जिचर घट मह साह॥

तू समरथ अकथ अगोचर जीउ पिंड तेरी रास॥
रहम तेरी सुख पाइआ सदा नानक की अरदास॥[25]

प्रभु की कृपा जीव पर सदैव रहती है। यह वैसी बात नहीं जैसे किसी ज्योतिषी का किसी विद्यार्थी से कह देना: 'बृहस्पति की शुभ दशा चल रही है, इसलिए पास होने के बारे में तुझे कोई चिंता नहीं होनी चाहिए', या किसी बीमार से यह कह देना: 'शनि की साढ़े-साती है, इसके ख़त्म होने पर ही तुम्हारी जान पर आया संकट टलेगा।' प्रभु की दया सर्वकालीन है, कभी वापस नहीं ली जाती और न ही वह किसी वर्ग या श्रेणी के जीवों तक सीमित है। उसकी दया-मेहर से कोई भी ख़ाली नहीं रहता:

दीन दैआल सदा किरपाला सरब जीआ प्रतिपाला॥
ओत पोत नानक संग रविआ जिउ माता बाल गोपाला॥[26]

क्षमाशील

हम इतने खोखले हैं, कमज़ोर हैं और हमारी सहनशीलता इतनी कम है कि हमारे अहं को ज़रा-सी ठेस पहुँचे, हम झट बारूद की तरह भड़क उठते हैं। एक बार पैदा हुई रंजिश उम्र भर कलेजे में कसकती है। कई बार तो ऐसा होता है कि हम जीते-जी बदला न चुका सकें तो मरते समय संतान से आगे हिसाब बराबर करने की क़सम उठवा लेते हैं। यह बदले की आग बुझने का नाम नहीं लेती, पीढ़ियों तक सुलगती रहती है। केवल व्यक्ति या परिवार ही ऐसे क्रोध का शिकार नहीं होते, बल्कि क़बीले और देश तक इस राह पर चल पड़ते हैं।

सोचने की बात है कि अगर प्रभु वैर भावना से मुक्त, दया का भंडार न होता तो हमारा क्या हाल होता? हमसे तो दिन-रात, पल-पल पाप होते रहते हैं। *लेखै कतह न छूटीऐ खिन खिन भूलनहार॥*[27] और उससे कुछ छिपा नहीं होता। हर समय हमारे हृदय में बैठे उस प्रभु को सब

कुछ सुनाई देता है, सब कुछ दिखाई देता है: *देखै सुणै हदूर सद घट घट ब्रहम रविंद॥*[28] फिर हमारे अंतर में मैल की दो-चार तहें नहीं हैं, बल्कि जन्मों-जन्मों के कर्मों की कालिख है जिसे सोने जैसा शुद्ध करना आसान नहीं: *लेखै गणत न छूटीऐ काची भीत न सुध॥*[29] अगर कर्मों के हिसाब से प्रभु हमारे एक-एक गुनाह की सज़ा देने लगे तो हम हमेशा घोर नरकों में कष्ट भोगते रहें। हमारा बचाव इसलिए हो जाता है कि उसकी क्षमा अपार है, अनंत है:

अकिरतघणा नो पालदा प्रभ नानक सद बखसिंद॥[30]

असंख खते खिन बखसनहारा॥ नानक साहिब सदा दइआरा॥[31]

प्रभु सबका साँझा, सबके साथ

आम का फल मीठा होता है, आक का कड़वा। बड़ का वृक्ष घनी छाया देता है, काँटे नहीं चुभाता; करीर काँटे ही पैदा करता है, छायादार पत्ते नहीं। बहुत-से वृक्ष दो-मंज़िले मकानों से भी अधिक ऊँचे होते हैं और कई बूटियाँ ज़मीन से एक इंच भर ऊँची नहीं उठतीं। लेकिन आग उन सबके अंदर समाई होती है। भैंस अकसर काली होती है, गाय गोरी; वे एक दूसरे से भिन्न होती हैं, तो भी उन दोनों के दूध में घी अवश्य छिपा होता है। इसी प्रकार कोई व्यक्ति चाहे समाज की नज़रों में अच्छा हो या बुरा, बड़ा हो या छोटा, अमीर हो या ग़रीब, सुंदर हो या कुरूप, परमात्मा की ज्योति सभी में प्रकाशमान और सक्रिय होती है। वह परमपुरुष उन सबको अपने अस्तित्व से परिपूर्ण कर देता है:

नानक को प्रभ पूर रहिओ है पेखिओ जत्र कता॥[32]

तथा:

नानक का प्रभ पूर रहिओ है जत कत तत गोसाई॥[33]

उसकी सृष्टि में सब जीव उसी का अंश हैं। यह सत्य द्वैत के हर भेदभाव से मुक्त होने का साक्षी है। अगर उनमें से कोई उस सिरजनहार के लिए पराए हों, तो वह उनके अंदर क्यों मौजूद होगा? गुरु अर्जुन देव स्पष्ट करते हैं कि वह प्रभु हम सबका प्रतिपालक है और उसका अपनापन, उसका संरक्षण अस्थायी या थोड़ी देर का नहीं, सदा रहनेवाला है, अमर है, अकाल है; प्रभु हर जगह, हर जीव में मौजूद है:

नानक का प्रभ सोए जिस का सभ कोए॥
सरब रहिआ भरपूर सचा सच सोए॥[34]

सर्वसमर्थ

समझदारी ऐसी शक्ति का सहारा ढूँढ़ने में होती है जिसके होते ज़रूरत पड़ने पर किसी दूसरे का मुँह न देखना पड़े। अगर बाद में गीदड़ों का ही शिकार होना पड़े तो शेर के पाँवों में गिरने का क्या लाभ? परमेश्वर सर्वशक्तिमान है। अगर परमात्मा एक छोटी-सी चींटी में अपनी शक्ति समा दे, तो वह चींटी लाखों-करोड़ों की सेना को नष्ट करने में समर्थ हो जाती है:

नीकी कीरी मह कल राखै॥ भसम करै लसकर कोट लाखै॥[35]

नीचों को ऊँचा उठाने में उसे देर नहीं लगती। वह चाहे तो किसी तुच्छ भिखमंगे को पल में ताज पहनाकर तख़्त पर बैठा दे:

खिन मह नीच कीट कउ राज॥ पारब्रहम गरीब निवाज॥[36]

परमपिता की मौज हो तो किसी मंदबुद्धि, शुभ गुणों से रहित, अवगुणों के पुतले, पापी, पतित को भी हाथ बढ़ाकर उबार ले। एक बार उस दयाल की दयादृष्टि पड़ जाए, तो सब लेखे ख़त्म हो जाएँ और जीव भवसागर से पार हो जाए:

प्रभ भावै मानुख गति पावै॥ प्रभ भावै ता पाथर तरावै॥ ...
प्रभ भावै ता पतित उधारै॥ आप करै आपन बीचारै॥ ...
जा कउ अपुनी करै बखसीस॥ ता का लेखा न गनै जगदीस॥[37]

जिस किसी भी शक्ति का विचार या कल्पना की जा सकती है, उसका मालिक प्रभु है। वह जो चाहे बना दे, जो चाहे मिटा दे। जो कुछ होता है, उसकी रज़ा के अनुसार ही होता है:

करन करावन करनै जोग॥ जो तिस भावै सोई होग॥
खिन मह थाप उथापनहारा॥ अंत नही किछ पारावारा॥[38]

कोई अच्छी बात हो जाए, उसके बारे में हम लोग सोच लेते हैं कि यह हमारी अपनी मेहनत और चतुराई से हुई है; जो बात नहीं हो पाती, उसके बारे में कह देते हैं कि यह भी बन जाती अगर हम कोई और युक्ति अपना लेते। एक क़ातिल सोचता है, अपने दुश्मन को मैंने मारा है और एक वैद्य समझता है कि बीमार उसकी योग्यता के कारण घातक रोग से बच गया है; जब कि इसके पीछे छिपा सच बिलकुल इसके विपरीत होता है:

मानस जतन करत बहु भाति॥ तिस के करतब बिरथे जाति॥
मारै न राखै अवर न कोए॥ सरब जीआ का राखा सोए॥[39]

प्रभु की महानता व्यक्त करते हुए गुरु साहिब उसे संबोधित करके कहते हैं:

तुध बिन दूजा नाही कोए॥ तू करतार करह सो होए॥[40]

तू सर्वसमर्थ है, तेरा कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं और जो तू चाहता है, वही होता है, उसमें कोई रुकावट नहीं डाल सकता। तेरी इस अनोखी रचना में

तेरी ही दी हुई शक्ति से कार्य करनेवाली अनेक हस्तियाँ हैं, किंतु तेरी शक्ति महाप्रबल है, तू सबमें शिरोमणि है। वे सब तुझ पर निर्भर हैं, तेरे सहारे पर क़ायम हैं:

सभ ऊपर पारब्रहम दातार॥ तेरी टेक तेरा आधार॥[41]

जो कुछ इन आँखों को दिखाई देता है, चाहे वह कितना ही स्थायी प्रतीत हो, नश्वर है: चसम दीदं फनाए॥[42] केवल प्रभु ही सदा से अस्तित्व में है, वही हमेशा क़ायम रहेगा। वह किसी की भी पहुँच से परे, ऊँचे से ऊँचा, अथाह और बेअंत है:

है तूहै तू होवनहार॥ अगम अगाध ऊच आपार॥[43]

ऊच अपार बेअंत सुआमी कउण जाणै गुण तेरे॥[44]

सबका एक आधार

जब एक पुरुष और स्त्री आपस में प्यार करते हैं तो बराबरी के आधार पर करते हैं, परंतु उनमें एक दूसरे के लिए चाहत कम या ज़्यादा हो सकती है। फिर भी इस प्यार में एक हाथ से ताली नहीं बजती। प्यार ही प्यार को आकर्षित करता है और जुड़े रिश्ते को अंत तक निभाता है। पहल किसी की ओर से भी हो सकती है, पर यह नहीं होता कि दूसरा एक क़दम भी आगे न बढ़े। क़ुदरत का यही नियम है।

हमारे समाज में स्त्री से यह आशा की जाती थी कि वह पति को परमेश्वर मानकर उसकी पूजा करे। स्पष्ट है कि पति के घर-परिवार का अन्नदाता होने के कारण ऐसा था। लेकिन अब स्थिति में परिवर्तन आ रहा है। आज की स्त्री अपने पैरों पर खड़ी, पति को जीवन साथी के रूप में स्वीकार करती है और उससे समानता का बरताव चाहती है। वह उसके लिए अब पति तो है, पर पतिदेव नहीं रहा।

लेकिन भले ही आत्मा और परमात्मा का रिश्ता पत्नी और पति के रिश्ते के समान माना जाता है, पर इस रिश्ते में बराबरी की कल्पना भी नहीं की जा सकती। आत्मा के लिए परमात्मा प्रतिपालक या पालनहार ही नहीं, जीवनदाता भी है। इसके अस्तित्व का एक-एक पल उस प्रभु की बख़्शिश है। यह अनेक कमज़ोरियों की पुतली, वह सब गुणों का अखूट स्रोत; यह कच्ची मिट्टी की मटकी, वह अकाल, अविनाशी सच; यह चिड़िया की चोंच के लिए जल की एक बूँद से भी कम; वह अनंत, अथाह महासागर। अपने परमात्मारूपी पति के सम्मुख आत्मा की क्या हस्ती है? गुरु अर्जुन देव आत्मा की ओर से कहते हैं:

तू ठाकुरो बैरागरो मै जेही घण चेरी राम॥
तूं सागरो रतनागरो हउ सार न जाणा तेरी राम॥[45]

काल ने मोह का ऐसा प्रपंच फैला रखा है कि जब तक कोई पूरा संत-सतगुरु उसका मार्गदर्शन न करे, तब तक हर इनसान को संसार का जादुई नाटक पूरी तरह सच नज़र आता है। यह तथ्य चढ़ते सूर्य की तरह प्रत्यक्ष है कि जिस निश्चित पल में मौत किसी का दरवाज़ा खटखटाती है, तब माँ-बाप, पति-पत्नी, बहन-भाई, यार-दोस्त उसके साथ तो क्या जाएँगे, वे धर्मराज के दूतों से उसे पाँच मिनट का अतिरिक्त समय भी नहीं दिला सकते। चार-छः आँसू बहाए, आह भरी और चिता को आग देकर या ताबूत को क़ब्र के सुपुर्द करके अपनी राह पकड़ते हैं। ये इनसानी नाते चाहे कितने ही गहरे और प्यारभरे लगें, असल में आपस का लेन-देन चुकाने तक ही सीमित होते हैं। फिर अपने एकमात्र हितैषी को भुलाकर इन रिश्ते नातों के लिए अमूल्य मनुष्य जन्म लुटा देना आत्महत्या नहीं, तो और क्या है? इस विषय पर गुरु अर्जुन देव जी की खोज किस नतीजे पर पहुँचती है?

डिठी हभ ढंढोल हिकस बाझ न कोए॥[46]

आपका ही एक और वचन है:

मुआ जीवंदा पेख जीवंदे मर जान॥
जिन्हा मुहबत इक सिउ ते माणस परधान॥[47]

जो व्यक्ति अपने सिरजनहार को भुलाकर जगत के जीवों, ज़मीनों, जायदादों और विषयों के रस में ही मस्त रहता है, उसे साँस लेते हुए भी मुरदा समझो। इसके विपरीत जो मैं-मेरी को मिटाकर परमपिता परमात्मा का हो जाए, सही अर्थों में वही जीवित है; सच्ची दरगाह में उसी को मान प्राप्त होगा।

बहुत-से घरों का मेहमान भूखा रह जाता है। हर एक सोच लेता है कि उसने किसी और जगह खा लिया होगा। यही दुर्गति अनेक इष्टों को माननेवाले व्यक्ति की होती है। इष्ट तो एक ही होना चाहिए। कौन-सा इष्ट विश्वास पर पूरा उतर सकता है, कौन-सा नहीं, यह प्रश्न अलग है।

आत्मा की मंज़िल प्रभु का धाम है; उसका मार्ग लंबा और दुर्गम है। ऐसी हालत में मुसाफ़िर के पास जितना कम बोझ हो, सफ़र काटने में उतनी ज़्यादा आसानी होती है। गुरु अर्जुन देव कहते हैं कि साथ कुछ लो ही नहीं। रास्ते पर चलने से पहले ही अपना सब कुछ मालिक को अर्पण कर दो। उससे विनती करो कि हम तेरे हैं, केवल तेरे। किसी और से हमारा कोई संबंध नहीं है। जो कार्य बख़्शोगे, वह ख़ुशी-ख़ुशी पूरा करेंगे; सोने के लिए जो भी कुटिया या छप्पर दोगे, उसे बैकुंठ मानकर ख़ुश रहेंगे। खाने-पीने के लिए जो भी रूखी-सूखी रोटी मिलेगी, उसी से संतुष्ट रहेंगे। कोई शिकायत या उलाहना नहीं, बस शुक्र ही शुक्र है:

मन तन तेरा धन भी तेरा॥ तूं ठाकुर सुआमी प्रभ मेरा॥
जीउ पिंड सभ रास तुमारी तेरा जोर गोपाला जीउ॥ ...
प्रभ तुम ते लहणा तूं मेरा गहणा॥ जो तूं देह सोई सुख सहणा॥
जिथै रखह बैकुंठ तिथाई तूं सभना के प्रतिपाला जीउ॥[48]

यह शरीर, ये सांसारिक पदार्थ, सच्चे दिल से प्रभु को अर्पण कर देने के बाद भी सब रहेंगे तो हमारे पास ही, हमारे ही काम आएँगे। अगर इनको कोई हानि पहुँचे या किसी कारण वे हमसे छिन जाएँ, तो भी अफ़सोस कैसा? इन सबसे मोह का फंदा टूट जाने पर सब संकट ख़त्म हो जाते हैं। इसलिए गुरु अर्जुन देव ने कहा है:

जा का सभ किछ ता का होए॥ नानक ता कउ सदा सुख होए॥[49]

अगर अपना अहं और अपनी हस्ती, सब सारहीन वस्तुएँ परमेश्वर के द्वार पर अर्पण करके केवल 'उस' को अपना बना लें, तो सब कमियाँ ख़त्म हो जाती हैं, संतुष्टि आ जाती है।

जा का मीत साजन है समीआ॥
तिस जन कउ कहो का की कमीआ॥[50]

हमारे आपसी रिश्ते भी कई प्रकार के हैं। इन रिश्तों में निकटतम रिश्ता माता-पिता और पुत्र-पुत्री का होता है, पुत्र-पुत्री का जन्म हुए जितना कम समय बीता हो, यह रिश्ता उतना अधिक गहरा होता है। समय बीतने के साथ जैसे-जैसे बच्चा आत्मनिर्भर होता चला जाता है, वह अपने अलग संबंध स्थापित करता जाता है, उसका अपने माता-पिता से लगाव कम होने लगता है। अगर वह उन्हें पहचानना बंद कर दे, तो माता-पिता भी उसकी ओर से मन मोड़ लेते हैं।

हमारा पहला जन्म कब हुआ? इसका हमें कोई ज्ञान नहीं। लेकिन जितना अधिक समय बीतता गया, उतना ही परमात्मा से हमारे रिश्ते में फीक़ापन आता गया। अगर आज यह एहसास है कि हम उसकी संतान हैं, तो यह उसकी कृपा के कारण है। मनुष्य शरीर में आने से पहले हम इस रिश्ते से बिलकुल अनजान थे। इस रिश्ते का किसी को कितना आभास है, यह हर एक के अपने संस्कारों पर निर्भर करता है। हममें से अनेक लोग ऐसे हैं जो परमेश्वर के अस्तित्व को ही स्वीकार नहीं करते। कई ऐसे लोग हैं जो उसके अस्तित्व को तो मानते हैं,

फिर भी पेट की आग या जिह्वा के स्वाद के लिए उसकी संतान के गले काटने से नहीं हिचकिचाते। कुछ लोग तो उस प्रभु का पक्ष लेने के बहाने और उसके साथ प्यार जताने के लिए जनसंहार तक कर डालते हैं।

प्रभु से हमारा संबंध कैसा होना चाहिए, इसकी रूपरेखा गुरु अर्जुन देव के निम्नलिखित वचनों में मिलती है:

खीर अधार बारिक जब होता बिन खीरै रहन न जाई॥
सार सम्हाल माता मुख नीरै तब ओह त्रिपत अघाई॥
हम बारिक पिता प्रभ दाता॥
भूलह बारिक अनिक लख बरीआ अन ठउर नाही जह जाता॥
चंचल मत बारिक बपुरे की सरप अगन कर मेलै॥
माता पिता कंठ लाए राखै अनद सहज तब खेलै॥
जिस का पिता तू है मेरे सुआमी तिस बारिक भूख कैसी॥
नव निध नाम निधान ग्रिह तेरै मन बांछै सो लैसी॥[51]

नन्हें बच्चे के जीवन का एकमात्र आधार माता का दूध होता है। जितनी देर माता उसे अपने आसपास चलती-फिरती दिखाई देती है, उतनी देर उसे खेलना अच्छा लगता है, उसका मन प्रसन्न रहता है। बच्चा बेसमझी के कारण क्या-क्या भूलें और ग़लतियाँ नहीं करता? फिर भी माता-पिता उस पर कोई आँच नहीं आने देते। वरना, न जाने वह किस-किस मुसीबत का शिकार हो जाए। किसी साँप या बिच्छू को छेड़कर उसके डंक का शिकार हो जाए; आग से शरारत करके कपड़े जला ले या आप जल जाए। माता-पिता इस प्रकार उसके पालन-पोषण और रक्षा में व्यस्त रहते हैं, तो वह भी उन्हें छोड़कर किसी और के पास नहीं जाता, उनसे दूर हो जाने के बारे में सोच भी नहीं सकता। गुरु अर्जुन देव बताते हैं कि बालक जैसी टेक रखनेवाले जिज्ञासु को कोई कमी नहीं सताती, इसलिए कि हमारे परमपिता परमात्मा के घर में किसी दात या बख़्शिश की कमी नहीं। वह अपने जीवों से कुछ छिपाकर नहीं रखता।

गुरु अर्जुन देव के अनुसार प्रभु हमारा मित्र, संबंधी सब कुछ है और यह संबंध केवल नाममात्र का नहीं, वास्तविक है। यह इतना ऊँचा है, इतना विश्वसनीय है कि इस पर मान किया जा सकता है:

सजण तूहै सैण तू मै तुझ उपर बहु माणीआ॥[52]

इस जीवन में कुछ लोग मित्र बन जाते हैं, कभी-कभी मित्र शत्रु भी बन जाते हैं। माता-पिता का रिश्ता उनसे कहीं उत्तम होता है। यह संबंध जीवन के आरंभ से जुड़ा है और एकदम बेग़रज़ होता है। परंतु प्रभु हमारा मित्र ही नहीं, भाई-बंधु, माता-पिता भी है और यह रिश्ता स्थायी है:

तूं मेरा पिता तूंहै मेरा माता॥ तूं मेरा बंधप तूं मेरा भ्राता॥[53]

प्रभु के साथ हमारा संबंध इतना गहरा है कि उसमें सब संबंध समाए हुए हैं। वास्तविकता तो यह है कि उसके प्यार का रस माता-पिता के प्यार में भी नहीं मिलता। बहन-भाई, यार-दोस्त कोई भी उसके बराबर नहीं हो सकता। इस सांसारिक संबंध के प्यार की तुलना में उस प्रभु के प्यार की मिठास बिलकुल अलग और निराली है।

गोसाई मिहंडा इठड़ा॥ अंम अबे थावहो मिठड़ा॥
भैण भाई सभ सजणा तुध जेहा नाही कोए जीउ॥[54]

हमारी एकमात्र टेक प्रभु है। हम केवल उसी पर निर्भर हैं, किसी और पर नहीं। अगर इसके बारे में कभी कोई भ्रम हो जाए तो समझ लेना चाहिए कि यह उसी मालिक का रचा गया खेल है। इस हक़ीक़त का पता हमें तभी लगता है जब वह ख़ुद हमारी आँखें खोलने की कृपा करे:

तुमरी क्रिपा ते तुध पछाणा॥ तूं मेरी ओट तूंहै मेरा माणा॥
तुझ बिन दूजा अवर न कोई सभ तेरा खेल अखाड़ा जीउ॥[55]

उसका बिरद

जब कोई व्यक्ति सच्चे दिल से प्रभु का हो जाता है, तो प्रभु भी उस पर अपनी अपार कृपा से प्रेम और भक्ति की दात बख़्शता है, उसकी विनती स्वीकार करता है और उसे विश्वास दिला देता है कि वह दूर नहीं, अंग-संग है:

अपुने सेवक की आपे राखै आपे नाम जपावै॥
जह जह काज किरत सेवक की तहा तहा उठ धावै॥
सेवक कउ निकटी होए दिखावै॥
जो जो कहै ठाकुर पह सेवक ततकाल होए आवै॥[56]

अपने सच्चे भक्तों से प्यार करना उसका स्वभाव है और जहाँ कहीं भी उसके भक्त उसे सच्चे मन से याद करते हैं, वह अपने आप को उन पर प्रकट करता है:

भगत वछल हर बिरद आप बनाइआ॥
जह जह संत अराधह तह तह प्रगटाइआ॥[57]

अपने सच्चे भक्तों के प्रति प्रभु का अपनापन इतना अधिक है कि वह वही करता है जो भक्त चाहते हैं।

हर जीउ सोई करह जे भगत तेरे जाचह एह तेरा बिरद॥[58]

उस दयालु पिता का अपना बिरद सँभालना किसी जीव के अच्छे या बुरे होने पर निर्भर नहीं करता। प्रभु अपने जीव को अपनी गोद में बिठाकर उसकी सब विपत्तियाँ दूर से ही टाल देता है:

मेरे गुण अवगन न बीचारिआ॥ प्रभ अपणा बिरद समारिआ॥
कंठ लाए कै रखिओन लगै न तती वाउ जीउ॥[59]

प्रभुभक्ति

संसार में सुखी रहने, आनंद प्राप्त करने, अपनों और परायों से सत्कार पाने, ख़ुद अपनी नज़रों में ऊँचा उठने का प्रयत्न तो हर इनसान करता है। कई लोग होंठों और जिह्वा से कुछ जपते रहते हैं। कुछ लोग बहुत तेज़ सर्दी या गरमी सहकर या कोई अन्य ढंग अपनाकर अपनी काया को कष्ट देते हैं। कई हठपूर्वक अपने तन और मन पर कई तरह की पाबंदियाँ लगाने में जुटे रहते हैं। यह सब कुछ वे सोच-समझकर ही करते होंगे, लेकिन गुरु अर्जुन देव फ़रमाते हैं कि उनका यह सारा प्रयास हरि प्रेम के रस में डूबने के एक पल का भी मुक़ाबला नहीं कर सकता।

जप तप संजम हरख सुख मान महत अर गरब॥
मूसन निमखक प्रेम पर वार वार देंउ सरब॥[60]

प्रभु दाता है। उसके अनंत भंडार में कोई कमी नहीं आती। वह अपने उन भक्तों के लिए अपनी कृपा के भंडार खोल देता है, जो प्रेमपूर्वक उसकी भक्ति में लीन रहते हैं। भाई गुरदास के वचन भी इसी सच्चाई को दृढ़ करते हैं: *गोबिंद भाउ भगति का भूखा॥* [61] प्रभु केवल प्रेम-भक्ति का भूखा है।

जब किसी के सामने कोई गंभीर समस्या आ जाती है तो वह उसके समाधान के लिए हर संभव उपाय करता है। कोई विरला ही होगा जो दुनियावी साधनों के अलावा अलौकिक शक्तियों अर्थात् देवी-देवताओं या तांत्रिकों का सहारा न ढूँढ़ता हो। हमारे मंदिरों में कई देवी-देवताओं की मूर्तियाँ हैं और माथा टेकनेवाले किसी को भी नाराज़ करने का ख़तरा मोल नहीं लेना चाहते। इन स्थानों के अलावा भारत में अनेक पीरों-फ़क़ीरों के मज़ार और साधु महात्माओं की समाधियाँ भी हैं। उनके पास से गुज़रें तो श्रद्धावानों की भीड़ में सभी धर्मों के अनुयायी दिखाई देते हैं। इस प्रकार तीर्थों पर उन लोगों के श्रद्धाभाव और उत्साह को देखकर उनके प्रति हमारी भी श्रद्धा उमड़ने लगती है। लेकिन जब उनकी असलियत सामने आती है, तो पता चलता है कि उनका मन तो

थाली के पानी की तरह इधर-उधर डोलता रहता है, स्थिर नहीं होता। जो लोग ख़ुद चंचल मन को अपने इष्ट में स्थिर नहीं कर पाते, उनसे हमें क्या लाभ मिल सकता है?

दयालु परमेश्वर के ईर्ष्यालु होने की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। फिर भी यह सच है कि उसके द्वार पर वही प्रीति स्वीकार होती है जो पूरी तरह उसी एक को समर्पित हो। इस विषय में गुरु अर्जुन देव अपने हृदय की हालत बयान करते हुए लिखते हैं:

इको दिसै सजणो इको भाई मीत॥
इकसै दी सामगरी इकसै दी है रीत॥
इकस सिउ मन मानिआ ता होआ निहचल चीत॥[62]

प्रेम

यदि गुरु अर्जुन देव की तरह प्रभु प्रियतम से हमारी भी लगन लगी रहे, तो सारा संसार अपना प्रतीत होगा; अगर लगन टूट जाएगी, तो हर कोई वैरी लगने लगेगा। उस मालिक के सिवाय हमें किसी दूसरे का ख़याल नहीं आना चाहिए।

तूं विसरह तां सभ को लागू चीत आवह तां सेवा॥
अवर न कोऊ दूजा सूझै साचे अलख अभेवा॥[63]

प्रेम में मग्न जीवात्मा को ख़ुद एहसास हो जाता है कि वह अवगुणों से भरपूर है। पिछले जन्मों में उसने अनगिनत भूलें की होंगी और भविष्य में भी शायद और भूलें करने से न बच सके। लेकिन उसका आत्म समर्पण पूरा होता है, बिना शर्त के और स्थायी। इसलिए वह अपने प्रियतम को विश्वास दिलाते हुए विनती करती है कि मैं जैसी भी हूँ तेरी हूँ। मैं इस बात से अनजान नहीं कि जो अभागिनें अपने कंत की ओर से मुँह मोड़कर किसी ग़ैर से नेह लगा बैठती हैं, वे अंत में दुःखी होकर मरती हैं। इसलिए मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं तेरा आँचल,

तेरी शरण कभी नहीं छोड़ूँगी। हे प्रेम की मूरत प्रभु! तेरे सिवाय और कौन मेरा हमदर्द है, मेरा सगा है? मुझ ग़रीब को अगर कोई सहारा है तो तेरा, अगर मान है तो तुझ पर। इसलिए हे कृपासागर! अगर तू मुझ पर मेहरबान हुआ है तो ऐसी कृपा कर कि मुझे किसी और का सहारा न लेना पड़े। मुझ पर यह एहसान कर दे कि तेरे चरण-कमलों की प्रीति हर समय मेरे हृदय में बनी रहे। मेरे तो वही पल सुख से बीतते हैं जिनमें तू मेरे साँसों में बसा हो:

जे भुली जे चुकी साईं भी तहिंजी काढीआ॥
जिन्हा नेह दूजाणे लगा झूर मरहो से वाढीआ॥
हउ ना छोडउ कंत पासरा॥
सदा रंगीला लाल पिआरा एह महिंजा आसरा॥
सजण तूहै सैण तू मै तुझ उपर बहु माणीआ॥
जा तू अंदर ता सुखे तूं निमाणी माणीआ॥
जे तू तुठा क्रिपा निधान ना दूजा वेखाल॥
एहा पाई मू दातड़ी नित हिरदै रखा समाल॥[64]

किसी जिज्ञासु ने गुरु साहिब से पूछा कि प्रभु से मिलाप के लिए क्या ज़रूरी है? आपने प्रेमी जीवात्मा पर लागू होनेवाले नियमों का सार कुछ ही शब्दों में बयान कर दिया:

सुन सखीए प्रभ मिलण नीसानी॥
मन तन अरप तज लाज लोकानी॥[65]

हरि के चरणों में अपना सब कुछ भेंट करके सब प्रकार की लोक-लाज त्यागकर उसकी शरण में आ जाओ। गुरु अर्जुन देव ने ख़ुद ऐसा ही किया था। वे अपना शीश प्रभु को ही नहीं, बल्कि किसी ऐसे अजनबी को भी अपना परम स्नेही मानकर भेंट करने को उतावले थे जो प्रभु का संदेश मात्र ही ला दे। ऐसे प्रेमी जीव के लिए क्या यह हो सकता था कि साहिब मेहरबान उनकी तीव्र लालसा की, अपार वेदना की क़द्र

न करता, उसे अनदेखा कर देता? प्रभु ने दया करके अर्जुन देव को गुरु का संयोग बख़्शा और उन्होंने अपना सर्वस्व प्रभु के सगुण स्वरूप गुरु रामदास जी के चरणों में अर्पित कर दिया। फिर क्या था? उनके सतगुरु ने उनको हर पल अंग-संग रहनेवाले परमपुरुष के दर्शन करा दिए और इस तरह उनकी विरह पीड़ा शांत हो गई, उनके मन की मुराद पूरी हो गई:

हउ मन अरपी सभ तन अरपी अरपी सभ देसा॥
हउ सिर अरपी तिस मीत पिआरे जो प्रभ देइ सदेसा॥
अरपिआ त सीस सुथान गुर पह संग प्रभू दिखाइआ॥
खिन माहे सगला दूख मिटिआ मनहो चिंदिआ पाइआ॥[66]

दूसरे की टेक

प्रभु परमेश्वर सिरजनहार है, हमारा पिता है, हमारा सब कुछ है। उसका और हमारा संबंध अनुपम है। उस जैसा बख़्शिंद और कृपालु कोई नहीं हो सकता। उसके अतिरिक्त किसी दूसरे की शरण की चाहत भी नादानी होगी:

तिआग सुआमी आन कउ चितवत मूड़ मुगध खल खर ते॥[67]

उस स्वामी को छोड़कर यदि जीव किसी अन्य नाव के सहारे पार हो जाने की सोचता है, तो वह उसे अवश्य ले डूबेगी। काग़ज़ की बनी नाव से भवसागर को कैसे पार किया जा सकता है?

कागर नाव लंघह कत सागर ब्रिथा कथत हम तरते॥[68]

इस तरह कुमार्ग पर पड़े व्यक्ति अपनी बरबादी को ख़ुद न्योता देते हैं। यह तो स्पष्ट आत्मघात ही हुआ:

क्रिपा निध छोड आन कउ पूजह आतम घाती हरते॥[69]

जो प्रभु को छोड़कर अन्य इष्टों की सेवा-पूजा में लगे रहते हैं, वे कई जन्म गँवा देते हैं, अंत में उन्हें बार-बार अपमानित होना पड़ता है।

प्रभू तिआग आन जो चाहत ता कै मुख लागै कालेखा॥[70]

प्रभु से सच्चा प्यार हो जाने पर हमारे कान उसी की महिमा सुनना पसंद करते हैं। आंतरिक नेत्रों में उसी का ध्यान टिकता है और जिह्वा उसके नाम के सिमरन में ही मग्न रहती है। हृदय में उसके सिवाय किसी और के लिए जगह नहीं होती। उसी के मार्गदर्शन में चलते हुए हमें किसी अन्य रास्ते का विचार भी नहीं आता:

हिरदै जपउ नेत्र धिआन लावउ स्रवनी कथा सुनाए॥
चरणी चलउ मारग ठाकुर कै रसना हर गुण गाए॥[71]

प्रभु की याद चित्त में बस जाने से जो असीम सुख प्राप्त होता है, वह सुख संसार के किसी अन्य साधन से प्राप्त नहीं हो सकता। इसी प्रकार उसे भुला देने से जो संताप भुगतना पड़ता है, वह भी मौत से कम दु:खदायी नहीं होता:

तुध चित आए महा अनंदा जिस विसरह सो मर जाए॥[72]

उसकी याद में आनेवाला आनंद एक अति दुर्लभ एहसास है। निर्बल जीव केवल चाहने से ही इसे नहीं पा सकता, क्योंकि मलिन मन की अतृप्त कामनाएँ उसे हर समय अपना बंदी बनाए रखती हैं। जब मालिक दया करता है, तब उसी का ध्यान मन में बसा रहता है और फिर वह सदा जीव के अंग-संग रहता है:

दइआल होवह जिस ऊपर करते सो तुध सदा धिआए॥[73]

उसके महल का एक ही रास्ता

जीवन का सफ़र तय करने के अनेक रास्ते हैं। व्यक्ति जिस ओर जाना चाहे, चल दे। किसी तरह की मनाही या रुकावट नहीं।

उन रास्तों में से केवल एक रास्ता प्रभु के महल की तरफ़ जाता है। बाक़ी रास्तों की मंज़िलें अलग-अलग हैं, जैसे शरीर के सुख, इंद्रियों के स्वाद आदि। ये दूसरे रास्ते इतने आकर्षक और लुभावने हैं कि उन पर राही का क़दम बड़ी आसानी से, मानों अपने आप उठता है और एक बार चल पड़े तो रुकने को जी नहीं चाहता, बल्कि रुकने को जी चाहे भी तो रुका नहीं जाता, जैसे कोई आँधी उड़ाकर या बाढ़ बहाकर आगे ही आगे लिए जा रही हो।

प्रभु को भूले हुए और उसके पथ से अनजान लोग इन कुमार्गों को ही चुनते हैं, इस प्रकार वे अपना अनेक योनियों में घूमना और नरकों में जलना निश्चित कर लेते हैं:

दूजी छोड कुवाटड़ी इकस सउ चित लाए॥
दूजै भावीं नानका वहण लुढंदड़ी जाए॥ ...
पंथा प्रेम न जाणई भूली फिरै गवार॥
नानक हर बिसराए कै पउदे नरक अंध्यार॥[74]

मान लें कि हमारा संसार एक मंडी है जिसमें रज, तम और सत्त्व, तीन गुणों की प्रेरणा के अधीन समूचा व्यापार चलता है। इसमें गँवानेवाले अधिक, पर कमानेवाले कम होते हैं। कोई विरला ही ऐसा व्यापारी होता है जो अपना कारोबार केवल हरि के नाम जैसी पवित्र वस्तु के व्यापार तक ही सीमित रखे:

तिहटड़े बाजार सउदा करन वणजारिआ॥
सच वखर जिन लदिआ से सचड़े पासार॥[75]

हमारे दिल में किसी मित्र या प्रिय संबंधी से मिलने की इच्छा जागे, तो हमें कुछ कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है। संभव है कि वह दूर रहता हो या विदेश गया हो, लेकिन रेल या हवाई जहाज़ द्वारा उसके पास पहुँचा जा सकता है, क्योंकि आख़िर कुछ ख़र्च, कुछ असुविधा

की ही तो बात है। पर प्रियतम प्रभु तक इतनी आसानी से नहीं पहुँचा जा सकता, क्योंकि वह हमारी इंद्रियों से ही दूर नहीं, बल्कि कल्पना की पहुँच से भी परे है। वह अगोचर है, अगम है। इसके बावजूद अगर उससे मिलने की तीव्र चाह हो तो वह हमारे घर, हमारी बैठक, हमारी बग़ल से भी नज़दीक, हमारी काया के अंदर प्रकट रूप में आ मिलता है। उसे हमारी इच्छा पूरी करने के लिए कहीं दूर से चलकर नहीं आना पड़ता, बल्कि वह तो उस इच्छा के पैदा होने से पहले ही वहाँ बसा होता है। वह प्रभु अनुपम है। इसी लिए गुरु अर्जुन देव ने निजी अनुभव के आधार पर कहा है:

नैनहो देखिओ चलत तमासा॥
सभ हू दूर सभ हू ते नेरै अगम अगम घट वासा॥[76]

प्रभु से मिलाप

प्रभु अदृश्य है, इसके बावजूद उसे देखा जा सकता है। वह अगोचर भी माना जाता है, फिर भी उससे मिलाप किया जा सकता है। इस बात का प्रमाण गुरु अर्जुन देव जी ने बार-बार दिया है। उदाहरण के लिए आप फ़रमाते हैं: *देखिओ द्रिसटि सरब मंगल रूप*[77] अर्थात् मैंने उस परम आनंद के रूप को आँखों से देख लिया। कोई पूछे कि यह कैसे संभव हुआ? आप कहते हैं: *उलटी संत कराए॥*[78] भाव है कि संत-सतगुरु ने अनहोनी को होनी करके दिखा दिया। आगे गुरु साहिब कहते हैं कि वे उस कृपानिधान प्रभु के सर्वव्यापक और अद्भुत रूप को देखकर आश्चर्यचकित रह गए:

बिसम भई पेख बिसमादी पूर रहे किरपावत॥[79]

आप एक अन्य पद में अपने अनुभव के आधार पर बताते हैं कि प्रभु का दीदार करके मुझे जो ख़ुशी मिली, जो आनंद प्राप्त हुआ, उसकी महिमा मैं मन ही मन गा रहा हूँ, किसी और के आगे उसका बखान नहीं किया जा सकता:

डोइ सुख का सिउ बरन सुनावत॥
अनद बिनोद पेख प्रभ दरसन मन मंगल गुन गावत॥[80]

प्रभु प्रियतम का विरहिणी जीवात्मा से मिलाप कोई औपचारिकता निभाने या रस्मी तौर पर नहीं होता, बल्कि इस मिलाप में अथाह प्रेम ही प्रेम होता है:

चिरी विछुंना हर प्रभ पाइआ गल मिलिआ सहज सुभाए राम॥[81]

अपने भक्तों को वह केवल एक झलक मात्र ही नहीं देता, बल्कि प्रत्यक्ष होकर उनसे बातचीत भी करता है:

भगत संग प्रभ गोसटि करत॥[82]

उसके दर्शन का संयोग परम आनंद से परिपूर्ण होता है। उसके मिलाप में एक अनोखी मिठास का एहसास होता है:

अनदो अनद घणा मै सो प्रभ डीठा राम॥
चाखिअड़ा चाखिअड़ा मै हर रस मीठा राम॥[83]

आत्मा एक छोटी-सी बूँद है, उसकी क्या सामर्थ्य कि वह प्रभुरूपी परमसागर में केवल अपने प्रयत्नों से जा मिले? प्रभु की मौज होती है तो वह ख़ुद ऐसे हालात पैदा कर देता है कि आत्मा के अनेक जन्मों की मैल धुल जाती है। जब आत्मा निर्मल होकर प्रभु से मिलाप के योग्य हो जाती है, तो दोनों एक हो जाते हैं:

आपस कउ आप मिलाइआ॥ भ्रम भंजन हर राइआ॥[84]

फिर योनि-योनि में भटकती उस बेबस आत्मा को अपने मालिक से अलग होने का कोई भ्रम नहीं रहता। इस मिलाप का वर्णन गुरु साहिब ने इन शब्दों में किया है:

जिउ जल मह जल आए खटाना॥ तिउ जोती संग जोत समाना॥[85]

अर्थात् जिस प्रकार बूँद समुद्र में मिलकर समुद्र हो जाती है, उसी प्रकार आत्मा की ज्योति परमात्मा की ज्योति में विलीन हो जाती है और उसी का रूप धारण कर लेती है। जब आत्मा को सही अर्थों में प्रभु का विसाल, उससे पूर्ण मिलाप का सौभाग्य प्राप्त होता है, तो दोनों में कोई दूरी नहीं रहती, वे एक हो जाते हैं। जीव परमपिता परमात्मा में समा जाता है। गुरु अर्जुन देव के वचन हैं:

सूरज किरण मिले जल का जल हूआ राम॥
जोती जोत रली संपूरन थीआ राम॥[86]

अर्थात् आत्मा की ज्योति परमज्योति में ऐसे एकमेक हो जाती है जैसे किरण सूर्य में और बूँद सागर में। जब उस रोशनी की किरण का या उस पानी की बूँद का अस्तित्व ही न रहा तो उसका कोई सुराग़ कौन पा सकता है?

जो प्रभु हमारे हर अच्छे कार्य को याद रखता है, जो हमारी रत्ती भर मेहनत की मज़दूरी देने से नहीं चूकता, हमारे पास जो कुछ भी है वह सब उसी की दात है, जिसने गर्भ की अग्नि में हमारी सँभाल की और जो हमें अब भी माया के भाँति-भाँति के विष से बचाकर रखता है, जो हमारा जीवनदाता है, जो हम जन्म-जन्म के बिछुड़ों को अंत में अपने साथ मिला लेता है, उसे हम भुला कैसे सकते हैं?

सो किउ बिसरै जे घाल न भानै॥
सो किउ बिसरै जे कीआ जानै॥
सो किउ बिसरै जिन सभ किछ दीआ॥
सो किउ बिसरै जे जीवन जीआ॥
सो किउ बिसरै जे अगन मह राखै॥
गुर प्रसाद को बिरला लाखै॥

सो किउ बिसरै जे बिख ते काढै॥
जनम जनम का टूटा गाढै॥[87]

प्रभु का प्रकट रूप संत-सतगुरु होते हैं। जो आँखें सतगुरु के दीदार से वंचित रहती हैं वे व्याकुल रहती हैं। जो कान प्रभु के शब्द को नहीं सुनते, उन्हें मानों सीसा डालकर बंद कर दिया गया है, जो ज़बान उसके नाम का सिमरन नहीं करती, वह मानों तिल-तिल करके कट रही है। प्रभु को भुला देना तो तड़प-तड़पकर मर जाना है:

नैण न देखह साध से नैण बिहालिआ॥
करन न सुनही नाद करन मुंद घालिआ॥
रसना जपै न नाम तिल तिल कर कटीऐ॥
हरिहां जब बिसरै गोबिद राए दिनो दिन घटीऐ॥[88]

अगर कोई अपने सिरजनहार को ही भूल जाए तो उसका जन्म व्यर्थ चला जाता है:

बामण बिरथा गइओ जनंम जिन कीतो सो विसरे॥[89]

उसे लाखों बार फिर जन्म लेना और मरना पड़ता है। वह नरकों के अंधकार में दु:ख उठाता रहता है:

जिस प्रभ अपणा विसरै सो मर जंमै लख वार जीउ॥[90]

नानक हर बिसराए कै पउदे नरक अंध्यार॥[91]

मित्र विचोला

घोल घुमाई तिस मित्र विचोले जै मिल कंत पछाणा॥

गुरु अर्जुन देव

काल और माया का साम्राज्य

प्राचीन काल में ऐसे-ऐसे सम्राट, सुलतान, शहंशाह और तानाशाह हुए जिनका एक ही लक्ष्य होता था—अधिक से अधिक इलाक़ों पर अधिकार करना और जो इलाक़ा अधिकार में आ जाए, उस पर अपनी पकड़ अधिक मज़बूत करना। चाहे किसी के राज्य का कितना ही विस्तार हो गया हो, कितने ही राजा-महाराजा उसकी अधीनता मानने लगे हों, फिर भी सारी धरती को तो कोई अपनी नहीं कह सका। उनकी तुलना में काल एक ऐसा महासम्राट है जिसका सिक्का केवल धरती पर ही नहीं, सारे खंडों-ब्रह्मांडों में चलता है। चौरासी लाख योनियों में से एक भी जीव उसके अधिकार क्षेत्र से बाहर नहीं है।

चाहे कोई शहंशाह कहलाए या चक्रवर्ती सम्राट, फिर भी उसे हर पल चिंता लगी रहती थी कि अभी किसी ओर से आक्रमण हुआ, कहीं बग़ावत भड़की। ये घटनाएँ अनहोनी नहीं होती थीं, समय-समय पर होती ही रहती थीं। जिसने ख़ुद बाहुबल से हुकूमत हथियाई हो, वह दूसरों को उस रास्ते पर चलने से कैसे रोकेगा? लेकिन काल की यह विशेषता है कि उसे किसी शत्रु, प्रतिद्वंद्वी या विद्रोही से डरने की आवश्यकता नहीं। क्योंकि इस जगत और उसके वासियों की ख़ुशी-ग़मी का सारा प्रबंध सिरजनहार परमात्मा ने ख़ुद उसे सौंपा हुआ है। उस सर्वशक्तिमान की व्यवस्था में कोई और शक्ति फेरबदल नहीं कर सकती।

खंड पताल दीप सभ लोआ॥ सभ कालै वस आप प्रभ कीआ॥[1]

जहाँ तक काल के राज का प्रश्न है, प्रभु ने यह राज सदियों, युगों, कल्पों से उसी के सुपुर्द किया हुआ है। फिर भी काल को अपनी प्रजा से बहुत सावधान रहना पड़ता है, ताकि एक भी आत्मा कहीं उसके जाल से निकल न सके।

तोते का मालिक उसे चूरी, बादाम आदि खिलाकर इतना प्रसन्न रखता है कि पिंजरे की खिड़की खोल दिए जाने पर भी वह उड़ जाना पसंद नहीं करता। जब पालतू तीतरों को बाहर घुमाने के लिए ले जाया जाता है, तो वे ख़ुशी-ख़ुशी ख़ाली पिंजरे के पीछे दौड़ते चले जाते हैं। अन्य योनियों में पड़े जीवों को तो यह समझ ही नहीं होती कि आवागमन का चक्र एक सज़ा है जो अपने कर्मों के अनुसार उन्हें भुगतनी पड़ रही है। यद्यपि अधिकतर मनुष्य इस सच्चाई को जानते हैं, फिर भी काल के शासन की चतुराई के कारण तोतों और तीतरों की तरह वे भी इस संसाररूपी पिंजरे को कसकर पकड़े रखते हैं।

राजा चाहे किसी मामूली देश का हो, फिर भी वह एक विशेष हस्ती माना जाता है। अगर किसी पर मेहरबान हो जाए तो रहने के लिए विशाल भवन बख़्श दे, बिना परिश्रम की आमदनी के लिए बड़ी-बड़ी जागीरें और सलामों और बंदगियों के लिए ऊँची पदवियाँ, कारें, सेवक और हज़ारों सुविधाएँ दे दे। नाराज़ होने पर भी वह राजा बहुत कुछ कर सकता है—जुरमाने, ज़ब्तियाँ, कारावास, यातनाएँ, प्राणदंड आदि।

लेकिन राजा की ताक़त को कितने से गुणा किया जाए कि काल की शक्ति का थोड़ा-बहुत अनुमान हो सके? लाख से? करोड़ से? सब हिसाब बेकार। संसार का हर एक शहंशाह उसके इशारे पर नाचता है। बाज़ीगर और उसकी कठपुतली से भी उसकी क्या तुलना है? आत्माओं को रिझाने के लिए उसके पास स्वर्ग और बैकुंठ के अलावा स्वादों के अनंत भंडार हैं। डराने-धमकाने के लिए अनेक दुःख, मुसीबतें और कई क़िस्म के नरक हैं। परिणाम यह है कि कोई भी जीव उसकी आज्ञा

का उल्लंघन नहीं कर सकता, विद्रोही नहीं हो सकता। सभी जीव बिना किंतु-परंतु किए उसकी आज्ञा में रहते हैं, सिवाय उन भाग्यशाली जीवों के जो सतगुरु की शरण में आ जाते हैं:

हरख सोग का नगर इह कीआ॥ से उबरे जो सतगुर सरणीआ॥[2]

आंतरिक लोक हमारे इस लोक से बहुत अलग है। वहाँ का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। महापुरुषों ने मात्र संकेत देते हुए अपना भाव समझाने की कोशिश की है। गुरु अर्जुन देव बताते हैं कि प्रभु के द्वार की ओर जाते हुए हमें जिस रास्ते पर सफ़र करना है, उस पर माया ने छल-कपट का घना अँधेरा ही नहीं कर रखा, बल्कि कई प्रकार के जाल भी फैला रखे हैं, रुकावटें भी खड़ी की हुई हैं।

गुरु अर्जुन देव के कथनानुसार, माया कपटी सर्पिणी है: *छल नागन सिउ मेरी टूटन होई॥*[3], झूठी और विश्वासघातिनी है: *गुर कहिआ इह झूठी धोही॥*[4]; मुँह की मीठी, अंदर से ज़हरीली है: *मुख मीठी खाई कउराए॥*[5] इस ठगिनी ने अनेक घर बरबाद कर दिए, *एह ठगवारी बहुत घर गाले।*[6] घर तो क्या, इसने सारे संसार को ज़ंजीरों में जकड़ रखा है: माइआ मोह सभो जग बाधा॥[7] माया से ग्रसित होने के कारण हम अपने बल और बुद्धि के सहारे मंज़िल पर नहीं पहुँच सकते। हम आगे बढ़ने के बजाय पीछे की ओर भटक सकते हैं। ऐसी स्थिति में सतगुरु ही जीव के सहायक होते हैं। वे दिशा ही नहीं सुझाते, मार्ग पर प्रकाश भी कर देते हैं:

दुतर अंध बिखम इह माइआ॥ गुर पूरै परगट मारग दिखाइआ॥[8]

धूलभरी आँधी सनसनाते हुए आती है और जितना भी क्षेत्र इसकी लपेट में आ जाए, वहाँ तबाही मचा देती है। लेकिन वह जैसी तेज़ी से आती है, वैसी ही तेज़ी से चली भी जाती है। उसके प्रकोप से फिर भी थोड़ा-बहुत बचाव किया जा सकता है। लेकिन माया ठगिनी ने तो किसी ख़ूबसूरत फूल की विशाल फसल की तरह हमारे संसार का चप्पा-चप्पा घेर रखा है और इस फसल का ख़ुशबूदार ज़हर हमारे अंदर जानेवाली हर

साँस के साथ निरंतर चढ़ता रहता है। इनसान बेचारा करे तो क्या करे? इस प्रसंग में गुरु साहिब फ़रमाते हैं:

चहु दिस फूल रही बिखिआ बिख गुर मंत्र मूख गरुड़ारी॥
हाथ देइ राखिओ कर अपुना जिउ जल कमला अलिपारी॥[9]

भाव यह कि गुरु से दीक्षा लो और उसके बताए हुए मंत्र का जाप करते रहो। जैसे गारुड़ी कुछ मंत्र पढ़कर साँप के ज़हर का असर ख़त्म कर देता है, इसी प्रकार नाम के सिमरन से माया का ज़हर बेअसर हो जाता है। जिस तरह कमल पानी में होते हुए भी उससे निर्लेप रहता है, इसी तरह मायारूपी सर्पिणी भी नाम के अभ्यासी का कुछ नहीं बिगाड़ सकती। साधारण नशे की आदत किसी योग्य डॉक्टर की सहायता से छूट सकती है, पर माया के नशे से छुटकारा तो केवल प्रभु के प्रकट रूप सतगुरु ही दिला सकते हैं:

सतगुर जेवड अवर न कोए॥ गुर पारब्रहम परमेसर सोए॥
जनम मरण दूख ते राखै॥ माइआ बिख फिर बहुड़ न चाखै॥[10]

आशाओं की पूर्ति

जो कुछ हमें प्रारब्ध से प्राप्त होता है, उससे हम संतुष्ट नहीं होते। ख़ुद मेहनत करके कितना भी कमा लें, हमें संतुष्टि नहीं होती। अपनी हैसियत के मुताबिक़ हमारी सभी ज़रूरतें पूरी भी होती जाती हों, फिर भी हम दूसरों से अपनी तुलना करके कमी महसूस करते हैं और दु:खी होते हैं। सोचते हैं कि मेरे किसी परिचित के पास पचास लाख है, मेरे पास पाँच ही क्यों? एक और परिचित ने ट्रैक्टर ख़रीद लिया और मैं बूढ़े बैल ही हाँक रहा हूँ। कोई कितना ही ख़ुशहाल क्यों न हो, फिर भी उसका मन कमी के एहसास से बेचैन रहता है। सांसारिक पदार्थों के लिए प्रार्थनाओं की रटन, माला के मनकों की तरह जिह्वा पर चलती रहती है। न प्रार्थना स्वीकार होने का संयोग बनता है और न आहें भरने से राहत

मिलती है। अपनी कोशिश सफल नहीं होती, किसी और की सहायता काम नहीं आती। लेकिन जब भाग्य जागता है तभी सतगुरु से मिलाप होता है, उसकी दया-मेहर से आशाएँ पूरी हो जाती हैं, मन की तृष्णाएँ मिट जाती हैं:

जिस मसतक भाग तिन सतगुर पाइआ॥
पूरी आसा मन त्रिपताइआ॥[11]

सतगुरु के चरणों की शरण में जाने से निराशा का मुँह नहीं देखना पड़ता:

चरन सेव संत साध के सगल मनोरथ पूरे॥[12]

सतगुरु से की गई विनती काम सँवारने का साधन बन जाती है:

कहो बेनंती अपुने सतगुर पाहे॥ काज तुमारे देइ निबाहे॥[13]

और:

गुर पूरा आराधे॥ कारज सगले साधे॥[14]

भाँति-भाँति की आशाएँ और तृष्णाएँ जाग्रत होना मनुष्य के मन की कमज़ोरी है। गंदे पानी में उठते बुलबुलों की भाँति एक इच्छा पूरी हुई तो मन दस और सामने रख देता है। उनमें से कुछ पूरी नहीं हो पातीं और कुछ का पूरा होना ही हमारे लिए शाप बन जाता है।

कुछ चाहते या माँगते समय मन किसी से सलाह-मशविरा नहीं करता। वह सोचता है कि मुझसे ज़्यादा समझदार और कौन होगा? लोभी मन विवेक की तरफ़ से मुँह मोड़ लेता है। इसके परिणामस्वरूप कुछ इच्छाओं की पूर्ति में देरी होने के कारण हम दुःखी रहते हैं और जो पूरी होकर सूली पर टाँग देती हैं, उनके बारे में हमारा पश्चात्ताप ख़त्म होने का नाम नहीं लेता।

अगर दिल दुःखी हो, तो अपना दुःख किसी हमदर्द के साथ बाँट लेने से तकलीफ़ कम हो जाती है। गुरु अर्जुन देव हमें अपने दुःखों-कष्टों को अपने परम हितैषी सतगुरु के आगे समर्पण कर देने की सलाह देते हैं:

जीअ की बिरथा होए सो गुर पह अरदास कर॥
छोड सिआणप सगल मन तन अरप धर॥[15]

अगर हम प्रभु की रज़ा में रहना सीख जाएँ, तो हमारी चिंता, व्यथा और दुविधा दूर हो सकती है, क्योंकि सतगुरु की शरण में जाने से हमारी चिंताओं को कैसे और किस हद तक दूर करना है, इसे सतगुरु ही बेहतर जानता है। हमें तो केवल सतगुरु पर बिना शर्त पूरा विश्वास रखना है।

साधू की मन ओट गहु उकत सिआनप तिआग॥
गुर दीखिआ जिह मन बसै नानक मसतक भाग॥[16]

अपने चरणों में शरण बख़्शते समय यानी दीक्षा के समय सतगुरु जो शिक्षा देते हैं, हमें उसे अपने हृदय की तख़्ती पर गहरा उकेर लेना चाहिए। इससे बड़ी विरासत और कोई नहीं है। बाप-दादा की विरासत से संबंधित दस्तावेज़ क़ीमती जानकर सँभालकर रखने के लिए नहीं, बल्कि उन पर अमल करने के लिए होते हैं। इसी तरह अगर हम सतगुरु की शिक्षा पर अमल करें, तो समझो सोया भाग्य जाग उठा, तक़दीर बदल गई:

जा कउ गुरमुख रिदै बुध॥ ता कै कर तल नव निधि सिधि॥[17]

हमारे मन को काल की कठपुतली कहा जाता है। साथ ही ठगिनी माया के पैदा किए भ्रम और धोखे हमारी बुद्धि पर काले परदे डाले रखते हैं। इसलिए बार-बार किए कुकर्मों से हमारी बुद्धि इतनी मलीन हो जाती है कि उसकी तुलना में तेली के कोल्हू को साफ़ करनेवाला कपड़ा भी क्या मलिनता रखता होगा, लेकिन जो जीव सतगुरु की शरण

में जाकर अपने हृदय में प्रभु का नाम बसा लेता है, उसका अंत:करण प्रकाशमान हो जाता है। फिर तो नौ निधियाँ और आठों सिद्धियाँ उसकी मुट्ठी में आ जाती हैं।

कामधेनु

एक कामना की पूर्ति के लिए एक द्वार खटखटाया, दूसरी की पूर्ति के लिए कोई दूसरा। वे दो अभी पूरी नहीं हुईं कि तीसरी कामना बेसब्री से तिलमिलाने लगी। ऐसी हालत में कल्पना करते हैं कि अगर पारिजात* वृक्ष हमारे आँगन में होता या कामधेनु† गाय हमारे पास होती, तो सभी कामनाएँ उनसे पूरी करवा लेते। ग्रंथों में वर्णन है कि श्रीकृष्ण अपनी रानी सत्यभामा के हठ पर पारिजात वृक्ष, इंद्र देवता से छीनकर द्वारिका लाए थे और कामधेनु पर अधिकार करने के लिए कार्तवीर्य को ऋषि जमदग्नि की जान लेनी पड़ी थी। अगर कोई कामना ख़ून-ख़राबे से ही पूरी हुई तो क्या लाभ? मान लो ऐसी कोई इच्छापूरक वस्तु संसार में किसी को मिल भी जाए, तो केवल उसी के सपने साकार हो सकते हैं, जब कि तीव्र तृष्णाओं की तरंगें तो हर इनसान के मन में उठ रही हैं। इस जटिल समस्या का समाधान करने के लिए गुरु साहिब एक अमूल्य सुझाव प्रस्तुत करते हैं:

> पारजात लोड़ह मन पिआरे॥ कामधेनु सोही दरबारे॥
> त्रिपित संतोख सेवा गुर पूरे नाम कमाए रसाइणा॥[18]

अर्थात् अगर तुम्हें पारिजात वृक्ष या कामधेनु जैसी सब मनोरथ पूरी करनेवाली वस्तु की ज़रूरत हो, तो पूरे गुरु की सेवा करके नाम की दात प्राप्त करो। नाम की कमाई से तुम्हें ऐसा उत्तम रस मिलेगा कि तुम्हारी सभी कामनाएँ पूरी हो जाएँगी और तुम हर समय तृप्ति का अनुभव करोगे।

---

* समुद्र मंथन से निकला हुआ इच्छा पूर्ण करनेवाला वृक्ष

† पुराणों के अनुसार एक प्रसिद्ध गाय जो समुद्र मंथन के समय समुद्र में से निकलनेवाले चौदह रत्नों में से एक थी। इसे सब प्रकार की कामनाएँ पूरी करनेवाली माना जाता है।

अगर बाक़ी सब कुछ मिल जाए, परंतु वह एक जो चाहने के योग्य है अर्थात् सतगुरु ही न मिले, तो जीवन को धिक्कार है:

> इकस सतगुर बाहरा ध्रिग जीवण संसार॥[19]

सुख-दु:ख

सुख कई प्रकार के होते हैं और सतगुरु हर प्रकार का सुख देने में समर्थ है। इसलिए जिस भाग्यशाली जीव को उसकी शरण प्राप्त हो जाए, उसे सभी सुख अपने आप मिल जाते हैं:

> सरब सुखा का दाता सतगुर ता की सरनी पाईऐ॥[20]

जब सिरजनहार की कृपा होती है तो वह हमारे जीवन की डोर गुरु के हाथ में दे देता है, गुरु नामदान बख़्शकर ऐसी दया करता है कि हमारे शोक, संताप पंख लगाकर उड़ जाते हैं। फिर ग़म और चिंताओं की लू परेशान नहीं करती:

> भए क्रिपाल गुसाईआ नठे सोग संताप॥
> तती वाउ न लगई सतगुर रखे आप॥[21]

जो दु:ख-क्लेश पिछले बुरे कर्मों के फलस्वरूप प्रारब्ध के रूप में हमारे जीवन में आते हैं, उनको हमें हर हाल में सहन करना है। अगर हमने अपनी लापरवाही से इस तन-मन के चोले को गंदा कर लिया है, तो दोष किसी और को नहीं दिया जा सकता। उस मैल को धोने की ज़िम्मेदारी हमारी ही है। हमारे पुण्य-पाप का हिसाब काल रखता है। उसके निपटारे में किसी प्रकार की रिआयत संभव नहीं है। गुनहगार के लिए केवल यही दो रास्ते होते हैं कि या तो वह अपनी सज़ा रोते बिलखते काट ले या जीभ को दाँतों तले दबाकर। इनके लिए क्षमा केवल सतगुरु से ही मिल सकती है। वह दीक्षा की दात बख़्श दे और

उसकी हिदायतों के मुताबिक़ हम प्रभु के नाम की अर्थात् शब्द की साधना करें, तो काल का जाल कट जाता है और माया के ताप का प्रभाव नहीं होता:

संत प्रसाद हर जापीऐ॥ सो जन दूख न विआपीऐ॥
जा कउ गुर हर मंत्र दे॥ सो उबरिआ माइआ अगन ते॥[22]

ख़ुशियाँ

किसी ज़मींदार की फसल अच्छी हो जाए, उसे ख़ुशी होती है। दुकानदार के गोदाम में पड़े माल के दाम बढ़ जाएँ, वह ख़ुश हो जाता है। पुत्र का जन्म, पुत्री के हाथ पीले होना, पद में उन्नति या लिखी पुस्तक, चित्रित तस्वीर का सम्मान आदि की आनंदित करनेवाली घटनाएँ होती हैं, तो मनुष्य अपने भाग्य को सराहता है। पर ये सुखद अवसर रोज़ नहीं आते। इनकी ख़ुशी कुछ ही दिनों में फीकी पड़ जाती है, मानों एक कली खिली और मुरझा गई। पर गुरु की दया, उसकी मेहर की एक नज़र, लाखों ख़ुशियों से बढ़कर होती है, लाखों बादशाहियों से बेहतर:

लख खुसीआ पातसाहीआ जे सतगुर नदर करेइ॥[23]

जिस प्रकार किसी शहर में हवेलियाँ और झोपड़ियाँ जान-बूझकर साथ-साथ बना दी गई हों, संसार के जीवों की ख़ुशियों और ग़मियों का वही हाल है: *हरख सोग का नगर इह कीआ॥*[24] ख़ुशी के पाँव ज़्यादा देर नहीं टिकते, दु:ख भगाने पर भी नहीं भागता। पर गुरु के कृपापात्र की बात निराली है। गुरु उसे उस स्थान पर पहुँचा देता है, जहाँ अनहद शब्द निरंतर गूँजता रहता है *अनहत बाणी थान निराला॥*[25] धुन से जुड़ी आत्मा प्रभु प्रियतम को मोह लेती है: *ता की धुन मोहे गोपाला॥*[26] फिर ख़ुशी ही ख़ुशी है, ग़मी निकट नहीं आती:

हरख अनंत सोग नही बीआ॥ सो घर गुर नानक कउ दीआ॥[27]

पूरा गुरु मिल जाए तो अनंत दुखों से छुटकारा मिल जाता है। वह सब इच्छाएँ पूर्ण करनेवाला है और सुख-शांति का अनंत भंडार है। वह कितनी ही उदारता से दया बाँटे, फिर भी उसका अमृत-सरोवर सदा लबालब भरा रहता है:

मन किउ बैराग करहिगा सतगुर मेरा पूरा॥
मनसा का दाता सभ सुख निधान अंम्रित सर सद ही भरपूरा॥[28]

हम जगत के जीव भट्ठी के दानों की तरह हैं। किसी को कोई दु:ख, किसी को कोई दर्द। जो छोटे-बड़े सुख हम अपनी हिम्मत से सांसारिक पदार्थों के रूप में जुटा लेते हैं, वे समय पाकर सब दुखों में बदल जाते हैं। देखते-देखते वे मुसीबतों का रूप धारण कर लेते हैं। जब हम सर्वसमर्थ सतगुरु का उपदेश सुनकर उसकी रज़ा में रहना सीख जाते हैं, तो पीड़ा कम महसूस होती है। जो सुख के साधन इतने कष्ट और परिश्रम से जोड़े जाते हैं और जो जाते समय हमें तड़पता छोड़ जाते हैं, फिर हम उनके पीछे नहीं दौड़ते। गुरु के उपदेश के अनुसार प्रभु नाम की कमाई अपने आप में ऐसी प्राप्ति है जिसके आनंद का एक अनूठा स्वाद है। वह जीवन में स्थायी बहार ले आती है, पतझड़ फिर उस तरफ़ से गुज़र भी नहीं सकता।

सिमर सिमर गुर सतगुर अपना सगला दूख मिटाइआ॥
ताप रोग गए गुर बचनी मन इछे फल पाइआ॥
मेरा गुर पूरा सुखदाता॥
करण कारण समरथ सुआमी पूरन पुरख बिधाता॥[29]

चंदन

यह संसार आग के समुद्र की तरह है, जिसमें जीव डुबकियाँ लगा रहे हैं। वे इसमें कभी गहरे डूब जाते हैं तो कभी ऊपर ही ऊपर तैरते हैं। यदि समुद्र के तट पर पल दो पल सुख की साँस लेते हैं, तो भी इस समुद्र

की आग की तपिश उन्हें सताती है। राहत तभी मिलती है जब गुरु की शरण मिल जाए। गुरु ऐसा चंदन है जो अपनी शीतलता से जलते हुए जीवों का ताप हर लेता है:

बलतो जलतो तउकिआ गुर चंदन सीतलाइओ॥[30]

मोह-बंधन

एक बड़े वृक्ष को गिर जाने का भय रहता है। ऐसी दुर्घटना से बचने के लिए वह अपनी जड़ें और शाखाएँ चारों ओर फैलाता है। उसकी जड़ें आँधी और तूफ़ान के प्रकोप से उसका बचाव करती हैं और धरती में से मिलनेवाली ख़ुराक भी वृक्ष को देती रहती हैं।

वृक्ष में भी अन्य जीवों की तरह जान होती है, एहसास होते हैं, पर वृक्ष उनकी तरह जब मन चाहे चल नहीं सकता। जब उसे नदी की बाढ़ या जंगल की आग जैसी मुसीबतों से बचने की ज़रूरत पड़े, तो वह कहीं दूसरी जगह नहीं जा सकता। उसका सहारा, उसका आधार वही जड़ें उसकी बेड़ियाँ बनी रहती हैं। उसका सारा जीवन, गरमी-सर्दी में एक ही जगह खड़े बीत जाता है।

वृक्ष की जड़ें ठीक उतनी ही उगती हैं जितनी उसके जीवित रहने के लिए आवश्यक हों। वृक्षों की तुलना में अत्यंत श्रेष्ठ बुद्धि के मालिक होते हुए भी हम मनुष्य, ज़रूरत से बहुत अधिक बंधन इकट्ठे कर लेते हैं। रोटी कपड़े से ही हमें संतोष नहीं होता। अधिक से अधिक हुकूमत, ज़मीन, जायदाद, दौलत, साज़ो-सामान पाने की हमारी लालसा ख़त्म नहीं होती। हम तरह-तरह के आमोद-प्रमोद से या मनोरंजन से भी तृप्त नहीं होते। इस दिशा में किसी भी प्रकार की प्राप्तियाँ हमें सुखी नहीं कर पातीं, बल्कि वे हमारी मजबूरियों और लाचारी का कारण बन जाती हैं:

सुख नाही बहुतै धन खाटे॥ सुख नाही पेखे निरत नाटे॥
सुख नाही बहु देस कमाए॥[31]

यही बात माता-पिता, पति-पत्नी, बेटा-बेटी, दोस्त-मित्र आदि जैसे गहरे मोह के रिश्तों की है: *बंधन मात पिता सुत बनिता॥*[32] यही नहीं, वे कर्म भी जो हम मन के कहे अपने आत्मिक उद्धार के लिए करते हैं—तीर्थ-व्रत, दान-पुण्य आदि—सब कर्मफल के नियम के अधीन हमें वापस संसार के जलते समुद्र में फेंक देते हैं। हर अपराधी को हथकड़ी उसकी करनी से लगती है, पर उसे उतारना उसके वश में नहीं होता। इसी प्रकार हमारे मोह के बंधन, जिन्होंने हमारे रोम-रोम को जकड़ रखा है, हमारे अपने ही कर्मों का परिणाम हैं। उनसे छुटकारा दया की मूरत केवल सतगुरु ही दिला सकता है:

बंधन तोड़ बोलावै राम॥ मन मह लागै साच धिआन॥
मिटह कलेस सुखी होए रहीऐ॥ ऐसा दाता सतगुर कहीऐ॥[33]

कोई भी विकार अच्छा नहीं, पर मोह विशेष रूप से आवागमन का कारण बनता है—मोह चाहे किसी संबंधी, धन-दौलत या मान-बड़ाई का हो। इन इच्छाओं की पूर्ति के लिए जीव को निश्चित रूप से दोबारा जन्म लेना पड़ता है। उसी प्रकार जीव जो पाप कर देता है या उससे हो जाता है, जब तक उसकी सज़ा न भुगत ली जाए, उसे संसार से छुटकारा नहीं मिलता। परिणामस्वरूप जीव का न वस्तुओं से और न व्यक्तियों से मोह टूट पाता है। मन की कमज़ोरियाँ उसे पापों से मुक्त नहीं होने देतीं। इस प्रकार का बेबस जीवन मानों अंधे कुएँ में उम्र बिताना है। उसमें से गुरु ही निकाले तो निकाले, अपने आप कभी नहीं निकल सकते:

अनिक पाप मेरे परहरिआ बंधन काटे मुकत भए॥
अंध कूप महा घोर ते बाह पकर गुर काढ लीए॥[34]

धोबी घाट

परमात्मा की दरगाह में संतों का बहुत सम्मान होता है। वे अपनी शक्ति भी वैसे ही प्रयोग में लाते हैं जैसे उनके भक्तों को पसंद हो। नियमभंग की

आपत्ति उठाकर या किसी और तर्क के सहारे उनके ऐसा करने में कोई दख़ल या रुकावट नहीं डाल सकता:

जो हर जन भावै सो करे दर फेर न पावै कोए॥[35]

पर इसका अर्थ यह नहीं लिया जाना चाहिए कि संत उसके इस अपनेपन का अनुचित लाभ उठाकर मनमानी करने लगते हैं। अगर आत्म-ज्योति को परमात्म-ज्योति में मिलना है, तो वह उतनी ही साफ़-सुथरी होनी चाहिए जितना निर्मल वह प्रियतम ख़ुद है। सतगुरु शरण में आए शिष्य को पहले उसकी हर प्रकार की मलिनता से मुक्त करते हैं, तब वह अपने स्रोत में समाने के योग्य होता है। इस उपकार के लिए सतगुरु का सहारा लेना आवश्यक होता है:

सुखदाता गुर सेवीऐ सभ अवगण कढै धोए॥[36]

संत-संगति के धोबी घाट पर वह सारी मैल धुल जाती है जो हमारे आवागमन के चक्कर का कारण है:

साधू संगत निरमला आप करे प्रतिपाल॥
जनम मरण की मल कटीऐ गुर दरसन देख निहाल॥[37]

जो मलिनताएँ आत्मा के मार्ग में बाधा बनती हैं, उनमें से प्रमुख हौंमैं (अहंकार) है। अहं के होते आवागमन समाप्त नहीं होता। उससे छुटकारा सतगुरु दिलाता है:

गुर पूरै हउमै मल धोई॥ कहो नानक मेरी परम गति होई॥[38]

ऐसा कौन-सा इनसान है जिससे ग़लती नहीं होती? चाहे वह कोई पाप न करने के प्रति सचेत रहे, फिर भी कई पाप अनजाने में भी हो जाते हैं और हर प्रकार के पापों का फल भुगतना पड़ता है। जब सतगुरु दया करके उसके हृदय को नामरूपी अमृत से सराबोर कर देते हैं, तो किसी

भी जन्म के कर्मों और बुरे संस्कारों का नामोनिशान तक नहीं रहता। फिर उसे धर्मराज के सामने अपमानित नहीं होना पड़ता।

गुर पूरै मेरी राख लई॥
अंम्रित नाम रिदे मह दीनो जनम जनम की मैल गई॥[39]

बख़्शिंद

संत-सतगुरुओं की वाणी बार-बार दोहराती है कि हमें संसार-सागर को पार करने के लिए जी-तोड़ कोशिश करनी चाहिए। यह कोशिश किसी पूरे गुरु की अगुआई में ही की जा सकती है, इसके विषय में दो राय नहीं हो सकतीं। अगर सफलता मिलेगी, इसी राह पर चलकर मिलेगी। लेकिन अपनी ओर से सारी कोशिश करते हुए हमें इस भ्रम में नहीं रहना चाहिए कि सफलता हमारे अपने श्रम से प्राप्त हुई है, क्योंकि जो कुछ मिलता है, गुरु की बख़्शिश से मिलता है। इसलिए उक्त मनोरथ की प्राप्ति के लिए कोशिश करने के साथ-साथ यह विनती भी करते रहना है:

किरपा करहो दीन के दाते मेरा गुण अवगण न बीचारहो कोई॥
माटी का किआ धोपै सुआमी माणस की गति एही॥[40]

अर्थात् हे दीनदयाल! मेरे अवगुण माफ़ किए जाने के क़ाबिल नहीं हैं और मेरे गुण मुझे किसी दात का अधिकारी नहीं बनाते। जो शरीर निरी मिट्टी से ही बना हुआ है, उस पर से मिट्टी की चाहे कितनी ही परतें धोकर उतार दी जाएँ, नीचे से सोना तो नहीं निकल सकता। हे कृपानिधान! न मेरी किसी अच्छाई को परखें, न मेरी ग़लतियों और गुनाहों पर विचार करें। मुझ पर बख़्शिश कर दें। एक अन्य स्थान पर गुरु साहिब कहते हैं:

गुर गोपाल गुर गोविंदा॥ गुर दइआल सदा बखसिंदा॥[41]

अर्थात् गुरु जगत का स्वामी और पालनहार है। पालनहार के हृदय का कोमल होना स्वाभाविक है और कोमल चित्तवाला दंड देने की विधियाँ नहीं खोजता, बल्कि क्षमा करने के लिए बहाने ढूँढ़ता है। यह गुरु का स्वभाव है, उसका बिरद है और उसकी रज़ा इसके अनुसार ही कार्य करती है।

सेवा

अगर संत-सतगुरु की सेवा करने का अवसर मिल जाए तो इस भ्रम का शिकार नहीं होना चाहिए कि हम अपनी मेहनत से उन पर एहसान कर रहे हैं। अपने शरीर से गुरु की सेवा कर पाने का अवसर प्रभु की कृपा से ही प्राप्त होता है। सतगुरु ख़ुद किसी उपकार के मोहताज नहीं होते। इसलिए उनकी सेवा के सौभाग्य के लिए हमें उनका आभारी होना चाहिए। इसके लिए किसी शाबाशी की आशा नहीं रखनी चाहिए:

हसत चरन संत टहल कमाईऐ॥ नानक इह संजम प्रभ किरपा पाईऐ॥[42]

कोई महाबली राजा या अत्यंत धनवान व्यक्ति हमारी मदद कर सकता है, लेकिन किस हद तक? दूसरी ओर गुरु के सामर्थ्य का कोई पारावार नहीं:

कर सेवा पारब्रहम गुर भुख रहै न काई॥
सगल मनोरथ पुंनिआ अमरा पद पाई॥[43]

गुरु इतना दे सकता है कि हम संतुष्ट ही नहीं, बल्कि तृप्त हो जाते हैं यानी कुछ माँगने की इच्छा ही बाक़ी नहीं रहती। केवल संसार की ओर से ही तृप्त नहीं होते, बल्कि हमें अमरता प्राप्त हो जाती है; आवागमन का चक्र ही समाप्त हो जाता है।

गुरु नानक देव जी कहते हैं: *नानक दुखीआ सभ संसार॥*[44] उनका यह वचन कहावत बन गया है, क्योंकि आपने एक प्रत्यक्ष सच्चाई को शब्दों का रूप दे दिया है।

इस संसार में बड़े से बड़े राज्य का मुखिया, अपार संपत्ति का स्वामी, शारीरिक सत्ता, सुंदरता का प्रतीक, किसी भी तंगी से मुक्त व्यक्ति, दावे के साथ नहीं कह सकता कि उसे कोई गिला-शिकवा या परेशानी नहीं है। उसके मन में कोई न कोई काँटा अवश्य चुभ रहा होगा। काँटा बड़ा हो या छोटा, उससे मन अशांत ही रहेगा। शारीरिक कष्ट को ही देखें। जिसे कोई बीमारी लग जाती है, वह उससे पल्ला छुड़ाने के लिए हर तरफ़ दौड़ता है; वैद्यों, हकीमों, डॉक्टरों के पास ही नहीं, बल्कि तावीज़ आदि देनेवाले और जादू-टोना करनेवालों के पास भी जाता है। यह ज़रूरी नहीं कि महँगे से महँगे उपचार से उसकी तकलीफ़ दूर हो जाए। हाँ, पूरा सतगुरु धन्वंतरि वैद्य है जिसके सामने कोई दु:ख-दर्द ठहर नहीं सकता, न तन का न मन का। उसकी शरण लेने से हर बला टल जाती है, उससे छुटकारा मिल जाता है:

सतगुर पूरै सेविऐ दूखा का होए नास॥[45]

दर्शन

अंधविश्वास के कारण कुछ लोगों के मन में यह भ्रम पैदा हो जाता है कि कई लोग ऐसे मनहूस होते हैं जिनका मुँह दिखाई दे जाए तो काम बिगड़ जाता है। लेकिन जहाँ तक संतजनों के दर्शनों की महिमा का सवाल है—जिस जीव को सौभाग्य से पूर्ण संत के दर्शन हो जाएँ, उसके हृदय में अपार आनंद की अनुभूति होती है:

गुर दरसन देख मन होए बिगास॥[46]

उसका दीदार तृष्णा, ईर्ष्या और क्रोध की अग्नि को शांत करता है, इसके साथ विकारों में सबसे ज़्यादा प्रचंड हौंमैं की जड़ों को ढीला करता है:

जलन बुझी सीतल होए मनूआ सतगुर का दरसन पाए जीउ॥[47]

तथा:

सतगुर दरसन अगन निवारी॥ सतगुर भेटत हउमै मारी॥[48]

सतगुरु के दर्शन और संगति प्राप्त होना किसी भी व्यक्ति के लिए अत्यंत सौभाग्यशाली घटना होती है। गुरु के दिव्य चेहरे, उनके आदर्श जीवन और उनके शिष्यों के पवित्र और विनम्र व्यवहार से मनुष्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है। सतगुरु के मार्गदर्शन में चलकर वह स्वयं निर्मल हो जाता है और उससे प्रेरणा पाकर उसके मित्र-संबंधी भी कुछ हद तक कल्याण के पात्र बन जाते हैं:

दरसन पेखत भए पुनीता॥ सगल उधारे भाई मीता॥[49]

पवित्र माने गए कुओं, तालाबों, नदियों में स्नान करने से शुभ फल मिलने की आशा की जाती है, हालाँकि ऐसे विश्वास का कोई ठोस आधार नहीं है। विचार करें, कुआँ हम ख़ुद खोदते हैं और उसमें से वही पानी निकलता है जो अन्य कुओं में से निकलता है। उसी प्रकार पवित्र माने गए तालाब को खोदनेवाले हमारे अपने हाथ होते हैं और उनमें नहरों का पानी डाला जाता है। कुछ समय बाद यह पानी गंदा हो जाता है, इस तरह के पानी से दो मिनट नहाकर कोई निर्मल कैसे हो जाएगा? इससे तो तन की मैल साफ़ होने का भी एतबार नहीं, फिर भला आंतरिक मैल कैसे उतरेगी? वास्तव में पावन तथा मुक्ति का फल देनेवाला तीर्थ केवल सतगुरु ही है। गुरु अर्जुन देव कहते हैं:

संत का दरस पूरन इसनान॥[50]

वह घड़ी अत्यंत शुभ होती है जब गुरु से मिलाप का अवसर मिलता है, क्योंकि 'सफल दर्शन' गुरु का एक विशेष गुण है। उसका दर्शन करके कोई ख़ाली हाथ नहीं लौटता, कुछ न कुछ लाभ अवश्य लेकर आता है। चाहे पापों के भारी पत्थर हमारे गले में बँधे हों, फिर भी वह हमें भवसागर से उबार लेता है:

धंन सो वेला जित मै सतगुर मिलिआ॥
सफल दरसन नेत्र पेखत तरिआ॥[51]

सतगुरु के स्वरूप को नम्रतापूर्वक हृदय में टिकाकर एकाग्रता से उसका ध्यान किया जाए तो शिष्य को कोई कमी महसूस नहीं होती, उसकी कामनाएँ पूरी होने लगती हैं:

गुर के चरन हिरदै वसाए॥ मन चिंतत सगले फल पाए॥[52]

अंतर में गुरु के दर्शन

गुरु के आंतरिक दर्शन कैसे हों, इसका उत्तर गुरु अर्जुन देव निम्नलिखित शब्दों में देते हैं:

जे को सिख गुरू सेती सनमुख होवै॥
होवै त सनमुख सिख कोई जीअहो रहै गुर नाले॥
गुर के चरन हिरदै धिआए अंतर आतमै समाले॥
आप छड सदा रहै परणै गुर बिन अवर न जाणै कोए॥
कहै नानक सुणहो संतहो सो सिख सनमुख होए॥[53]

अर्थात् अगर शिष्य को अपने सतगुरु के आंतरिक दर्शन की इच्छा हो, तो वह तन-मन से उनकी शरण में रहे, अपने अंतर में उनके चरणों से ध्यान जोड़े। उनके चरणों में अपने अहंकार का समर्पण कर दे, किसी और को अपनी श्रद्धा का पात्र न बनाए। इस तरह अभ्यास करने से उसे गुरु के आंतरिक दर्शन अवश्य होंगे।

लोग पूजा करने के आदी हैं। पूजा अपने इष्ट को प्रसन्न करने के लिए की जाती है। जो मूर्तियाँ हम बाज़ार से ख़रीदकर लाते हैं, वे हमारे इष्ट की ख़ुद बनाई हुई नहीं, बल्कि किसी कारीगर द्वारा बनाई गई हैं। कारीगर पत्थर, धातु, मसाले, मिट्टी को कोई रूप दे देता है। कारीगर ने पहले कभी उसकी झलक नहीं देखी। वह बेचारा आंतरिक दृष्टि की

या और किसी प्रकार की रूहानी प्राप्ति का दावा नहीं कर सकता। एक ही कारीगर के हाथ से बनी सब मूर्तियों की शक्ल बिलकुल एक-सी नहीं होती। जैसे उसकी कल्पना ने काम किया, जैसे उसका हाथ चला, वैसी मूर्ति बन गई। ख़रीदनेवाले श्रद्धालु भी मूर्ति के चेहरे से कुछ नहीं पहचान सकते। जिसे तीर-कमान से सजाया गया हो, वह मूर्ति भगवान राम की मान ली जाती है; जिसकी चार भुजाएँ हों और हाथों में शंख, चक्र, गदा तथा कमल हों, वह भगवान विष्णु और जिसने मृगछाला से शरीर ढककर त्रिशूल उठा रखा हो तथा जिसके केश में से पानी की धारा बहती दिखाई देती हो, वह बिना किसी शंका के शिव है। इष्ट मूर्ति की पहचान उसकी शक्ल नहीं करवाती, उसके निर्जीव चिह्न करवाते हैं। इसलिए महापुरुष किसी मूर्ति या तसवीर की पूजा को महत्त्व नहीं देते।

गुरु अर्जुन देव कबीर साहिब का समर्थन करते हुए लिखते हैं:

जो पाथर कउ कहते देव॥ ता की बिरथा होवै सेव॥
जो पाथर की पांई पाए॥ तिस की घाल अजांई जाए॥ ...
न पाथर बोलै ना किछ देइ॥ फोकट करम निहफल है सेव॥[54]

जीवित गुरुरूपी इष्ट को अपनी आँखों से देखा जा सकता है। उसकी संगति में रहते हुए उसका उपदेश सीधा कानों से सुना जा सकता है। उसकी अनुपस्थिति में भी उसके ध्यान के द्वारा अंतर में उसका साक्षात्कार किया जा सकता है। इस आधार पर गुरु अर्जुन देव फ़रमाते हैं:

गुर मूरत सिउ लाए धिआन॥ ईहा ऊहा पावह मान॥[55]

गुरु के स्वरूप में ध्यान लगानेवाली पूजा के फल का क्या कहना? यह दोनों लोकों में स्वीकृत है, संसार में भी और परमात्मा की दरगाह में भी।

हमें एकाग्रचित होकर नम्रता से दोनों भौंहों के बीच में ध्यान लगाना चाहिए। जब गुरु का नूरी स्वरूप वहाँ प्रकट हो जाए, तो सब दुःख दूर हो जाते हैं:

गुर के चरण ऊपर मेरे माथे॥ ता ते दुख मेरे सगले लाथे॥[56]

हमें तो गुरु के बाहरी दर्शन भी हमेशा उपलब्ध नहीं होते। यह गुरु की रज़ा और सुविधा पर निर्भर करता है। परंतु जब गुरु की सूक्ष्म छवि शिष्य के अंतर में आँखों के बीच में प्रकट हो जाए, तब वह हर समय उसके साथ-साथ रहती है। फिर जहाँ भी, जब भी मन करे उसका दीदार किया जा सकता है:

सफल मूरत गुर मेरै माथै॥ जत कत पेखउ तत तत साथै॥[57]

गुरु की पहचान

वास्तव में गुरु पारिजात के समान होता है। (उसका दर्शन फलदायक होता है) उसके द्वार का भिक्षुक ख़ाली हाथ नहीं, बल्कि झोली भरकर लौटता है। ऐसी कोई इच्छा नहीं जिसे वह पूरी करने में समर्थ नहीं है। वह तो सतपुरुष से मिलाप की मुराद भी पूरी कर देता है। मन में प्रश्न उठता है कि ऐसे गुरु की पहचान कैसे हो? माया की इस अंधेर नगरी में आँखें चुँधिया देनेवाला काँच का हर टुकड़ा कोहनूर हीरे के मोल बिकने का प्रयत्न करता है। अपने आप को साधु कहलानेवाले भेषधारी साधु जगह-जगह मिलते हैं। सच्चा जिज्ञासु उन्हें देखकर भ्रमित हो जाता है कि वह किसे छोड़े और किसे अपनाए?

गुरु अर्जुन देव 'सतगुरु' की निश्चित पहचान बताते हैं:

सत पुरख जिन जानिआ सतगुर तिस का नाउ॥
तिस कै संग सिख उधरै नानक हर गुन गाउ॥[58]

'जानिआ' से भाव हमारे सामाजिक जीवन की-सी जान-पहचान से नहीं है जो किसी अनजान से भी हो जाती है और केवल नमस्कार करने या सुख-स्वास्थ्य के बारे में पूछने तक सीमित होती है। यहाँ बहुत गहरे रिश्ते की ओर संकेत है, किसी के अंदर समा जाने या उससे एकरूप हो

जाने के रिश्ते की बात है। सतगुरु की संगति में आकर उनके मार्गदर्शन में शिष्य भवसागर के पार हो जाता है। धर्मराज के दूत उसके निकट नहीं आते, फिर उसका जन्म-मरण नहीं होता:

इह नीसाणी साध की जिस भेटत तरीऐ॥
जमकंकर नेड़ न आवई फिर बहुड़ न मरीऐ॥
भव सागर संसार बिख सो पार उतरीऐ॥[59]

गुरु रामदास जी फ़रमाते हैं:

जिस मिलिऐ मन होए अनंद सो सतगुर कहीऐ॥[60]

हम अपने मित्रों, संबंधियों और बचपन के साथियों से मिलकर आनंदित होते हैं, पर गुरु से मिलनेवाला आनंद ऐसा अनुपम है जो किसी अन्य साधन से नहीं प्राप्त हो सकता। इस विषय में कोई शंका न हो, इसलिए गुरु साहिब कहते हैं:

मन की दुबिधा बिनस जाए हर परम पद लहीऐ॥[61]

अर्थात् उसके मिलाप द्वारा दुविधा, भ्रम और भूलों का चक्रव्यूह ख़त्म हो जाता है। मन एकाग्र होकर प्रभु पर केंद्रित हो जाता है और इसके फलस्वरूप प्रभु की दरगाह में परमपद प्राप्त होता है।

'मेरी शरण में आओगे, तो संसार का अग्नि-सागर पार कर लोगे; फिर जन्म नहीं लेना पड़ेगा, प्रभु की गोद में जा बैठोगे'—सतगुरु अपने मुँह से ऐसा नहीं कहते। अगर कह भी दें तो कौन मानेगा? वास्तव में शिष्य सतगुरु के वचनों की परख नहीं कर सकता। सतगुरु तो अथाह और अपार समुद्र होते हैं। क्या नमक की डली समुद्र की गहराई माप सकती है?

सतगुर गहिर गभीर है सुख सागर अघ खंड॥[62]

गुरु की कृपा के बिना तो हमें अपने आप की पहचान भी नहीं हो सकती, गुरु की क्या परख कर सकते हैं? गुरु की शरण में हम अपनी

बुद्धि के बल पर नहीं जा सकते। प्रभु हमारे भाग्य में लिख देता है तभी गुरु की शरण प्राप्त होती है:

जा कै मसतक करम प्रभ पाए॥ साध सरण नानक ते आए॥[63]

परमेश्वर और गुरु

पानी भाप बनकर उड़ जाता है तो दिखाई नहीं देता। जब वही भाप आकाश से ओले बनकर गिरती है, तब हम उसे आँखों से देखने के साथ-साथ हाथों से भी छू सकते हैं, मुँह में भी डाल सकते हैं। पानी, भाप, ओला, तीनों एक ही चीज़ होते हैं। इसी प्रकार निर्गुण परमेश्वर का सगुण रूप, परमेश्वर ही होता है, इसका हवाला वाणी में इस प्रकार दिया गया है: निरगुन आप सरगुन भी ओही॥[64]

गुरु अर्जुन देव मारू राग के एक सोलहे में कहते हैं कि जिसके चरणों की धूलि पापों की मैल धोकर जीव को पवित्र कर देती है और जिस धूलि के लिए देवी-देवता भी तरसते हैं, उस सतगुरु की शरण में आकर जीव भवसागर से पार हो जाता है। वह सतगुरु ख़ुद सतपुरुष परमात्मा ही होता है:

जा की धूर करे पुनीता॥ सुर नर देव न पावह मीता॥
सत पुरख सतगुर परमेसर जिस भेटत पार पराइणा॥[65]

और:

गुर की सेव न जाणै कोई॥ गुर पारब्रहम अगोचर सोई॥[66]

गुरु की सेवा का वास्तविक महत्त्व कोई बिरला सौभाग्यशाली जीव ही जानता है। साधारण मनुष्य को तो यह ज्ञान ही नहीं होता कि सतगुरु केवल सर्वश्रेष्ठ मनुष्य ही नहीं, बल्कि अपरंपार पारब्रह्म है, जिसके उपदेश पर अमल करने से सब संताप दूर हो जाते हैं, मन शांत और शीतल होता है:

पारब्रहम अपंरपर सतगुर जिस सिमरत मन सीतलाइणा॥[67]

आध्यात्मिक जगत में सतगुरु का क्या दर्जा है, यह गुरु अर्जुन देव जैसे परम संतों की वाणी से ही पता चलता है। आप कहते हैं: *गुर परमेसर पारब्रहम गुर डुबदा लए तराए॥*[68] *हर गुर पूरा आराधिआ दरगह सच खरे॥*[69], *गुर गोबिंद पारब्रहम पूरा॥*[70] और *गुर गोपाल पुरख भगवान॥*[71] जिस प्रकार पारब्रह्म, भगवान, हरि, परमेश्वर अलग-अलग हस्तियाँ नहीं हैं, उसी प्रकार गुरु और परमेश्वर में भी कोई भेद नहीं है।

आप इस दृष्टांत की सहायता से अपना भाव स्पष्ट करते हुए फ़रमाते हैं:

हर का सेवक सो हर जेहा॥ भेद न जाणहो माणस देहा॥
जिउ जल तरंग उठह बहु भाती फिर सललै सलल समाइदा॥[72]

जैसे समुद्र में लहर उठती है और फिर उसी में समा जाती है। वह किसी सीमा तक एक अलग इकाई होने का भ्रम उत्पन्न कर सकती है; पर वह समुद्र से कभी अलग नहीं होती, उससे अभिन्न है। इसी तरह सतगुरु भी अपने मूल रूप में सदा परमात्मा ही होता है। मनुष्य शरीर में होने के कारण उसे परमात्मा से भिन्न नहीं समझना चाहिए।

अगर पानी की कुछ मात्रा थाली में डाल दी जाए, फिर लोटे में, उसके बाद गिलास में, तो उसके आकार में अंतर आता जाएगा, पर असल में पानी तो वही का वही रहेगा। जब उसकी मौज हो तो वह परमात्मा देह धारण करके हमारे बीच में प्रकट होता है। ऐसा करने से उसके मूल रूप में कोई अंतर नहीं आता। वह पहले की तरह सतपुरुष ही होता है। गुरु अर्जुन देव अपने पिता और गुरु रामदास जी के मूल रूप की ओर संकेत करते हुए फ़रमाते हैं:

हर जीउ नाम परिओ रामदास॥[73]

अर्थात् देहस्वरूप में आने पर प्रभु का नाम 'रामदास' पड़ गया है।

प्रभुकृपा से गुरु मिलाप

किसी को बेटी की शादी के लिए अच्छा रिश्ता ढूँढ़ना हो तो वह लड़के को कार देकर राज़ी कर लेता है; माता-पिता को आभूषण, हीरे, बड़ी-बड़ी रक़में, आदि देकर प्रसन्न कर लेता है। अफ़सरों से काम करवाने के लिए रिश्वत दे दी जाती है, सिफ़ारिश करा दी जाती है। कहीं मित्रता करनी हो तो कॉकटेल पार्टी इस काम को पूरा कर देती है या किसी तरह की सेवा कर दी जाती है। लेकिन गुरु के सच्चे और पवित्र रिश्ते के मामले में ऐसी कोई चतुराई नहीं चलती। जिसकी कोई इच्छा ही नहीं, उसको क्या लेना-देना? हर लालच, मोह, कमज़ोरी से मुक्त, गुरु को कोई प्रलोभन नहीं दिया जा सकता। वह तो केवल प्रभु की बख़्शिश के रूप में मिलता है। जितनी बड़ी दया, उतना दयालु दाता। ऐसा दाता स्वयं प्रभु के सिवाय और कौन हो सकता है?

जिस नो कीतो करम आप पिआरे तिस पूरा गुरू मिलाइआ॥[74]

गुरु की दया से प्रभु मिलाप

अगर किसी को यह जानने की इच्छा हो कि परमात्मा कैसे मिलता है, तो उसे इसका उत्तर गुरु अर्जुन देव द्वारा संपादित आदि ग्रन्थ की पहली तुक में मिल जाएगा—'गुर प्रसाद', अर्थात् गुरु की कृपा द्वारा।

गुरु कृपा की महिमा बताते हुए वे कहते हैं कि वह प्रभु जो गुरु की दया से मिलता है, उसे अदृष्ट, अलख, अगम, अगोचर बताया गया है। परमात्मा ने अपने आप को ख़ुद बनाया है: *आपीन्है आप साजिओ...॥*[75] वह अपनी मौज में किसी को गुणों का भंडार बना दे अथवा गुणरहित कर दे, यह उसकी अपनी मौज है। हालाँकि प्रभु अदृष्ट है, लेकिन वह संतों, गुरमुखों और प्रिय भक्तों के चाहने पर उनके लिए प्रकट हो जाता है। जिस हृदय में प्रभु प्रकट हो जाता है उसे लोकलाज का परदा हटाने में कोई कठिनाई नहीं होती। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं कि अगर सतगुरु से मिलाप हो जाए तो हृदय में बस रहे परमेश्वर को अपनी आँखों से देखा जा सकता है:

नानक सतगुर मिलै त अखी वेखै घरै अंदर सच पाए॥[76]

गुरु रामदास जी इस संबंध में कहते हैं:

अदिसट अगोचर अलख निरंजन सो देखिआ गुरमुख आखी॥[77]

अर्थात् जब गुरु की दया हुई तो प्रभु को, जो इन आँखों और इंद्रियों का विषय नहीं है, जो अगम है, मैंने अपनी आंतरिक आँख से देख लिया।

गुरु अर्जुन देव उसके प्रकट होने का भेद खोलते हुए लिखते हैं:

नानक से अखड़ीआं बिअंन जिनी डिसंदो मा पिरी॥[78]

भाव है कि बाहरी आँखों से नहीं, केवल आंतरिक आँख से ही उसके दर्शन हो सकते हैं। जब गुरु की कृपा से मेरी हौंमैं मिट गई, भ्रम समाप्त हो गए, प्रभु मेरे अंदर ही प्रकट हो गया:

खुदी मिटी चूका भोलावा गुर मन ही मह प्रगटाइआ जीउ॥[79]

तथा:

गुर का सबद लगो मन मीठा॥ पारब्रहम ता ते मोहे डीठा॥[80]

अर्थात् जब गुरु की बताई युक्ति द्वारा मैं उस अनाहत शब्द से जुड़ गया, तो मुझे पारब्रह्म के दर्शन हो गए।

परमेश्वर गुरु की सहायता से ही मिलता है, लेकिन ऐसा जान लेने पर भी मन में ख़याल आता है कि इस मिलाप का कोई अन्य साधन भी तो हो सकता है। इस भ्रम को दूर करते हुए फ़रमाते हैं:

दइआल दमोदर गुरमुख पाईऐ होरत कितै न भाती जीउ॥[81]

अर्थात् गुरु के सिवाय और कोई साधन नहीं। अगर कोई पूछे, 'आख़िर उस एक के द्वारा ही क्यों?' इसका उत्तर है: प्रभु की यही रज़ा

और हुक्म है। उसके हुक्म को कोई नहीं बदल सकता। प्रभु को अपने हुक्म का कारण बताने की मजबूरी भी नहीं है।

वास्तव में प्रभु और सतगुरु दोनों एक होते हैं। जो गुरु को भाता है, वह प्रभु को स्वीकार होता है। गुरु अर्जुन देव फ़रमाते हैं:

गुर परमेसर एको जाण॥ जो तिस भावै सो परवाण॥[82]

जितनी अधिक मूल्यवान वस्तु किसी के पास होती है, वह उतनी ही दृढ़ता से उसकी रक्षा भी करता है। जिसे हम शहंशाहों का शहंशाह कहते हैं, उस सतपुरुष ने अपने घर में ताला लगा रखा है और अपने विश्वासपात्र यानी गुरु को चाबी सौंप दी है, इसलिए गुरु की शरण में जाए बिना जीव चाहे अनेकों उपाय कर ले, वह प्रभु को नहीं पा सकता।

जिस का ग्रिह तिन दीआ ताला कुंजी गुर सउपाई॥
अनिक उपाव करे नही पावै बिन सतगुर सरणाई॥[83]

इसी भाव को और स्पष्ट करते हुए गुरु साहिब कहते हैं:

बिन गुर न पावैगो हर जी को दुआर॥[84]

शिष्य के लिए सब कुछ करने करानेवाला स्वयं गुरु है, इसलिए उसके मार्गदर्शन के बिना हम कभी प्रभु के द्वार पर नहीं पहुँच सकते।

गुर करता गुर करणहार गुरमुख सची सोए॥
गुर ते बाहर किछ नही गुर कीता लोड़े सो होए॥[85]

अभागे जीवों ने अपनी आँखों पर भ्रमों की पट्टी बाँधी हुई है, वे प्रभु से मिलने की इच्छा होने पर भी उसे ढूँढ़ नहीं पाते। ऐसे जीवों के लिए गुरु अर्जुन देव के निम्नलिखित वचन प्रेरणादायक हैं:

साजनड़ा मेरा साजनड़ा निकट खलोइअड़ा मेरा साजनड़ा॥
जानीअड़ा हर जानीअड़ा नैण अलोइअड़ा हर जानीअड़ा॥[86]

वह साजन, मेरा बहुत प्यारा साजन, मेरे पास खड़ा है। वह प्राण-प्यारा हरि मुझे आँखों से दिखाई दे रहा है। गुरु साहिब ने तीन बार 'साजन', तीन बार 'जानी' और दो बार 'मेरा' शब्दों का प्रयोग किया है। 'साजन' के स्थान पर 'साजनड़ा', 'जानी' (प्यारा) के स्थान पर 'जानीअड़ा' भी कह दिया। क्योंकि प्रभु के साथ उनका अति गहरा संबंध है और वे उसके प्यार में सराबोर हैं। प्रेम और अपनेपन की प्रबल भावना प्रकट करने के लिए ही ऐसा कह रहे हैं। आगे फ़रमाते हैं:

नैण अलोइआ घट घट सोइआ अत अंम्रित प्रिअ गूड़ा॥
नाल होवंदा लह न सकंदा सुआउ न जाणै मूड़ा॥[87]

प्रभु को आंतरिक नेत्रों से देखा जा सकता है और वह हर एक के हृदय में विराजमान है, अत्यंत प्रिय है, अमृत से भी मीठा है। लेकिन हम नादान लोगों को यह ज्ञान नहीं है कि वह हमारी काया के अंदर मौजूद है और न ही हम प्रभु मिलाप की अनुपम मिठास से परिचित हैं। इसलिए हम उसे अंतर में ढूँढ़ने की कोशिश नहीं करते। ऐसा नहीं है कि प्रभु हमारे अंदर सोया हुआ है। वास्तव में हमारी अभागी आत्मा को अज्ञान की नींद ने बेसुध किया हुआ है, इसलिए उसके इतने निकट होते हुए भी हमें प्रभु की मौजूदगी का एहसास नहीं है। गुरु साहिब का प्रभु के बारे में 'घट घट सोइआ' कहना वैसे ही है जैसे हमारे बाल साहित्य में बाजरे की फसल की रखवाली कर रही बालिका कहती है कि जितनी देर चिड़ियाँ आती रहीं, मैं उड़ाती रही; जब नींद में मेरी आँख लग गई, उनका आना बंद हो गया। यही भाव व्यक्त करते हुए गुरु साहिब फ़रमाते हैं:

एका सेज विछी धन कंता॥ धन सूती पिर सद जागंता॥[88]

माइआ मद माता होछी बाता मिलण न जाई भरम धड़ा॥
कहो नानक गुर बिन नाही सूझै हर साजन सभ कै निकट खड़ा॥[89]

माया के नशे में अंधे, भ्रमों में फँसे व्यर्थ के धंधों में व्यस्त मनमुख को अपने साजन का ख़याल तक नहीं आता, वह उससे मिलने के बारे में सोचता तक नहीं। यह दुर्भाग्य तब तक बना रहता है जब तक वह गुरु की शरण में जाकर उससे दीक्षा प्राप्त नहीं कर लेता।

आपण लीआ जे मिलै

अगर प्रभु से मिलाप करना जीव के अपने वश में होता या मन की इच्छा के अधीन होता, तो उससे मिलने के इच्छुक वियोग का संताप क्यों सहन करते? कोई वस्तु जितनी अधिक क़ीमती होती है, उसके लिए उतना ही अधिक प्रयत्न करने या उतनी ही अधिक क़ीमत चुकाने पर वह मिलती है। जो सतपुरुष अनंत गुणों का स्वामी है, जिसकी महिमा अपरंपार है, उसके साक्षात्कार, उससे मिलाप जैसी ऊँची और कौन-सी प्राप्ति हो सकती है? यह काम जंगल में उगी किसी झाड़ी से बेर तोड़कर लाने जैसा आसान नहीं है। अपने पति परमेश्वर से मिलाप का संयोग हज़ारों-लाखों में से उस बिरली आत्मा को प्राप्त होता है जिसके मिलाप की ज़िम्मेदारी कोई संत-सतगुरु ले ले:

आपण लीआ जे मिलै विछुड़ किउ रोवंन॥
साधू संग परापते नानक रंग माणंन॥[90]

अटल सच्चाई यह है कि परमपुरुष से मिलना तभी संभव होता है, जब जिज्ञासु को यह सम्मान बख़्श देने का उपाय प्रभु ख़ुद करता है। जब प्रभु की दयादृष्टि होती है, वह जिज्ञासु का पल्ला किसी पूरे गुरु को पकड़ा देता है, फिर अखूट ख़ज़ानों का स्वामी वह गुरु उस जीव को अपनी दया-मेहर से मालामाल कर देता है:

जिस होए दइआल तिस आप मिलावै॥ सरब निधान गुरू ते पावै॥[91]

दीक्षा

संसार में सूर्य, चंद्र, तारों के होते हुए भी माया ने अपना एक विशेष अज्ञानरूपी अंधकार फैलाया हुआ है। उसने प्रभु के मार्ग के पथिकों को ठोकरें खाने, उन्हें चोट पहुँचाने के लिए जगह-जगह रुकावटें खड़ी की हुई हैं। जीव के पास इस मार्ग का कोई नक़्शा नहीं है, इसकी पहचान के लिए कहीं कोई निशान भी नहीं लगाए गए हैं। यही कारण है कि प्रभु की ओर जा रहे जीव गिरते, डूबते, जन्म लेते और मरते रहते हैं, अपनी मंज़िल पर पहुँच नहीं पाते। लेकिन जब कभी युग-युगांतरों से भटकती आत्मा पर प्रभु की दया होती है तो वह किसी संत सतगुरु से उसका मिलाप करवा देता है और सतगुरु उसके आंतरिक नेत्रों में ज्ञान के सुरमे की सलाई लगा देता है। इसके फलस्वरूप उसके लिए माया के अँधेरे दूर हो जाते हैं। रात चाहे अमावस्या की हो और सारा आकाश बादलों से ढका हो, फिर भी शेर को सब कुछ दिखाई देता है। उसी प्रकार संसार में अज्ञान का अंधकार वैसे का वैसा बना रहने के बावजूद सतगुरु के सेवक के लिए कोई भी कठिनाई पेश नहीं आती। उसके अंदर प्रकट हुआ प्रकाश ही उसकी ज़रूरतें पूरी कर देता है:

गिआन अंजन गुर दीआ अगिआन अंधेर बिनास॥
हर किरपा ते संत भेटिआ नानक मन परगास॥[92]

गुरु के द्वारा मार्गदर्शन

अगर शीशे पर धूल जमी हो, तो देखनेवाले को उसमें क्या दिखाई देगा? उसी प्रकार बार-बार किए कुकर्मों के फलस्वरूप बुद्धि अपनी सूझ-बूझ गँवा बैठती है। फिर तो उसे सपने में भी ख़याल नहीं आता कि प्रभु आत्मा के निकट ही है। वास्तव में आत्मा उस परमात्मा की अंश है। गुरु अर्जुन देव ने गुरु महिमा के बारे में जो कुछ बयान किया है वह वास्तविकता है, क्योंकि यह उनका निजी अनुभव है, कोई बढ़ा-चढ़ाकर कही बात नहीं है। बुद्धि नहीं जानती कि वह लाख योजन के फ़ासले पर

रहता है या करोड़ योजन के। जब गुरु की दया से कुमति के परदे हट जाते हैं, तब दूरी का भ्रम अपने आप लुप्त हो जाता है:

बुध प्रगास भई मत पूरी॥ ता ते बिनसी दुरमत दूरी॥[93]

गुरु का यह उपकार उसी प्रकार है जैसे उजाड़ के अंधे कुएँ में डूबते व्यक्ति को बाहर निकाल लिया जाए:

ऐसी गुरमत पाईअले॥
बूडत घोर अंध कूप मह निकसिओ मेरे भाई रे॥[94]

मार्गदर्शन के संदर्भ में गुरु की महिमा करते हुए गुरु अर्जुन देव किसी अतिशयोक्ति के दोषी नहीं हैं। इस दृष्टि से गुरु की जितनी भी प्रशंसा की जाए, कम रहेगी, क्योंकि वह तो ज्ञान का सरोवर होता है। इतना ही नहीं, वह ख़ुद सदा स्थायी, अखंड परमेश्वर है। संपूर्ण विश्वास के साथ अनुसरण करने के लिए परमेश्वररूपी गुरु से अधिक ज्ञानवान और कौन मिलेगा?

गुर की महिमा किआ कहा गुर बिबेक सत सर॥
ओह आद जुगादी जुगह जुग पूरा परमेसर॥[95]

अपनी बुद्धि चाहे कितनी कम और तुच्छ हो, वह पैनी और निर्दोष लगती है। इसी लिए किसी और की सलाह मानना तो एक ओर रहा, कोई उसे सुनने के लिए भी तैयार नहीं होता, ख़ासकर तब, जब उसके लिए कुछ देना न पड़े। इसलिए समझदार लोग हालात द्वारा मजबूर किए जाने पर ही ज़बान खोलते हैं। गुरु अर्जुन देव जी भी मजबूर थे। आप सतगुरु थे, आपको अनेक जीवों का उद्धार करने का कर्तव्य निभाना था, तो भी आप बुद्धिमानों की तरह समझाने की राह को छोड़कर केवल इतना ही कहना पसंद करते थे कि मुझे इस तरह की सुमति मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, मैंने उस पर ऐसे अमल किया और उसका यह अच्छा परिणाम हुआ। सुननेवाला चाहे तो उनकी बात मान ले, न चाहे

तो न माने। इस तरह का परामर्श कानों को नहीं चुभता, चुपचाप अंदर गहराई में उतर जाता है। गुरु की दीक्षा कैसे काम करती है, यह आप इन शब्दों में बताते हैं:

सुण उपदेस सतगुर पह आइआ॥
गुर हर हर नाम मोहे मंत्र द्रिड़ाइआ॥
निज घर वसिआ गुण गाए अनंता॥
प्रभ मिलिओ नानक भए अचिंता॥[96]

सतगुरु की महिमा सुनकर मैं उसकी शरण में आ गया। उसने मुझे दीक्षा देकर मंत्र रूप में जाप करने की युक्ति सिखा दी। मैंने उसकी शिक्षा के अनुसार उस अपरंपार पारब्रह्म के नाम का अभ्यास किया, तो मुझे केवल अपने आप की पहचान ही नहीं हुई, बल्कि प्रभु से मिलाप भी हो गया। इस प्रकार मेरी सब चिंताएँ ख़त्म हो गईं।

आम तौर पर कहा जाता है कि विद्या वह दौलत है जो एक बार ग्रहण कर ली तो सदा अपनी बनी रहती है और कोई हमें उससे वंचित नहीं कर सकता। यह बिलकुल सही है। धन को सँभालने के लिए बैंक में रखा हो तो बैंक के दीवालिया होने से धन डूब जाता है। ज़मीनों, मकानों पर काश्तकार, किराएदार, बल्कि अनजाने लोग भी ज़बरदस्ती अधिकार कर लेते हैं। हड़तालें, तालेबंदियाँ कारखानों को बरबाद कर देती हैं। लेकिन विद्या की दौलत कभी ख़तरे में नहीं पड़ती। विद्या दो प्रकार की है—एक लौकिक विद्या है जो मेहनत करके या अध्यापकों से प्राप्त होती है, यह सांसारिक ज्ञान मृत्यु के बाद किसी जीव का साथ नहीं देता। दूसरी पारलौकिक विद्या अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान, जो संत-सतगुरु की शरण में जाकर प्राप्त होता है। इसे पाकर जीव मनुष्य जन्म की बाज़ी जीत लेता है। इसकी विशेषता गुरु अर्जुन देव जी अपने अनुभव से बताते हैं:

सिमरउ सिमर सिमर सुख पावउ सास सास समाले॥
इह लोक परलोक संग सहाई जत कत मोहे रखवाले॥

गुर का बचन बसै जीअ नाले॥
जल नही डूबै तसकर नही लेवै भाहे न साकै जाले॥
निरधन कउ धन अंधुले कउ टिक मात दूध जैसे बाले॥
सागर मह बोहिथ पाइओ हर नानक करी क्रिपा किरपाले॥[97]

गुरु द्वारा बख़्शी नाम या शब्द की पूँजी सदा हमारे साथ रहती है, हमारे मृत्यु लोक को छोड़कर चले जाने पर भी यह हर जगह, हर स्थिति में हमारी सहायक होती है। चोरों, ठगों, डाकुओं की तो क्या मजाल, यह तो डूबने, जलने जैसे क़ुदरत के प्रकोप का भी शिकार नहीं होती। रंक धन मिलने पर, अंधा आसरा मिलने पर और बच्चा माँ के दूध से, ख़ुश और संतुष्ट हो जाता है। मगर मुझ पर तो सतगुरु की अपार दया हुई, मुझे उसने भवसागर पार करने के लिए शब्द के जहाज़ का सहारा बख़्श दिया। फिर क्यों न उस नाम का साँस-साँस के साथ सिमरन करके उसका सुख प्राप्त किया जाए?

गुरुमंत्र

हम जानते हैं कि युद्ध में एक तीर दूसरे के तीर को, एक तलवार दूसरे की तलवार को या एक मिसाइल दूसरी मिसाइल को बेअसर कर सकते हैं, परंतु प्रभु के नाम से जोड़नेवाले गुरुमंत्र की शक्ति किसी भी हालत में बेअसर नहीं हो सकती। यह शक्ति अटल है।

गुरदेव दाता हर नाम उपदेसै गुरदेव मंत निरोधरा॥[98]

अगर मार्गदर्शक कच्चा हो, अगर उसे सही रास्ते का पूरा ज्ञान न हो, तो उसका अनुसरण करने से रास्ते में कठिनाइयाँ ही पेश नहीं आतीं, बल्कि जान-माल से भी हाथ धोने पड़ जाते हैं। इसके विपरीत पूरे गुरु से दीक्षा प्राप्त करके उसके उपदेश को विश्वास और प्रेम के साथ हृदय में टिका लिया जाए तो हर क़दम मंज़िल की ओर उठता है। पवित्र रहनी और प्रभु नाम की कमाई से मन पर चढ़ी मलिनताओं की परतें उतरती

चली जाती हैं, अपने मूल की पहचान हो जाती है और अंत में सत्य का यानी प्रभु प्रियतम का साक्षात्कार हो जाता है:

पूरे गुर की पूरी दीखिआ॥
जिस मन बसै तिस साच परीखिआ॥[99]

जब सतगुरु जीव को नामदान बख़्श देते हैं तो वे जीव के परमात्मा से मिलाप के उत्तरदायी बन जाते हैं:

तिस ही मिलिआ सच मंत्र गुर मन धरै॥[100]

गुरु की टेक

गुरु अर्जुन देव सोई हुई बुद्धि को जगाने के लिए मन को समझाते हैं:

गुरू गुरू गुर कर मन मोर॥ गुरू बिना मै नाही होर॥
गुर की टेक रहहो दिन रात॥ जा की कोए न मेटै दात॥[101]

गुरु की आराधना करो। केवल इतना कह देने से काम बनते नहीं दिखता था। इसलिए 'गुरु' शब्द तीन बार कहा है। गुरु को हरदम याद करना है—सोते, जागते; उठते-बैठते, सुख में, दुःख में; हर समय, हर स्थान पर, हर दशा में। यह इसलिए कि उसके सिवाय हमारा और कोई हमदर्द या सहायक नहीं है। उसी एक का सहारा लेना है। नौ ग्रहों के रूप में नौ इष्टों को सहायक बनाने की कामना से, नौ रत्नों से जड़ी अँगूठी पहननेवालों की नक़ल न करें, अपने सतगुरु पर विश्वास रखें। पूर्ण गुरु के पास किसी दात की कमी नहीं और उसकी दी हुई इस अमूल्य दात से हमें कोई वंचित नहीं कर सकता।

यदि कोई उदार-हृदय दानी अपना सब कुछ दान में दे दे, अड़सठ तीर्थों की ही नहीं, बल्कि पवित्र माने जानेवाले सभी धर्मस्थानों की यात्रा भी कर आए, सभी मुख्य धार्मिक पुस्तकें पढ़कर उन्हें कंठस्थ कर ले, दिन-रात माला से मंत्र का जाप करता रहे, किसी दूसरे के कमाए अन्न

का दाना भी मुँह में न डाले, तो भी गुरु के चरणों में जाए बिना उसका प्रभु से मिलाप नहीं होगा। गुरु की दया के सिवाय प्रभु मिलाप का और कोई उपाय नहीं है:

मेरे मन गुर जेवड अवर न कोए॥
दूजा थाउ न को सुझै गुर मेले सच सोए॥[102]

अगर कोई पूरे गुरु की अगुआई में प्रभु के द्वार पर पहुँचने का प्रयत्न करे, तभी उसे सफलता प्राप्त हो सकती है। अन्य सभी यत्न व्यर्थ सिद्ध होते हैं:

ढोई तिस ही नो मिलै जिन पूरा गुरू लभा॥[103]

संसार के अज्ञानरूपी घोर अंधकार से बचने के लिए कई लोग बहुत संघर्ष करते हैं पर अंत में हार मान लेते हैं। इस अंधकार से बाहर वही निकलता है जिसे सतगुरु स्वयं हाथ पकड़कर खींच ले:

बाह पकड़ गुर काढिआ सोई उतरिआ पार॥[104]

दूसरा जन्म

माता-पिता का प्यार अन्य सभी सगे-संबंधियों के प्यार की तुलना में ऊँचा और पवित्र माना जाता है। माता बच्चे को नौ महीने अपनी कोख में पालती है और उसके बाद भी बहुत समय तक उसकी देखभाल करते हुए उसकी परवरिश करती है। पिता उसकी ख़ुराक, पोशाक, पढ़ाई, शादी इत्यादि का ख़र्च उठाता है। दोनों पति-पत्नी जब तक जीवित रहते हैं, बच्चे को सुखी देखने के लिए कष्ट सहते हैं, क़ुरबानियाँ देते हैं।

कई बच्चे विकलांग पैदा होते हैं जैसे गूँगे, बहरे, अंधे, लूले, लँगड़े या बौने; कुछ आनुवंशिक रोग जैसे तपेदिक, मधुमेह, बवासीर के शिकार होते हैं तो कई कठिन परिस्थितियों, जैसे ग़रीबी, ग़ुलामी, असभ्य देश, रेगिस्तान में जन्म लेते हैं। यह सब प्रारब्ध कर्मों के अनुसार होता है।

कई लोगों को मजबूरन ज़िंदगी भर पूर्वजों के व्यवसाय से ही गुज़र बसर करनी पड़ती है। कई बार ख़ानदानी शत्रुता निरंतर जान का ख़तरा बनी रहती है। यह सब भी प्रारब्ध कर्मों के कारण होता है।

तर्क के तौर पर कहा जा सकता है कि इस तरह का प्रारब्ध हर कोई तो नहीं भोगता। पर इस बात से कौन इनकार कर सकता है कि हमारा संसार लाखों मुसीबतों का घर है? यहाँ भूखा या तृप्त, अमीर या ग़रीब, नीचा या ऊँचा, कोई सुखी नहीं रह सकता। धनवान को हानि सहन करनी पड़ती है, उसे चोरियों, ठगियों, डकैतियों का सामना करना पड़ता है, नहीं तो धन के छिन जाने की चिंता से उसका ख़ून सूखता रहता है। कुर्सी को क़ाबू में रखने के लिए जितनी कोशिश करनी पड़ती है, उतना आराम नहीं मिलता। बीमारी से कौन बच सकता है? न कोई डॉक्टर या वैद्य, न कोई खिलाड़ी या पहलवान।

फ़रीद साहिब ने ठीक ही कहा था:

फरीदा मै जानिआ दुख मुझ कू दुख सबाइऐ जग॥
ऊचे चड़ कै देखिआ तां घर घर एहा अग॥[105]

कहने से भाव है कि माता-पिता हमें जन्म देते हैं, हमारा पालन-पोषण करते हैं। फिर भी वे हमारे सच्चे हमदर्द नहीं कहे जा सकते। हमारा सच्चा हितैषी तो सतगुरु है जो हमारी सुरत को शब्द से जोड़कर हमें एक नया जन्म देकर हमारी आत्मा की ज्योति को परमात्मा की ज्योति से मिला देता है। इस तरह वह हमें संसार के कष्टों, क्लेशों से सदा के लिए मुक्ति दिला देता है:

जनम मरण दुहहू मह नाही जन परउपकारी आए॥
जीअ दान दे भगती लाइन हर सिउ लैन मिलाए॥[106]

इतना बड़ा उपकार करने में सतगुरु की अपनी कोई ग़रज़ नहीं होती। इस उपकार के बदले में वह कभी किसी से कुछ नहीं लेता।

संतों के वचन

क्या संतों के वचनों को पूर्ण सत्य मान लेना चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर हमारी दलीलों के आधार पर नहीं दिया जा सकता। अपने अज्ञान, कम बुद्धि, स्वार्थ, ईर्ष्या आदि दोषों के कारण हमें संतों के वचनों की सच्चाई पर अविश्वास हो सकता है, परंतु वास्तविकता यह है कि वे प्रभु का ही स्वरूप होते हैं। उनका पाँच तत्त्वों का यह भौतिक शरीर तो लोगों को प्रभुप्राप्ति के सही मार्गदर्शन के लिए होता है। उनके वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए वे मापदंड लागू नहीं होते जो आम मनुष्य को परखने के लिए होते हैं।

सतगुर निरंजन सोए॥ मानुख का कर रूप न जान॥[107]

संत हमारा मार्गदर्शन करते हुए किसी और की लिखी-पढ़ी या कही-सुनी बातें नहीं दोहराते। जो कुछ उन्होंने देखा है, अनुभव किया है, उसी को वे अपने कथन का आधार बनाते हैं। उन जैसे अंतर्यामी, त्रिकालदर्शी संतों की नज़र से कुछ भी छिपा नहीं होता:

संतन की सुण साची साखी॥ सो बोलह जो पेखह आखी॥[108]

आम तौर पर ऐसा होता है कि जब दो व्यक्ति आपस में लड़ने लगें, तो वे बददुआएँ देते हुए एक दूसरे का सर्वनाश करने पर उतर आते हैं। कभी किसी पेशेवर भिखारी को थोड़ी उदारता से भिक्षा दे दी जाए, तो वह उसके बदले दोनों जहान बख़्श देता है। असल में न इस प्रकार के दुर्वचनों से कुछ बिगड़ता है, न ऐसी शुभ कामनाएँ कुछ सँवारती हैं। हवा का झोंका आया और चला गया। परंतु संतों की ज़बान पर परमेश्वर निवास करता है, उनका वचन पूरा होने से कभी नहीं चूकता:

प्रभ जी बसह साध की रसना॥ नानक जन का दासन दसना॥[109]

वे किसी का बुरा क्यों सोचेंगे? अगर कोई उनकी दया का पात्र बनता है, तो उसका उद्धार हो जाता है।

गुरु सदा अंग-संग

कोई अपनी संतान के जन्म या उसकी शादी के समय ख़ुशी मनाए तो उसकी दावत में शामिल होने के लिए आधा शहर उमड़ पड़ता है, यहाँ तक कि बिना निमंत्रण के ही रास्ते पर चले आ रहे कई अजनबी भी। इसके विपरीत अगर कोई घर में मौत या किसी दु:ख के कारण रोता-चिल्लाता हो, तो अमली सहायता तो कितने लोग करते हैं, कई सगे-संबंधी मुँह दिखाने के लिए नहीं आते, अफ़सोस तक नहीं करते। इस स्वार्थी संसार में कौन बेवजह किसी का भला करता है? हाँ, एक सतगुरु की ही यह महिमा है कि वह अपने शिष्य के साथ रहता है, सुख में भी और दु:ख में भी। सतगुरु ने चाहे स्वयं शरीर त्याग दिया हो, फिर भी वह केवल मनुष्य के जीते-जी नहीं, बल्कि शरीर छोड़ जाने के बाद भी अंतिम मंज़िल तक उसके साथ रहता है:

> सजण सेई नाल मै चलदिआ नाल चलंन्ह॥
> जिथै लेखा मंगीऐ तिथै खड़े दिसंन॥[110]

तथा:

> गुर मेरै संग सदा है नाले॥[111]

नउ निध अंम्रित

> नउ निध अंम्रित प्रभ का नाम॥
>
> गुरु अर्जुन देव

नाम

जिस 'नाम' के बारे में हमें विचार करना है, वह परमेश्वर का सच्चा नाम है। प्रभु आदि-युगादि से मौजूद है। यह स्वाभाविक ही है कि उसके अनेक नाम रखे जा चुके हैं और आगे भी अनेक नाम रखे जाएँगे। सभी धर्म अपने-अपने रखे हुए नामों से उस प्रभु को याद करते हैं; भिन्न-भिन्न भाषाओं में उसके अलग-अलग नाम हैं। ये सब नाम मनुष्यों ने ही रखे हैं और सभी प्राणियों की तरह उन नामों का मिट जाना भी निश्चित है।

कहा जाता है कि शेषनाग अपने हज़ार मुखों से प्रभु का सिमरन सदा नए नामों द्वारा करता है। गुरु अर्जुन देव के अनुसार प्रभु के नए नाम रखनेवाले उपासक करोड़ों की गिनती में हैं: *कई कोट नवतन नाम धिआवह॥*[1] उन्होंने अपनी वाणी में कितने ही सिफ़ाती (गुण सूचक) नामों का वर्णन किया है। ऐसे नामों का उदाहरण देने के लिए आपने एक सोलहा (सोलह पदों का छंद) चुना, पर आवश्यकता से छोटा पड़ता देखकर उसे इकीहा (इक्कीस पद का) बना दिया:

> अचुत पारब्रहम परमेसुर अंतरजामी॥
> मधुसूदन दामोदर सुआमी॥
> रिखीकेस गोवरधन धारी मुरली मनोहर हर रंगा॥

मोहन माधव क्रिस्न मुरारे॥
जगदीसुर हर जीउ असुर संघारे॥
जगजीवन अबिनासी ठाकुर घट घट वासी है संगा॥
धरणीधर ईस नरसिंघ नाराइण॥[2]

इस शब्द के अंत में आपने लिखा है:

किरतम नाम कथे तेरे जिहबा॥ सत नाम तेरा परा पूरबला॥[3]

प्रभु के कुछ नाम ऐसे हैं, जिनका ज़बान से उच्चारण किया जाता है। ये कृत्रिम नाम हैं—मनुष्य द्वारा रखे गए हैं। लेकिन एक सच्चा नाम और है जो आदि-युगादि से चला आ रहा है, जो सदा स्थायी, अमर और अटल है। इस नाम के बारे में गुरु नानक साहिब कहते हैं: *आपीन्है आप साजिओ आपीन्है रचिओ नाउ॥*[4] यानी यह नाम मनुष्य ने नहीं, बल्कि प्रभु ने स्वयं रचा है। गुरु साहिब का वचन दोहराते हुए भाई गुरदास भी लिखते हैं: *सचु नाऊ करतार आपु उपाइया।*[5]

इस सच्चे नाम की सूझ-बूझ केवल संत-सतगुरु से मिलती है और केवल इसी नाम का अभ्यास प्रभुप्राप्ति का एकमात्र साधन है।

जैसे-जैसे किसी पिता के बच्चे समझदार और आत्मनिर्भर होते जाते हैं, उनका ध्यान पिता की तरफ़ कम होता चला जाता है। इसी तरह मनुष्य जाति ने आरंभ से लेकर अब तक इतनी उन्नति कर ली है कि इसकी संतान अपने आप को बड़ी समझदार और चतुर समझने लगी है। उसके अनंत गुणों का आदर करना तो एक ओर रहा, अब वह उसके अस्तित्व को भी मानने को तैयार नहीं।

माता-पिता आख़िर माता-पिता होते हैं। प्रभुरूपी पिता जानता था कि अपनी आत्माओं यानी अपने ही अंशों को वह अपने से अलग कर रहा है और चाहे संसार में इनके मनोरंजन के लिए बहुत कुछ पैदा कर दिया गया है, तो भी इनमें से कुछ आत्माएँ कभी न कभी अवश्य उससे मिलाप के लिए तड़पेंगी। इसलिए उसने इन नेक और भाग्यशाली आत्माओं के

भले के लिए नाम यानी शब्द का रास्ता खोल दिया। पर मन से जुड़ी आत्माएँ, प्रभु से बिछुड़ते ही यह भूल गईं और इस संसार के आसान और लुभावने मार्गों की ओर आकर्षित हो गईं। आत्माओं ने परमपिता के बनाए शाही मार्ग की ओर पीठ कर ली तथा माया के जंगल में अनेक कच्ची पगडंडियाँ बना लीं। प्रभु सब कुछ जानता है, देखता है और तब भी अपने दयालु स्वभाव के कारण वह भवसागर में दुःख भोग रही इस संतान के कल्याणार्थ, इसे मिलाप के सही मार्ग की याद दिलाने के लिए समय-समय पर अपने संतों-साधुओं को भेजता रहता है। इसी उपकार के प्रयोजन से जगत में आए गुरु अर्जुन देव जी फ़रमाते हैं:

जिसह साज निवाजिआ तिसह सिउ रुच नाहे॥
आन रूती आन बोईऐ फल न फूलै ताहे॥
रे मन वत्र बीजण नाउ॥
बोए खेती लाए मनूआ भलो समउ सुआउ॥[6]

ऐ मन! जिस सतपुरुष ने तुझे यह अमूल्य मनुष्य जन्म बख़्शा है जिसमें तुझे सुखी रहने के साधन ही नहीं, बल्कि अपना उद्धार करने, जन्म-मरण से छुटकारा पाने के लिए सुविधाएँ भी बख़्शी हैं, क्या वह तुझे कभी याद नहीं आता, क्या तुझे उसे जानने की इच्छा कभी हुई है? तू व्यर्थ के अन्य धर्म-कर्म छोड़कर सच्चे दिल से प्रभु के नाम की कमाई कर। तुझे यह उत्तम अवसर इसी लिए मिला है, इसका लाभ उठा ले। मौसम किसी और फसल का हो, बीज किसी और का बिखेर दें, तो वह फसल फलती-फूलती नहीं। आपने यह भी फ़रमाया है:

स्रीधर मोहन सगल उपावन निरंकार सुखदाता॥
ऐसा प्रभ छोड करह अन सेवा कवन बिखिआ रस माता॥
रे मन मेरे तू गोविद भाज॥
अवर उपाव सगल मै देखे जो चितवीऐ तित बिगरस काज॥[7]

ऐ मेरे मन! तू अपने सिरजनहार, सुखदाता प्रभु को भुलाकर अन्य इष्टों को पूजने में लगा हुआ है। किस मीठे विष ने तेरी मति बिगाड़ दी है जो तू ऐसा कर रहा है? तेरा करने योग्य कार्य केवल एक प्रभु का भजन है। जीव मन और बुद्धि के अनुसार अन्य जो भी धर्म-कर्म करते हैं, उनसे कार्य सँवरने के बजाय बिगड़ता है। यह मेरा निजी अनुभव है।

कलियुग में नाम

मलिन बुद्धिवाले लोगों को कोई बात समझानी हो तो एक ही उपदेश बार-बार दोहराना पड़ता है। इसलिए आप ताकीद करते हैं कि कलियुग में भवसागर से पार होने का एक ही साधन है—वह है नाम। हो सकता है किसी का मन उनके उपदेश को न माने, इसलिए आप विश्वास दिलाते हैं कि मैं अपनी ओर से कोई राय नहीं दे रहा हूँ, यह ईश्वर का विधान है:

कलिजुग मह इक नाम उधार॥ नानक बोलै ब्रहम बीचार॥[8]

गुरु रामदास जी ने भी यही कहा था:

कलिजुग का धरम कहहो तुम भाई किव छूटह हम छुटकाकी॥
हर हर जप बेड़ी हर तुलहा हर जपिओ तरै तराकी॥[9]

गुरु रामदास जी से पहले उनके गुरु अमरदास जी ने भी यही कहा:

कलजुग मह राम नाम उर धार॥ बिन नावै माथै पावै छार॥[10]

प्राचीन समय की आध्यात्मिक धार्मिक क्रियाओं से परिचित लोग यह प्रश्न उठा सकते हैं कि कलियुग में अन्य धर्म-कर्मों को एक ओर हटाकर सारा महत्त्व 'नाम' को ही क्यों दिया गया है? सच तो यह है कि समय का चक्र संसार के जीवों के विचारों और कर्मों को बहुत प्रभावित करता है। गुरु नानक साहिब ने 'आसा की वार' में इस विषय पर प्रकाश डालते हुए फ़रमाया है:

सतजुग रथ संतोख का धरम अगै रथवाह॥
त्रेतै रथ जतै का जोर अगै रथवाह॥
दुआपुर रथ तपै का सत अगै रथवाह॥
कलजुग रथ अगन का कूड़ अगै रथवाह॥[11]

क्या हम रात और दिन का अंतर अपनी आँखों से नहीं देखते? दिन में सूर्य का प्रकाश तेज़ होता है। उसके सहारे हमारी खेती, वाणिज्य, नौकरी और अन्य कारोबार चलते हैं। रात को अँधेरा छा जाता है और हम आराम से सो जाते हैं। दिन की धूप में तपिश होती है और रात की चाँदनी में शीतलता। चारों युगों में और दिन तथा रात में परिवर्तन लानेवाला समय वही है। फिर युग भी दिन-रात की तरह ही अपना अलग-अलग रंग दिखाते हुए एक के बाद एक पलटते जाते हैं।

सतयुग से शुरू होकर जैसे-जैसे समय बीतता गया, काल और माया की शक्ति बढ़ती गई। नतीजा यह हुआ है कि आग और कूड़ अर्थात् क्रोध और कपट के भयंकर दोषों से भरे कलियुग के आगमन से आत्मिक और मानसिक गिरावट चरम सीमा पर पहुँच गई है। अब आत्मा की उन्नति या प्रभु के प्रति प्रेम की दिशा में क़दम उठाने को मन आसानी से तैयार नहीं होता। जनसंख्या सब सीमाएँ तोड़कर बढ़ती जा रही है। कुछ लोगों को छोड़कर बाक़ी सब के लिए अपना और परिवार का दो वक़्त का पेट भरना दूभर हो रहा है। ऐसी स्थिति में किसी को बारह वर्ष चलनेवाले यज्ञों के लिए फ़ुरसत कहाँ मिलेगी? उस पर ख़र्च होनेवाला धन कहाँ से आएगा? विद्वत्ता और सदाचार के स्वामी जो ऋषि-मुनि पहले पूजा करवाने के लिए सहज ही मिल जाया करते थे, वे अब कहाँ हैं? अड़सठ तीर्थधाम जिनकी हमारे देश में मान्यता रही है, वे अलग-अलग दिशाओं में हज़ारों मीलों की दूरी पर स्थित हैं। उन तक पहुँचने के लिए भी बहुत समय और धन चाहिए। इसलिए ऐसे तीर्थधामों के दर्शन और स्नान भी हर व्यक्ति के बस की बात नहीं है। इसी प्रकार की कठिनाई दान के विषय में पेश आती है। भूखों मर रहे जिस व्यक्ति

की जठराग्नि उसकी अपनी ही आँतों को जला रही हो, वह पंडितों और पुरोहितों को खीर, पूड़े आदि कैसे खिलाए? सोना, गऊ, बिस्तर आदि किस ख़ज़ाने में से दान में दे।

परमात्मा द्वारा संसार में भेजे गए संत भी परमात्मा की तरह ही अंतर्यामी होते हैं। जिन कठिनाइयों का सामना सांसारिक जीवों को करना पड़ता है, वे उनसे छिपी नहीं रहतीं। इसलिए वे हमें प्रेरित करते हैं कि सांसारिक पदार्थों के मोह को त्यागकर नाम (शब्द) का अभ्यास करो। नाम के सिमरन के लिए हमें अपने मन को एकाग्र करना है। इसके लिए कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि मनुष्य की अपनी काया ही हरिमंदिर है। अनहद शब्द की धुन दिन-रात, निरंतर हमारे हृदय में अमृत बरसा रही है। हमें तो केवल अपनी लिव उसके साथ जोड़नी है। जब शब्द के साथ जुड़ने से परमपद की प्राप्ति सुनिश्चित हो जाती है तो नाम (शब्द) को छोड़कर फोकट कर्मों के खोटे सिक्के चलाने की कोशिश में अमूल्य समय क्यों गँवाएँ?

नाम का अमृत

संत-महात्मा नाम के रस की बड़ी प्रशंसा करते आए हैं। इसे कभी 'महारस' या 'परम रस' कहा गया है, कभी 'अमृत'। इसके विपरीत शारीरिक रसों को ज़हर, महाविष आदि कहा गया है। अगर हक़ीक़त यही है, तो हर कोई उन घटिया स्वादों को छोड़कर प्रभु के नाम या शब्द का रसिया क्यों नहीं बन जाता?

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि नाम का सही परिचय देने के लिए कोई संतोषजनक शब्दावली अभी तक तैयार नहीं हुई। जो शब्द प्रयोग में लाए जा रहे हैं वे अर्थ की दृष्टि से अधूरे हैं। इसलिए करोड़ों इनसानों में से एक सतगुरु को छोड़कर बाक़ी सारा जहान नाम की महिमा से बिलकुल अनजान है। कोई विरला अगर चाहे भी तो इस दुर्लभ वस्तु को किसी सिक्के या करेंसी की सहायता से प्राप्त नहीं कर सकता। अगर कोई परख करना चाहे तो नाम कहीं बाहर से भी उपलब्ध नहीं है।

इस कलियुग में माया का प्रभाव बहुत प्रबल है। जिस प्रकार जंगल में लगी आग अपने रास्ते में आनेवाले हर वृक्ष और पौधे को जला देती है, उसी प्रकार विषय-वासनाओं की रंग-बिरंगी लपटों के आकर्षण से कोई प्राणी नहीं बचता। हम जानते हैं कि मिसरी की मिठास का स्वाद उसकी डली को जिह्वा से स्पर्श करते ही आने लगता है। गुलाब के इत्र की सुगंधि का पता दूर से ही लग जाता है, लेकिन प्रभुनाम का रस दुर्लभ है और यह इतना अनुपम है कि इंद्रियों के सभी रस इकट्ठे होकर भी नाम के आनंद का मुक़ाबला नहीं कर सकते, ऐसा संभव नहीं कि मन में विचार आते ही नामरस को चखा या प्राप्त किया जा सके। इसके लिए गुरु की दया-मेहर और गंभीरतापूर्वक साधना की ज़रूरत होती है। इसलिए गुरु अर्जुन देव उस जिज्ञासु पर बलिहारी जाते हैं जो आज के नरक तुल्य वातावरण में प्रभुनाम का भेद प्राप्त कर ले:

कहो नानक ता कै बल जाउ॥ कलिजुग मह पाइआ जिन नाउ॥[12]

पवित्र जीवन और नाम

अनेक लोग इस विश्वास के साथ अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं कि अगर आचरण निर्मल हो तो दोबारा जन्म नहीं लेना पड़ेगा। उनकी धारणा है कि हक़-हलाल की कमाई करके अपना और परिवार का पेट पालो। चोरी और छल-कपट से अपना घर न भरो; झूठ मत बोलो, निंदा मत करो और कठोर वचन बोलकर किसी का दिल मत दुखाओ; काम के वेग पर सख़्त पहरा रखो, हर पराई स्त्री को उम्र के अनुसार अपनी बेटी, बहन या माँ समझो। अगर ऐसे आचरण से अपना चरित्र मैले छींटों से बचाकर दूध जैसा उजला रखोगे, तो धर्मराज से वास्ता नहीं पड़ेगा और निर्वाणपद प्राप्त हो जाएगा।

इस तरह का विचार भ्रम के कारण होता है। हमारे ज्ञान की पहुँच बहुत सीमित है। हम अपने जीवन में जितने कर्म करते हैं, वे सब हमें याद नहीं रहते। जो कर्म पिछले लाखों जन्मों में कर चुके हैं, वे सब भी

लेखे में आ जाते हैं, पर हमसे गुप्त रखे जाते हैं। इसलिए सिर्फ़ इस जन्म में कुछ अरसे के लिए किए गए अच्छे कर्मों के द्वारा और बुरे कर्मों से दूर रहकर हम पुराने कर्ज़ों से छुटकारा नहीं पा सकते। इसके अतिरिक्त जब हम अपने आप की जाँच-परख करके इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि हमारे सच्चे और पवित्र होने में कोई कमी नहीं रह गई है, तो अंहकार की अदृश्य दीवार हमारे और प्रभु के बीच खड़ी हो जाती है, जिसके फलस्वरूप न तो प्रभु प्रियतम के दर्शन होते हैं और न हम उससे मिलाप कर सकते हैं। यही नहीं, हमारा आवागमन के चक्र से भी छुटकारा नहीं होता। गुरु अर्जुन देव एक अति सुंदर उपमा के द्वारा हमें यथार्थ से परिचित करवाते हैं:

जैसे धरती साधै बहु बिधि बिन बीजै नही जांमै॥
राम नाम बिन मुकति न होई है तुटै नाही अभिमानै॥[13]

किसी ने अपने खेत को कई बार हल जोतकर, तिनके, घास, काँटे चुनकर खेती के लिए तैयार कर लिया हो, परंतु जब तक उसमें बीज न बोया जाए, तब तक कपास या गेहूँ आदि की मनचाही फसल के उगने की आशा नहीं की जा सकती। उसी प्रकार चाहे हम कितना ही नेक और पवित्र जीवन जीने का प्रयत्न कर लें, जब तक नाम (शब्द) का अभ्यास नहीं करेंगे, तब तक हौंमैं की दीवार नहीं गिरेगी, हमें मोक्ष प्राप्त नहीं होगा।

नाम-विहीन—'कूकरी आसा'

नाम से विहीन लोग अपनी कामनाओं के पीछे अंधाधुंध दौड़े फिरते हैं। एक कामना से दूसरी, फिर तीसरी, फिर चौथी, परंतु संतोष कहीं भी प्राप्त नहीं होता। आख़िर लोग चाहते क्या हैं—संसार के नश्वर विषयों का रस? उन्हें जब तक इच्छित वस्तु प्राप्त नहीं होती, तब तक चैन नहीं मिलता और जब वह वस्तु मिल जाती है, तो उसकी निरर्थकता, निस्सारता को देखकर पछताते हैं। उनका दिल हर हालत में दुःखी रहता है:

आतुर नाम बिन संसार॥
त्रिपत न होवत कूकरी आसा इत लागो बिखिआ छार॥[14]

जीव यदि मनुष्य जन्म लेकर भी नाम की बख़्शिश से वंचित रह गया तो यह बहुत बड़ा दुर्भाग्य है क्योंकि ऐसा मौक़ा बार-बार नहीं मिलता। जैसे वृक्ष का कोई पत्ता टूटकर फिर उसके साथ नहीं जुड़ सकता, वैसे ही मनुष्य का उत्तम जन्म दोबारा नहीं प्राप्त होता और किसी अन्य योनि में नाम की दौलत के भंडारी सतगुरु की शरण का संयोग नहीं बन सकता। इसलिए अभागी आत्मा बार-बार निम्न योनि में जन्म लेती और दुःख भोगती रहती है:

पत्र भुरिजेण झड़ीयं नह जड़ीअं पेड संपता॥
नाम बिहूण बिखमता नानक बहंत जोनि बासरो रैणी॥[15]

नाम की नौका

भवसागर से पार जाने के लिए परमपिता परमेश्वर ने नाम की नौका रची है, परंतु उसका लाभ कोई सौभाग्यशाली जीव ही उठाता है। अनगिनत गाँव, नगर, जातियाँ, धर्म और देश, उसके अस्तित्व से अनजान होने के कारण आवागमन के चक्र में फँसे रहते हैं:

महा भउजल माहे तुलहो जा को लिखिओ माथ
डूबे नाम बिन घन साथ॥
करण कारण चित न आवै दे कर राखै हाथ॥[16]

धर्मग्रंथों का सार—नाम

कोई हिंदू हो या मुसलमान, ईसाई या किसी अन्य धर्म का अनुयायी, सब यही समझते हैं कि जो कुछ भी इनसान के जानने योग्य ज्ञान है, वह हमारे धर्मग्रंथों में दर्ज है। केवल इतना ही नहीं, वे यह भरोसा कर

लेते हैं कि अगर इन धर्मग्रंथों को प्रतिदिन न सही, कभी-कभी ही पढ़ लिया जाए या इनमें सुझाए गए रीति-रिवाजों का पालन किया जाए, तो सभी इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं। लेकिन गुरु अर्जुन देव स्पष्ट शब्दों में सावधान करते हैं कि ऐसी धारणा सही नहीं है। जिन ग्रंथों और पुस्तकों पर आप विश्वास करते हैं, वे तो ख़ुद स्पष्ट रूप से पुकारती हैं कि नाम की कमाई के बिना जो भी पढ़ना-पढ़ाना या धर्म-कर्म हैं, सब व्यर्थ हैं:

सिम्रिति बेद पुराण पुकारन पोथीआ॥
नाम बिना सभ कूड़ गाल्ही होछीआ॥[17]

प्रभु के नाम से विहीन प्राणी सैकड़ों यत्न करने पर भी मोह के बंधनों में बँधे रहते हैं। वे वाद-विवाद में फँसे रहते हैं, अहंकार से नहीं बच पाते और आख़िर रोना व पछताना ही उनका भाग्य बन जाता है। वे कभी सुखी नहीं हो सकते:

मोह बाद अहंकार सरपर रुंनिआ॥
सुख न पाइन्ह मूल नाम विछुंनिआ॥[18]

मनुष्य शरीर मिलने के बाद यदि कोई जीव बुरे कर्म करके नरक में जलता है तो वह मनुष्य जन्म की बाज़ी हार गया। शुभ कर्मों से मिलनेवाले स्वर्गों व बैकुंठों में सुख भोग लेने के बाद भी उसे मर्त्यलोक की योनियों में वापस आना पड़ता है। इसलिए कुछ समय के लिए उन सुखपूर्ण मंडलों में रहने को भी जीत नहीं कहा जा सकता, वह भी वास्तव में हार ही है। जीव मैं-मेरी की भावना में रहने के कारण बंधनों में बँध जाते हैं। माया के धंधों में उलझकर वे आवागमन के चक्कर में पड़कर दु:ख-सुख भोगते हैं। स्थायी सुख तभी मिलता है जब आत्मा वापस जाकर अपने स्रोत में समा जाती है और उसका एक ही साधन है—नाम का अंतर्मुखी अभ्यास। महापुरुषों की इस विषय पर की गई सारी खोज का यही नतीजा है:

मेरी मेरी धार बंधन बंधिआ॥
नरक सुरग अवतार माइआ धंधिआ॥
सोधत सोधत सोध तत बीचारिआ॥
नाम बिना सुख नाहे सरपर हारिआ॥[19]

नाम दुर्लभ है

गुरु अर्जुन देव फ़रमाते हैं:

नच दुरलभं धनं रूपं नच दुरलभं स्वरग राजनह॥
नच दुरलभं भोजनं बिंजनं दुरलभं स्वछ अंबरह॥
नच दुरलभं सुत मित्र भ्रात बांधव नच दुरलभं बनिता बिलासह॥
नच दुरलभं बिदिआ प्रबीणं नच दुरलभं चतुर चंचलह॥
दुरलभं एक भगवान नामह नानक लबध्यिं साधसंग क्रिपा प्रभं॥[20]

संसार में जिन लोगों को धन की ज़रूरत हो, अकसर वह उन्हें मिल जाता है और इसी प्रकार शारीरिक शृंगार के साधन, हुकूमतें तथा स्वर्ग भी प्राप्त हो जाते हैं। खाने-पीने के स्वादिष्ट पदार्थ और आरामदेह वस्त्र, बेटे-बेटियाँ, बहन-भाई आदि संबंधी, मित्र-साथी, भाँति-भाँति के सुख, सभी मिल जाते हैं। किसी भी प्रकार के सांसारिक ज्ञान में निपुण होना और योग्यता प्राप्त कर लेना भी संभव है। जो आसानी से प्राप्त नहीं हो सकता, वह प्रभु का नाम है और वह केवल प्रभु की दया से संत की संगति में ही प्राप्त होता है।

नाम की शक्ति

अटल, अविनाशी प्रभु के नाम यानी शब्द के प्रभाव और शक्ति का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। उसका अभ्यास करने से तन, मन और आत्मा के सब दु:ख नष्ट हो जाते हैं, जीव के दु:ख-दर्द का अंत हो जाता है, शारीरिक, मानसिक और आत्मिक, सब तरह की भूख समाप्त हो जाती है और वह हर तरह से तृप्त हो जाता है:

बिराजित राम को परताप॥
आध बिआध उपाध सभ नासी बिनसे तीनै ताप॥
त्रिसना बुझी पूरन सभ आसा चूके सोग संताप॥
गुण गावत अचुत अबिनासी मन तन आतम ध्राप॥[21]

नाम का रत्न—अखूट ख़ज़ाना

नाम एक अनूठा रत्न है। यह सत्य, संतोष और ज्ञान से ही भरपूर नहीं, बल्कि सुख, शांति और दया का भी ख़ज़ाना है। प्रभु ने अपना यह अनंत भंडार अपने भक्तों के सुपुर्द किया हुआ है। वे चाहे कितने ही उदार हृदय से इसका प्रयोग करें, इसे ख़र्च करें, किंतु इसमें कमी नहीं आती, यह कभी ख़त्म नहीं होता:

रतन जवेहर नाम॥ सत संतोख गिआन॥
सूख सहज दइआ का पोता॥
हर भगता हवालै होता॥ मेरे राम को भंडार॥
खात खरच कछु तोट न आवै अंत नही हर पारावार॥[22]

नाम—एक वरदान

नाम-सिमरन की बरकतों के संबंध में गुरु अर्जुन देव फ़रमाते हैं:

सदा सदा जपीऐ प्रभ नाम॥
जरा मरा कछु दूख न बिआपै आगै दरगह पूरन काम॥[23]

भाव यह है कि बुढ़ापा जीवन का सबसे अधिक कष्टमय चरण होता है। शरीर बेकार हो जाता है। बीमारियाँ घेर लेती हैं। मनुष्य नौकरी से निवृत्त हो जाता है। किसान की भूमि उसके बेटे और पोते सँभाल लेते हैं। दुकानदार की गद्दी और गोलक का भी यही हाल होता है। नीरस और अपमानपूर्ण बना जीवन अच्छा नहीं लगता, बल्कि मुसीबत बन जाता है। प्राण त्यागने के बाद क्या बीतेगी, यह तो किसी को मालूम नहीं

हो सकता। इसलिए मौत हौआ बनी रहती है, उसके आने का भय रातों की नींद हराम कर देता है। सिमरन का अभ्यासी बुढ़ापे के दुःखमय पड़ाव को सहज ही पार कर जाता है। वह जानता है कि कष्ट अपने कर्मों के हिसाब से ही आते हैं और मालिक के हुक्म के अधीन होते हैं। फिर उनको रो-धोकर काटने के बजाय हँसते-हँसते क्यों न भुगत लिया जाए? अगर शरीर के बलहीन होने के कारण दुनिया के धंधों से छुटकारा मिल गया तो अच्छा ही हुआ। प्रभु नाम के सिमरन के लिए अधिक समय मिल गया। नाम में लीन जीव के लिए मौत एक वरदान होती है। संसार के सब संताप सदा के लिए ख़त्म हो जाते हैं और प्रभु से अभेद होने का सुनहरा अवसर मिल जाता है। गुरु साहिब फ़रमाते हैं:

पारब्रहम जप पहिर सनाह॥ कोट आवध तिस बेधत नाह॥[24]

अर्थात् परमात्मा का नाम जपा हो, तो मानों ऐसा कवच पहन लिया जिससे प्राप्त सुरक्षा के कारण माया के करोड़ों हथियार चलने पर भी बाल बाँका नहीं हो सकता। अपने पालनहार प्रभु के नाम की नित्य कमाई करते रहें, तो कोई दुःख या डर क्यों सताएगा? समय सुखपूर्वक बीत जाएगा:

गुण गोपाल प्रभ के नित गाहा॥
अनद बिनोद मंगल सुख ताहा॥[25]

सतगुरु की दया से एक क्षण के लिए भी हृदय में बसा नाम करोड़ों जप, तप और संयम के फल से परिपूर्ण होता है। उसके कारण सिद्धियों की शक्ति के अतिरिक्त निर्मल बुद्धि और ज्ञान की भी प्राप्ति होती है तथा उसके अपार आनंद के सामने अन्य सभी रस और भोग-विलास फीके पड़ जाते हैं:

कोट जाप ताप बिस्राम॥ रिधि बुधि सिधि सुर गिआन॥
अनिक रूप रंग भोग रसै॥ गुरमुख नाम निमख रिदै वसै॥[26]

जिस अभ्यासी के हृदय में नाम का वास हो, वह सूरमा और धैर्यवान होने के साथ-साथ सुमति का भी पूर्ण धनी हो जाता है। वह सहज समाधि द्वारा शब्द की आनंदमयी ध्वनि में लीन रहता है। उसके सब कार्य सफल होते हैं, वह सदा के लिए संसार से मुक्त हो जाता है:

सूरबीर धीरज मत पूरा॥ सहज समाधि धुन गहिर गंभीरा॥
सदा मुकत ता के पूरे काम॥ जा कै रिदै वसै हर नाम॥[27]

नाम ही सर्वोपरि

विभिन्न प्रकार के दान और तीर्थों पर स्नान जैसी क्रियाओं की प्रेरणा तो हमें अपने जैसे अन्य लोगों से ही मिल जाती है। कठिन मंत्रों और वाणियों के जाप या पाठ में रुचि रखनेवाले कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो आंतरिक अनुभूति से शून्य हैं और वे दूसरों को भी इन क्रियाओं में उलझा देते हैं। अभ्यास तो एक सिरजनहार परमात्मा के सच्चे नाम का ही करना चाहिए, जिसका सहारा लेने के बाद कोई और कर्मकांड अपनाने की आवश्यकता नहीं रहती। वह करोड़ों प्रकार के दान और स्नान से उत्तम होता है, उसका सही ढंग से श्रद्धापूर्वक अभ्यास करने से पापों का नाश हो जाता है:

सिमरन राम को इक नाम॥
कलमल दगध होहे खिन अंतर कोट दान इसनान॥[28]

किसी बुद्धिमान ने माँ बनने की इच्छुक एक स्त्री को सलाह दी कि किसी भक्त या दानी या फिर सूरमे को जन्म देना। उसका भाव था कि भक्ति, दानशीलता और वीरता—इन तीन गुणों में से एक भी अगर किसी के पास नहीं है तो उसका संसार में न आना ही अच्छा। गुरु अर्जुन देव समझाते हैं कि जिस व्यक्ति ने संतों की संगति में आकर नाम का सिमरन कर लिया, वह बुद्धिमान, विद्वान, बहादुर और समझदार है। संसार के लोग तो उसकी क़द्र करते ही हैं, उसे परमेश्वर के दरबार में भी सम्मान प्राप्त होता है:

सोई चतुर सिआणा पंडित सो सूरा सो दानां॥
साधसंग जिन हर हर जपिओ नानक सो परवाना॥[29]

नाम की पूँजी

संसार एक बहुत बड़ी मंडी है जिसमें स्थान-स्थान के व्यापारी अलग-अलग चीज़ों की बिक्री और ख़रीदारी करने आते हैं। कोई जी-जान से परिवार के पालन का या मित्र बनाने का सामान जुटाता है। किसी को धन इकट्ठा करने और जायदाद बढ़ाने की लगन है। कोई मान-सम्मान पाने, वाह-वाह बटोरने के लिए उत्सुक है। जितने अधिक व्यापारी हैं, उतनी ही उनकी अलग-अलग रुचियाँ हैं। सांसारिक कारोबार में कोई व्यापारी लाभ उठाते दिखाई देते हैं, तो कोई हानि। लेकिन वास्तव में सब की हानि ही होती है। न व्यापारी अपना व्यवसाय छोड़ते हैं और न ही उनके दुखों का अंत होता है। परंतु जो व्यापारी प्रभुभक्ति-रूपी धन इकट्ठा करते हैं, वे दुखों से बचे रहते हैं। उनकी रामनाम-रूपी पूँजी निरंतर फलती-फूलती रहती है। उन्हें हानि का डर नहीं सताता।

आन बापार बनज जो करीअह तेते दूख सहामा॥
गोबिद भजन के निरभै वापारी हर रास नानक राम नामा॥[30]

नाम का सहारा

सतगुरु की दया-मेहर से नाम को हृदय में बसा लिया जाए, तो वह कितनी बड़ी सहायता करता है, कैसे काम आता है, गुरु अर्जुन देव इसे समझाने का प्रयत्न करते हैं:

ऐसो सहाई हर को नाम॥ साधसंगत भज पूरन काम॥
बूडत कउ जैसे बेड़ी मिलत॥ बूझत दीपक मिलत तिलत॥
जलत अगनी मिलत नीर॥ जैसे बारिक मुखह खीर॥

जैसे रण मह सखा भ्रात॥ जैसे भूखे भोजन मात॥
जैसे किरखह बरस मेघ॥ जैसे पालन सरन सेंघ॥
गरुड़ मुख नही सरप त्रास॥ सूआ पिंजर नही खाए बिलास॥
जैसो आंडो हिरदै माहे॥ जैसो दानो चकी दराहे॥
बहुत ओपमा थोर कही॥ हर अगम अगम अगाध तुही॥
ऊच मूचौ बहु आपार॥ सिमरत नानक तरे सार॥[31]

जीव के लिए नाम की बख़्शिश का मिलना उसी प्रकार है जिस प्रकार किसी डूब रहे व्यक्ति को नाव का मिलना, बुझ रहे टिमटिमाते दीपक को तेल का, आग में जल रहे प्राणी को पानी की धारा का, नन्हें बालक को दूध का, लड़ाई में शत्रुओं से घिरे किसी बेबस को मित्र या भाई की सहायता का, भूख से सताए पुत्र को माँ के परोसे हुए भोजन का, सिंचाई की कमी से सूख रही फसल को मेघ के जल का, नि:सहाय को किसी सिंह जैसे शक्तिशाली की शरण का, साँप के डसे को गारुड़ी के मंत्र का, बिल्ली से रक्षा पाने के लिए तोते को पिंजरे का, कूँज के अंडे से दूर गई माँ द्वारा किए हर क्षण के सिमरन का और चलती चक्की में पिस रहे दाने को कील का। इस प्रकार बारह उपमाओं का सहारा लेकर भी गुरु अर्जुन देव ने अंत में यह कह दिया कि हरि के नाम की अनंत महिमा नहीं की जा सकती। जिस पापी का पार होना लोहे के पार होने की तरह असंभव हो, प्रभु का नाम तो उसे भी पार कर देता है।

नाम की लाज

जो नाम पूरे गुरु की बख़्शिश से प्राप्त होता है, वह कभी व्यर्थ नहीं जाता। इस लोक में और आंतरिक मंडलों में भी वह हर जगह जीव के साथ रहता है। इस दात को प्राप्त करनेवाले जीव की अपनी लापरवाही के कारण नामरूपी पूँजी के विकास में देरी हो सकती है, पर नाम अपना रंग अवश्य दिखाता है। जिस प्रभु का यह नाम है, वह ख़ुद इसकी प्रतिष्ठा को आँच नहीं आने देता। उस सर्वशक्तिमान की सामर्थ्य से भलीभाँति

परिचित गुरु अर्जुन देव फ़रमाते हैं कि यह विश्वास मैं उसी प्रभु के कहने पर दिला रहा हूँ। इसलिए इस नाम के सिमरन में किसी समय भी आलस या लापरवाही नहीं करनी चाहिए:

सदा सदा मन नाम सम्हाल॥
गुर पूरे की सेवा पाइआ ऐथै ओथै निबहै नाल॥ ...
एको करता आपे आप॥ हर के भगत जाणह परताप॥
नावै की पैज रखदा आइआ॥ नानक बोलै तिस का बोलाइआ॥[32]

नाम की साधना का फल

आध्यात्मिक मार्ग के जिज्ञासु को पाँचवीं पातशाही गुरु अर्जुन देव के 'रामकली राग' में रचित तीसरे छंद के निम्नलिखित पहले पद को पढ़ना चाहिए:

रुण झुणो सबद अनाहद नित उठ गाईऐ संतन कै॥
किलविख सभ दोख बिनासन हर नाम जपीऐ गुर मंतन कै॥
हर नाम लीजै अमिउ पीजै रैण दिनस अराधीऐ॥
जोग दान अनेक किरिआ लग चरण कमलह साधीऐ॥
भाउ भगति दइआल मोहन दूख सगले परहरै॥
बिनवंत नानक तरै सागर धिआए सुआमी नरहरै॥[33]

गुरु साहिब के अनुसार पहला क़दम संत की संगति में हाज़िर होना और उसके चरणों का सहारा लेना है। 'संत' से आपका भाव उस भेषधारी व्यक्ति से नहीं जो घर-परिवार की ज़िम्मेदारियों से छुटकारा पाने के लिए किसी विशेष मत के भगवे, काले, पीले या सफ़ेद वस्त्र पहन ले और भिक्षापात्र तथा डंडा उठाए घूमता फिरे, बल्कि उस महात्मा से है जो कुल खंडों-ब्रह्मांडों के स्वामी परमेश्वर से एक हो चुका हो। गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि उस महापुरुष से दीक्षा लेकर उसके द्वारा गुरुमंत्र के रूप में बताए गए नाम का सिमरन पक्के इरादे से और जहाँ तक हो सके,

हर पल करना चाहिए। इस प्रकार के अभ्यास से तुम्हें अमृत रस पीने को मिलेगा, साथ ही तुम उन सभी फलों के अधिकारी बन जाओगे जो योग-अभ्यास, पूजा-पाठ, दान जैसी शुभ मानी जानेवाली अनेक क्रियाओं द्वारा प्राप्त होते हैं। जैसे-जैसे सतगुरु के उपदेश के अनुसार लगन के साथ, एकाग्रतापूर्वक अपने हृदय में गूँजती अत्यंत रसीले अनहद शब्द की ध्वनि का आनंद प्राप्त करोगे, तुम्हारे मलिन संस्कारों की सब मैल धुलती जाएगी और जन्म-जन्मांतरों के इकट्ठे किए गए पाप जलकर नष्ट होते जाएँगे। इस प्रकार दया के पुंज प्रभु की प्रेमपूर्वक भक्ति करने से तन, मन और आत्मा का कोई दुःख तुम्हें नहीं सताएगा और तुम संसार के अग्नि-सागर को पार करके परमपिता परमात्मा में समा जाओगे।

अनहद शब्द—अमृत नाम

अनहद—(अन) बिना+(हद) सीमा अर्थात् असीम। नाम, शब्द, नाद, धुन, दिव्य ध्वनि, परमात्मा की वह सृजनात्मक शक्ति है, जो सृष्टि के सभी मंडलों में गूँज रही है।

अनाहत नाद—संस्कृत में इसका अर्थ है, वह आवाज़ जो दो चीज़ों के टकराने के बग़ैर पैदा हुई हो।

अनहत—हिंदी व पंजाबी में संस्कृत के अनाहत शब्द का बदला हुआ रूप है।

संतों ने अपनी वाणी में तीनों शब्दों को एक ही अर्थ में प्रयोग किया है।

धुनात्मक नाम या अनहद शब्द

शब्द के मुख्य अर्थों में एक अर्थ लफ़्ज़ है तथा एक आवाज़ भी है। जब इनसान कुछ बोलता है, गाता है या कोई साज़ बजाता है, तो एक ध्वनि पैदा होती है। इस ध्वनि (आवाज़) को हम कानों से सुन सकते हैं और इसके बारे में लिख भी सकते हैं, परंतु हमारे अंतर में एक शब्द ऐसा भी है जो इन शारीरिक कानों की पकड़ में नहीं आता। यह शब्द ख़ुद परमात्मा ने पैदा किया है, जिसकी संगीतमयी धुन को हमारी आत्मा की

सूक्ष्म शक्ति (सुरत) सुनती है। इसी को धुनात्मक नाम कहा गया है, क्योंकि यह धुन दिन-रात बजती रहती है, किसी भी पल बंद नहीं होती। इसको अनहद शब्द के नाम से भी जाना जाता है। ऐसा इसलिए कि यह साधारण शब्दों—आवाज़ों की तरह दो पदार्थों के आपस में टकराने के बिना ही पैदा होता है। यही अनहद शब्द है।

शब्द का जाप

प्रभु को याद करने के लिए जाप या सिमरन किया जाता है और अनहद शब्द को सुनकर भी प्रभु को याद किया जाता है। गुरु अर्जुन देव के वचन हैं:

जनम मरण भउ कटीऐ जन का सबद जप॥[34]

एक अन्य स्थान पर आप फ़रमाते हैं:

मन हर कीरत कर सदहूं॥
गावत सुनत जपत उधारै बरन अबरना सभहूं॥[35]

प्रभु का संगीत

जैसा कि पहले ज़िक्र किया जा चुका है, शब्दधुन तभी सुनाई देती है जब हम अपना संपूर्ण ध्यान उसकी ओर लगाते हैं। इसलिए इसे अपने अभ्यास और ध्यान के द्वारा अपने अंदर प्रकट कर लेना, हमारा हरिकीर्तन करना, गाना, सुनना और जपना भी कहा जाता है। यही प्रभु की कीर्ति, प्रभु का कीर्तन है, जैसा कि ऊपर दिए पद से स्पष्ट है। गुरु नानक साहिब भी यही कहते हैं:

पंच सबद झुणकार निरालम प्रभ आपे वाए सुणाइआ॥[36]

गुरु अर्जुन देव जी के अनुसार:

पंच सबद तह पूरन नाद॥ अनहद बाजे अचरज बिसमाद॥[37]

पाँच शब्दों की मीठी ध्वनि के रूप में हो रहा कीर्तन प्रभु की मधुर वाणी है और यह वाणी प्रभु की कृपा से सुनी जा सकती है। गुरु अर्जुन देव जी सिरजनहार को संबोधित करके उसके रचे संगीत की महिमा इन शब्दों में करते हैं:

तेरे बचन अनूप अपार संतन आधार बाणी बीचारीऐ जीउ॥[38]

अर्थात् तेरे वचन, तेरी वाणी इतनी मधुर है कि उसकी महिमा शब्दों के द्वारा नहीं की जा सकती। तेरे संत उसी के सहारे जीते हैं।

प्रभु का प्रेमी अनहद शब्द के रूप में ही उसकी मधुर वाणी सुनता है और उसके रस का आनंद लेता है। गुरु साहिब अपनी स्वाभाविक नम्रता के कारण कहते हैं कि जिन संतों और महापुरुषों के मस्तक में प्रभु शब्दध्वनि के रूप में प्रकट हो जाता है, उनकी संगति से मुझ जैसे लोग भी पार हो जाते हैं:

जै जै सबद अनाहद वाजै॥ सुन सुन अनद करे प्रभ गाजै॥
प्रगटे गुपाल महांत कै माथे॥ नानक उधरे तिन कै साथे॥[39]

शब्द-कीर्तन

'कीर्तन' का ज़िक्र गुरु साहिबान के साथ-साथ अन्य संतों की वाणी में भी बार-बार आया है। हम साज़ों के साथ गाए जानेवाले शब्दों का गायन सुनते हैं, इसलिए हम इस शब्द 'कीर्तन' को स्वाभाविक ही इसी प्रकार के संगीत से जोड़ लेते हैं। आम तौर पर यह कीर्तन गा-बजाकर किया जाता है, क्योंकि इस प्रकार महापुरुषों के वचनों को एकाग्रता से सुनकर इसका आनंद लिया जा सकता है। लेकिन कई बार मन केवल कानों के रस में डूबकर रह जाता है और गुरु के उपदेश के भाव की गहराई में नहीं उतरता। वास्तव में जिस 'हरिकीर्तन' की महिमा महापुरुष करते हैं, वह परमेश्वर के बारे में संगीत के रूप में उचारे गए शब्द नहीं होते, बल्कि वह संगीत है जिसे हमारा सिरजनहार ख़ुद हमारे अंतर में पैदा करता है।

यह कीर्तन आंतरिक अभ्यास से होता है। इसका गले, ज़बान और होंठों से कोई संबंध नहीं है, न किसी तरह के बाजे से। कभी-कभी इसे किंगरी या वीणा का बजना बताया जाता है, पर इन साज़ों की आवाज़ उस अनहद नाद का केवल संकेत मात्र है। वास्तव में किंगरी और वीणा स्थूल यंत्र हैं और अनहद शब्द पाँचों तत्त्वों से परे सूक्ष्म ध्वनि है। गुरु अर्जुन देव बताते हैं:

बीज मंत्र हर कीरतन गाउ॥[40]

अर्थात् यह वह शब्द है जो बीज रूप में प्रभु की बख़्शिश के रूप में हमें अपने जन्म से मिलता है। इस शब्द को सुनने के लिए साधक को पूरी तरह ध्यान एकाग्र करना होता है। इसके प्रकट होने के लिए टेलीविज़न के रिमोट कंट्रोल की तरह बटन दबाने जैसी शारीरिक क्रिया की आवश्यकता नहीं पड़ती। सुरत कानों की नहीं, बल्कि हमारी आत्मा की सुनने की शक्ति है। जब सुरत उस शब्द-कीर्तन के प्रति भलीभाँति सचेत होती है, इसे तभी सुना जा सकता है।

अनहद शब्द-कीर्तन

इसी कीर्तन के संबंध में गुरु अर्जुन देव जी लिखते हैं:

कीरतन निरमोलक हीरा॥ आनंद गुणी गहीरा॥
अनहद बाणी पूंजी॥ संतन हथ राखी कूंजी॥
सुंन समाधि गुफा तह आसन॥ केवल ब्रहम पूरन तह बासन॥
भगत संग प्रभ गोसटि करत॥ तह हरख न सोग न जनम न मरत॥
कर किरपा जिस आप दिवाइआ॥ साधसंग तिन हर धन पाइआ॥[41]

यह कीर्तन एक ऐसा हीरा है जिसकी क़ीमत नहीं आँकी जा सकती। यह अनंत गुणों और ख़ुशियों का सागर है। अनहद शब्दरूपी इस अखूट ख़ज़ाने की सँभाल इसके स्वामी ने अपने संतों को सौंप रखी है। निरंतर उस शब्द में मग्न ये महापुरुष मन और माया के क्षेत्र के पार उस स्थान

पर विराजमान हैं जहाँ सतपुरुष स्वयं निवास करता है। इस अलौकिक अवस्था में सुख-दुःख, हर्ष-शोक आदि इन्हें प्रभावित नहीं करते और ये जन्म-मरण के चक्र से मुक्त रहते हैं। अनहद शब्द का धन उन सौभाग्यशाली जीवों को प्राप्त होता है जिन्हें हरि स्वयं दया करके संतों से दिलवाए।

कलियुग में कीर्तन

ग्रंथों और शास्त्रों को पढ़कर शुभ कर्मों की सूची बनाने लगेंगे तो हमें अनेक क्रियाओं का ज्ञान हो जाएगा। किस क्रिया को प्राथमिकता दी जाए, इसके बारे में लेखकों की राय अलग-अलग होने के कारण हमारे लिए कोई निर्णय करना मुश्किल हो जाता है। गुरु अर्जुन देव इस समस्या के समाधान के तौर पर फ़रमाते हैं:

कलजुग मह कीरतन परधाना॥ गुरमुख जपीऐ लाए धिआना॥[42]

बीते युगों में यज्ञ और तप जैसे साधनों का बोलबाला रहा है। वर्तमान समय में कीर्तन यानी शब्द के अभ्यास की प्रमुखता है। बाहरी कीर्तन भी अध्यापक से शिक्षा लिए बिना नहीं किया जा सकता। अनहद शब्द का आंतरिक कीर्तन अपने आप कर लेना किसी भी प्रकार से संभव नहीं। किसी नाम का सिमरन मन की एकाग्रता के बिना केवल ज़बान से भी किया जा सकता है, परंतु सुरत से शब्द को सुनने के लिए मन की एकाग्रता अत्यंत आवश्यक है। किसी विशेष प्राप्ति के लिए पूरे ध्यान से इसकी साधना करनी होती है। इसलिए इस कीर्तन को सुनने की युक्ति का अभ्यास पूरे गुरु के मार्गदर्शन में पूर्ण एकाग्रता से करना चाहिए।

अनहद शब्द का कीर्तन कोई ऐसा व्रत नहीं है कि एक दिन भूख और प्यास सहन कर ली और साल भर के लिए निश्चिंत हो गए। शब्द को अमूल्य हीरा बताया गया है और इसका कीर्तन हमारे अंतर में प्रभु की अपार कृपा से निरंतर हो रहा है। फिर सतगुरु द्वारा बख़्शी जा रही यह दौलत जी-जान से क्यों न समेटी जाए?

रुण झुणो सबद अनाहद नित उठ गाईऐ संतन कै॥
किलविख सभ दोख बिनासन हर नाम जपीऐ गुर मंतन कै॥[43]

अति मीठे, मधुर अनहद शब्द की साधना प्रतिदिन करनी है। 'उठ गाईऐ' का भाव सचेत होकर, चित्तवृत्ति को एकाग्र करके संतों की शिक्षा के अनुसार अभ्यास करने से है। इससे सब पाप मिट जाते हैं और हम दोषों से मुक्त होकर निर्मल हो जाते हैं।

जिस प्रकार पहले परीक्षा होती है और बाद में उसका नतीजा निकलता है, उसी प्रकार जीव पहले प्राण त्यागता है, बाद में उसके कर्मों का लेखा-जोखा होता है। इसके विपरीत शब्द का अभ्यासी अपने जीवन काल में ही प्रभु की दरगाह में स्थान सुरक्षित कर लेता है:

जीवत से परवाण होए हर कीरतन जागे॥[44]

शब्द द्वारा सृष्टि की रचना

अन्य सभी संतों की भाँति गुरु अर्जुन देव ने भी इस विचार को अपनी वाणी में दृढ़ता से प्रकट किया है कि सारी सृष्टि अपने आप ही अस्तित्व में नहीं आई है। आपने स्पष्ट शब्दों में बताया है कि सारे खंड-ब्रह्मांड, लोक, चारों खानियों में बँधे हुए जीव, वायु, जल आदि पाँचों तत्त्व, वनस्पति, दिन-रात, वेद-शास्त्र आदि परमात्मा ने अपने 'कवाउ', शब्द या हुक्म द्वारा पैदा किए हैं:

ओअंकार उतपाती॥ कीआ दिनस सभ राती॥
वण त्रिण त्रिभवण पाणी॥ चार बेद चारे खाणी॥
खंड दीप सभ लोआ॥ एक कवावै ते सभ होआ॥[45]

इससे पहले गुरु नानक साहिब भी यही फ़रमा चुके हैं:

कीता पसाउ एको कवाउ॥[46]

अर्थात् जो भी दृश्य या अदृश्य, सृष्टि का प्रसार है, वह सब शब्द की रचना है। 'जपुजी' में आपने फ़रमाया है:

जेता कीता तेता नाउ॥ विण नावै नाही को थाउ॥[47]

उनके इस कथन को दोहराते हुए गुरु अमरदास जी ने भी नाम को संपूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति करनेवाला कहा है:

नामै ही ते सभ किछ होआ बिन सतगुर नाम न जापै॥[48]

और फिर शब्द को भी:

उतपत परलउ सबदे होवै॥ सबदे ही फिर ओपत होवै॥[49]

इस प्रकार नाम और शब्द एक ही शक्ति के नाम हैं। शब्द ने सृष्टि की रचना करके उसकी सँभाल किसी और के हवाले नहीं कर दी; गुरु अर्जुन देव कहते हैं कि यह सँभाल भी शब्द की अपार शक्ति स्वयं ही करती है।

नानक सबद अपार तिन सभ किछ सारिआ॥[50]

जब आप शब्द द्वारा की जा रही सँभाल की चर्चा करते हुए 'सभ किछ' का संक्षिप्त-सा विवरण देने लगे, तो शब्द के बजाय 'नाम' का प्रयोग कर लिया:

नाम के धारे सगले जंत॥ नाम के धारे खंड ब्रहमंड॥
नाम के धारे सिम्रिति बेद पुरान॥ नाम के धारे सुनन गिआन धिआन॥
नाम के धारे आगास पाताल॥ नाम के धारे सगल आकार॥
नाम के धारे पुरीआ सभ भवन॥ नाम कै संग उधरे सुन स्रवन॥[51]

शब्द का आनंद

अनहद शब्द साधक को प्रभु के आनंदधाम में पहुँचा देता है जहाँ उसके प्रिय भक्त अपने प्रियतम से विसाल का रस प्राप्त करते हैं। कई लोगों

ने उनके परम आनंद की अवस्था के बारे में सुना और पढ़ा होगा, परंतु वास्तविक अनुभव का सौभाग्य किसी बिरले को प्राप्त होता है। शब्द की मनोहर संगीतभरी अलौकिक धुन को सुनकर आत्मा को आवागमन के चक्र की बात तो दूर रही, दुःख-सुख तक की अनुभूति नहीं रहती। गुरु अर्जुन देव बताते हैं कि मेरी यह अलौकिक सहज अवस्था मेरे सतगुरु का वरदान है। मैं कुछ भी अपनी ओर से नहीं कह रहा हूँ, केवल हरि के वचन ही दोहरा रहा हूँ:

सूख महल जा के ऊच दुआरे॥ ता मह वासह भगत पिआरे॥
सहज कथा प्रभ की अत मीठी॥ विरलै काहू नेत्रहो डीठी॥
तह गीत नाद अखारे संगा॥ ऊहा संत करह हर रंगा॥
तह मरण न जीवण सोग न हरखा॥ साच नाम की अंम्रित वरखा॥
गुहज कथा इह गुर ते जाणी॥ नानक बोलै हर हर बाणी॥[52]

गुरु का शब्द

गुरु साहिब द्वारा कई जगह शब्द को गुरु का शब्द कहा गया है, जैसे: गुर का सबद तेरै संग सहाई॥[53] ऐसा इसलिए कि उस गुप्त शब्द का भेद हमें गुरु से उपदेश यानी उसकी दीक्षा के रूप में मिलता है। मनुष्य उसकी खोज नहीं कर सकता। उदाहरण के तौर पर गुरु अर्जुन देव लिखते हैं:

गुर का सबद वसै मन जा कै॥ दूख दरद भ्रम ता का भागै॥[54]

आप यह भी फ़रमाते हैं:

गुर की बाणी जिस मन वसै॥ दूख दरद सभ ता का नसै॥[55]

इन दोनों पंक्तियों में 'सबद' और 'बाणी' का एक ही अर्थ है। वाणी का उल्लेख गुरु साहिब 'गुर की बाणी' कहकर भी करते हैं:

गुर की बाणी सभ माहे समाणी॥ आप सुणी तै आप वखाणी॥[56]

जिसका भेद गुरु द्वारा प्राप्त होता है, वह शब्द हर घट में निरंतर बज रहा है: *घट घट वाजै किंगुरी अनदिन सबद सुभाए॥*[57] इसी शब्द को वाणी भी कहा गया है। इसलिए 'गुर की बाणी' का अर्थ वह काव्यमय रचना नहीं हो सकती जो धर्मग्रंथों में लिखी हुई मिलती है। यह वह वाणी है जो गुरु अमरदास जी के वचनों के अनुसार युग-युगांतरों से बजती चली आ रही है: *बाणी वजी चहु जुगी सचो सच सुणाए॥*[58] हमारे गुरु साहिबान की रची वाणी कुछ सदियों पहले लिखी गई है, युगों से नहीं चली आ रही है। इसे बजनेवाली भी नहीं कहा जा सकता। संत-सतगुरु उस अनहद वाणी को ख़ुद सुनते हैं और उसका भेद दूसरों को भी बताते हैं:

> सूख सहज आनंद नाम रस अनहद बाणी सहज धुना॥[59]

अर्थात् शब्द ही अनहद वाणी है, सहज धुन है; यह अविचल सुख और आनंद का स्रोत है। इस सुख या आनंद को 'नाम रस' कहकर भी बयान किया गया है। यह शब्द श्रेष्ठ वाणी है, सतपुरुष की वाणी है:

> प्रभ बाणी सबद सुभाखिआ॥[60]

गुरु साहिब बताते हैं कि जो सब जीवों को दातें बख़्शनेवाला है, जिसकी वाणी अमृतमयी है, उस प्रभु को उन्होंने सब जगह अपनी आँखों से देखा है:

> सो प्रभ जत कत पेखिओ नैणी॥
> सुखदाई जीअन को दाता अंम्रित जा की बैणी॥[61]

शब्द धुन और एकाग्रता

शब्द की ध्वनि तो हम सबके हृदय में जन्म से ही जारी हो जाती है और आख़िरी साँस तक नहीं रुकती। प्रभुधाम से पैदा होनेवाली यह दिव्य धुन जीव के अत्यधिक निकट है। इसके बावजूद उस कल्याणकारी संगीत से वंचित रह जाना हमारा दुर्भाग्य है।

हमारे कमरे में टाइमपीस रखा हो, तो दिन भर बाहर के शोरगुल के कारण हमें उसकी लगातार हो रही टिक-टिक सुनाई नहीं देती। परंतु जब रात होती है और बाहर का शोर ख़त्म हो जाता है, उसी टिक-टिक का ऊँचा स्वर हमारा सोना दूभर कर देता है। शब्दधुन सुनने के लिए जिज्ञासु को बाहरी आवाज़ों की तरफ़ से अपने कान बंद कर लेने चाहिएँ और अंदर के सूक्ष्म कानों से शब्दधुन को सुनना चाहिए।

नाम के सिमरन से ही शब्दधुन से जुड़ा जा सकता है। गुरु अर्जुन देव बताते हैं: *प्रभ कै सिमरन अनहद झुनकार॥*[62] सिमरन करने के लिए हमें अपना ध्यान आँखों, कानों, नाक जैसे सारे बहिर्मुखी द्वारों से हटाकर अपने मस्तक में भौंहों के बीच तीसरे तिल पर एकत्र करना होता है जहाँ यह अनहद गुंजार सुनाई देती है। यह कार्य उतना ही कठिन है जितना हज़ारों किरणों को पकड़कर एक छोटे बिंदु पर केंद्रित करना। यह आसान नहीं है। सर्कस के हाथी से छोटी-सी तिपाई पर चारों पैर इकट्ठे करवाने के लिए न जाने कितनी देर उसे अंकुश चुभोने पड़ते हैं। मन को जीतने के लिए वैसी ही लड़ाई लड़नी पड़ती है जैसी युद्ध को जीतने के लिए।

चित्त की यह एकाग्रता प्राप्त करना चींटी के शीशे की दीवार पर चढ़ने जैसी क्रिया है। पर अगर किसी ने ऊपर उठने का पक्का निश्चय किया हो, तो सतगुरु अवश्य सहायता करते हैं और चढ़ने की मेहनत, देर-सवेर सफल हो ही जाती है।

धुन से परम आनंद

अनहद शब्द या अनहद वाणी एक अनुपम, लेकिन गुप्त वस्तु है। इसका भेद गुरु के बताने पर ही खुलता है। हृदय की अँधेरी गुफा में अपने आप अंधे की तरह हाथ से टटोलने से वह रत्न प्राप्त नहीं होता, बल्कि गुरु की कृपा से प्राप्त होता है। उसकी शोभा देखकर तन और मन दोनों निहाल हो जाते हैं। उसकी धुन को सुनने से कैसा अपार आनंद प्राप्त होगा, इसका अनुमान लगाना कठिन है:

अनहद बाणी गुरमुख वखाणी जस सुण सुण मन तन हरिआ॥[63]

जब सतगुरु शब्द-अभ्यास का उपदेश देते हैं, तो मानों प्रभुप्राप्ति की नींव रख दी जाती है। वह बहुत भाग्यशाली मुहूर्त और पल होता है, जब इस दीक्षा का संयोग बनता है: *भला संजोग मूरत पल साचा अबिचल नीव रखाई॥*[64] सुरत का शब्द से जुड़ जाना और उस अनहद धुन का रस प्राप्त करना ही अकथ प्रभु का परिचय पाना है। उस रस को केवल मीठा कह देना काफ़ी नहीं है—उस रस की मिठास अपार और अकथनीय है:

सहज कथा प्रभ की अत मीठी कथी अकथ कहाणी॥[65]

उस रस की मिठास बताने का एक ढंग यह भी है:

कहो नानक संतन रस आई है जिउ चाख गूंगा मुसकारै॥[66]

गुरु के उपदेश के अनुसार नाम का सिमरन करने से जब अंतर में शब्द की धुन प्रकट हो जाए, तो समझ लो कि सभी कार्य सिद्ध हो गए:

गुर का सबद रिदे मह चीना॥ सगल मनोरथ पूरन आसीना॥[67]

जब गुरु की दया से प्रकट हुआ वह शब्द मन में बस जाता है, उससे प्रीति हो जाती है, तो माया का रचा भ्रमजाल लुप्त हो जाता है, दु:ख और क्लेश समाप्त हो जाते हैं। शब्द की मधुर धुन निरंतर सुनाई देती रहती है और उससे मिलनेवाला परम सुख और आनंद कभी फीका नहीं पड़ता:

गुर का सबद वसै मन जा कै॥ दूख दरद भ्रम ता का भागै॥[68]

तथा:

सूख सहज आनंद नाम रस अनहद बाणी सहज धुना॥[69]

अनहद शब्द प्रभु का अपना विस्तार ही तो है। जब उसका आनंदमय संगीत प्रतिदिन अपने हृदय में सुना जाए, तो प्रभु सहज ही साधक के हृदय में आकर बस जाता है। *आनंदा वजह नित वाजे पारब्रहम मन वूठा राम॥*[70]

प्रभु की इस अद्वितीय धुन की साधना से परमपद की प्राप्ति हो जाती है:

हर गुण गाए परम पद पाइआ प्रभ की ऊतम बाणी॥[71]

गुरु अर्जुन देव उन लोगों के बारे में विचार प्रकट करते हैं जो जंगलों, पहाड़ों, तीर्थों, धामों आदि में प्रभु की खोज कर रहे हैं। उन्हें सफलता प्राप्त नहीं होती क्योंकि परमात्मा बाहर तो है ही नहीं। प्रभु शरीर के अंदर है, लेकिन अंदर की ओर उनका ध्यान नहीं जाता। आप लिखते हैं:

सभ किछ घर मह बाहर नाही॥ बाहर टोलै सो भरम भुलाही॥
गुर परसादी जिनी अंतर पाइआ सो अंतर बाहर सुहेला जीउ॥[72]

जो कोई गुरु की कृपा से उसे अपने हृदय में ढूँढ़ लेता है, उसका तन-मन प्रसन्न हो जाता है। संतों के मार्ग का भेद खोलते हुए आप फ़रमाते हैं:

झिम झिम वरसै अंम्रित धारा॥ मन पीवै सुन सबद बीचारा॥
अनद बिनोद करे दिन राती सदा सदा हर केला जीउ॥[73]

शब्द का अमृत एक कोमल, संगीतमयी धुन के रूप में निरंतर हमारे अंदर बरस रहा है। इस गुप्त भेद की जानकार आत्मा इस शब्द की आवाज़ को सुनती है, उससे लिव जोड़ती है। इस प्रकार उसके अमृतरस का पान करके आनंदित होती है। इस अनहद शब्द की धारा का निरंतर बरसना परमात्मा द्वारा स्वयं रचा गया खेल है और उसकी बख़्शी आत्माएँ उसके इस खेल में शामिल होकर दिन-रात, इसका रस प्राप्त करती हैं।

गुरु से मिली सुमति के फलस्वरूप जीव को अपने सिरजनहार से दूर रखनेवाली भ्रमों की दीवार गिर जाती है, फिर उसकी आत्मज्योति परमात्मा की ज्योति में ऐसे लीन हो जाती है, जैसे पानी में उठी लहर अपने स्रोत में समा जाती है। उसे फिर किसी खोज में नहीं लगना पड़ता:

जल तरंग जिउ जलह समाइआ॥ तिउ जोती संग जोत मिलाइआ॥
कहो नानक भ्रम कटे किवाड़ा बहुड़ न होईऐ जउला जीउ॥[74]

शब्दरूपी अमृत का पान

जब कभी घर से बाहर किसी प्राकृतिक स्रोत से पानी पीने का अवसर मिले, तो उसकी सतह पर तैरती मैली झाग, फूस के तिनके आदि को हाथों से दोनों ओर हटाकर हम झटपट अंजलि भर लेते हैं। कुछ ही घूँटों से हमारी प्यास मिट जाती है, जब कि स्रोत के पास हमारी ज़रूरत से बहुत अधिक पानी होता है। फिर कभी ऐसा मौसम आ जाता है जब तालाब सूख जाते हैं और नदियों में रेत और कंकड़ों के सिवाय कुछ बाक़ी नहीं रहता। लेकिन शब्द का स्रोत विलक्षण है, जो कभी कम नहीं होता, न ख़त्म होता है। संकल्पों-विकल्पों को दूर हटाकर उसके महारस का आनंद प्राप्त किया जा सकता है। गुरु अर्जुन देव उपरोक्त रूपक के द्वारा कह रहे हैं कि उस अथाह अमृत को निरंतर पीते रहना चाहिए:

सुरत सबद रिद अंतर जागी अमिउ झोल झोल पीजा हे॥[75]

शब्द और ज्योति

जिस तरह शब्द परमेश्वर का रूप है, उसी तरह ज्योति भी परमेश्वर का ही रूप है। शब्द और ज्योति असल में एक हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। आकाश की बिजली में कड़क भी होती है और रोशनी भी। वैसे ही प्रभु के अनाहत शब्द में ध्वनि और प्रकाश दोनों हैं।

गुरु साहिब फ़रमाते हैं:

सभ मह सबद वरतै प्रभ साचा करम मिलै बैआलं॥[76]

सब जीवों में प्रभु का सच्चा शब्द मौजूद है, क्रियाशील है, पर मिलता प्रभु की दया-मेहर से है। गुरु साहिब के ही वचन हैं:

सभ मह जोत जोत है सोए॥
तिस कै चानण सभ मह चानण होए॥[77]

जो ज्योति हम सबके अंदर है, वह उस परमज्योति की अंश है, लेकिन गुरु की शिक्षा पर अमल करने से ही वह ज्योति नज़र आती है। गुरु नानक साहिब परमेश्वर को 'जोत सरूप' कहकर याद करते हैं:

जोत सरूप सदा सुखदाता सचे सोभा पाइदा॥[78]

गुरु अर्जुन देव भी प्रभु प्रियतम का वर्णन ज्योतिस्वरूप कहकर करते हैं:

जोत सरूप जा की सभ वथ॥ करण कारण पूरन समरथ॥[79]

एक और स्थान पर आप फ़रमाते हैं कि शब्द की धुन उस ज्योतिस्वरूप से ही जन्म लेती है:

सहज गुफा मह आसण बाधिआ॥ जोत सरूप अनाहद वाजिआ॥[80]

अर्थात् जब मन को माया की हुकूमत से निकालकर एकाग्र कर लिया, तो ज्योतिस्वरूप परमेश्वर का अनहद शब्द सुनाई देने लगा।

शब्द की चर्चा करते हुए उसके प्रकाशमय होने के गुण का भी वर्णन किया है। इस संबंध में गुरु अर्जुन देव अपना निजी अनुभव इन शब्दों में बयान करते हैं:

प्रथमे तिआगी हउमै प्रीत॥ दुतीआ तिआगी लोगा रीत॥
त्रै गुण तिआग दुरजन मीत समाने॥ तुरीआ गुण मिल साध पछाने॥

सहज गुफा मह आसण बाधिआ॥ जोत सरूप अनाहद वाजिआ॥
महा अनंद गुर सबद वीचार॥ प्रिअ सिउ राती धन सोहागण नार॥[81]

सबसे पहले मैंने हौंमैं, मैं-मेरी से नाता तोड़ा, फिर लोकाचार की भेड़चाल छोड़ी और इसके बाद जब मैं रज, तम और सत्त्व, तीनों गुणों से ऊपर उठा तो मुझे शत्रु और मित्र एक समान नज़र आने लगे। प्रभु की कृपा हुई तो सतगुरु से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और सतगुरु की कृपा से आंतरिक मंज़िलों का ज्ञान हुआ। उस अवस्था की प्राप्ति कब हुई? जब मैंने अपनी वृत्ति को एकाग्र करके उस अनहद शब्द को सुना, जो उस ज्योतिस्वरूप सतपुरुष का अपना ही विस्तार है। गुरु की दीक्षा के अनुसार अभ्यास करने का यह फल हुआ कि मेरी आत्मा प्रभु से मिलकर सुहागिन हो गई और उसने परम आनंद प्राप्त कर लिया।

सिमरन का मुख्य उद्देश्य मन को अनेक दिशाओं में भटकने से रोककर उसे एकाग्र करना होता है और ध्यान को एक नुक़ते पर टिकाने के लिए सतगुरु के स्वरूप से बेहतर और क्या हो सकता है?

अकाल मूरत है साध संतन की ठाहर नीकी धिआन कउ॥[82]

जब पाँचों ज्ञानेंद्रियाँ उस स्वरूप पर मुग्ध हो जाती हैं तो अनहद वाणी गूँजने लगती है और उसका प्रकाश भी जगमगा उठता है:

चरण कमल रिद अंतर धारे॥ प्रगटी जोत मिले राम पिआरे॥
पंच सखी मिल मंगल गाइआ॥ अनहद बाणी नाद वजाइआ॥[83]

शब्द का प्रकाश

हर मनुष्य का हृदय परमेश्वर का मंदिर है। मंदिर में प्रकाश का होना आवश्यक है। हमारा सिरजनहार प्रभु अद्वितीय है, इसलिए उसने अपने मंदिर में प्रकाश भी सारे जहान से न्यारा किया हुआ है—किसी मशाल, दीपक, ट्यूब या बल्ब से नहीं, बल्कि शब्द की ज्योति से। दीपक की

बत्ती जल जाती है, तेल ख़त्म हो जाता है; ट्यूबें, बल्ब फ़्यूज़ हो जाते हैं। पर शब्द की ज्योति किसी हालत में नहीं बुझती। न धुआँ, न तपिश, जब कि प्रकाश निरंतर रहता है। शब्द अनहद है, अनंत है, इसी लिए उसकी ज्योति भी समय की मुहताज नहीं होती। जब तक हम जीवित हैं, वह प्रकाश भी रहेगा। सच तो यह है कि हम जीवित ही तब तक रहते हैं जब तक यह ज्योति हमारे अंदर मौजूद रहती है। यह चली जाती है तो हमारा अस्तित्व ही ख़त्म हो जाता है। गुरु अर्जुन देव फ़रमाते हैं:

मंदर मेरै सबद उजारा॥[84]

और यह शब्द का उजाला हम सबके अंदर है:

सरब जोत मह जा की जोत॥[85]

एक अन्य स्थान पर गुरु अर्जुन देव जी के वचन हैं:

सहज कथा प्रभ की अत मीठी॥ विरलै काहू नेत्रहो डीठी॥[86]

ये वचन पहेली जैसे लगते हैं। 'सहज कथा' तो अनाहत शब्द है। अनाहत शब्द को देखा कैसे जा सकता है? इसलिए कि शब्द में प्रकाश है और प्रकाश नज़र आता है। यह प्रकाश आंतरिक दृष्टि से देखा जा सकता है जिसे 'निरत' कहते हैं।

मंदिर एक तरह की बैठक ही तो है और बैठक का मालिक जैसे चाहे उसका प्रयोग करे। अज्ञानतावश अगर वह उसमें घास-फूस, उपले, कोयले जैसी चीज़ें रखता है, तो उसे कौन रोक सकता है? इसी प्रकार अज्ञान के कारण हमने भी अपने हृदय का मंदिर काले कर्मों से भर रखा है। यही कारण है कि उस प्रभु की दिव्य ज्योति की कोई किरण हमारी आत्मा तक नहीं पहुँच पाती। लेकिन प्रभु की अपार कृपा से जब सतगुरु की संगति मिलती है तो वह हमारे हृदयरूपी मंदिर को उस दिव्य ज्योति से प्रकाशमान कर देता है:

कर किरपा जउ सतगुर मिलिओ॥ मन मंदर मह दीपक जलिओ॥[87]

गुरु अर्जुन देव इस ज्योति को 'गुर सबद दीपक' कहते हैं, क्योंकि यह हमारे अंतर के अंधकार को दूर करनेवाला दीपक गुरु की कृपा से प्रकाशित होता है, किसी निजी कोशिश से नहीं:

अंधकार मिटिओ तिह तन ते गुर सबद दीपक परगासा॥[88]

संसार के अग्नि सागर से शुरू होकर प्रभु प्रियतम के द्वार तक पहुँचने का मार्ग बड़ा कठिन है। जैसे अपनी मंज़िल की ओर बढ़ते हुए रास्ते में जंगल आ जाए तो उसमें अनेक पेड़, घनी कँटीली झाड़ियाँ और शेर, चीते, साँप, बिच्छू आदि भयानक जीव होते हैं। कई जंगलों में दोपहर में भी अमावस का अँधेरा रहता है। फिर ऊपर बताया गया प्रभुप्राप्ति का रास्ता तो मानों विकारों और मायामय शक्तियों से भरपूर, घने जंगल में से गुज़रता है। जब सतगुरु कृपा करके शब्द की ज्योति बख़्श देता है, तब यह सफ़र ख़त्म किया जा सकता है:

जिउ महा उदिआन मह मारग पावै॥
तिउ साधू संग मिल जोत प्रगटावै॥[89]

दुनिया के रीति-रिवाजों का पालन करते हुए जितना चाहो समय और पैसा ख़र्च करते जाओ, कष्ट उठाते रहो, इससे लोगों से प्रशंसा प्राप्त की जा सकती है, परंतु अंतर का अंधकार दूर नहीं होता:

परविरत मारग जेता किछ होईऐ तेता लोग पचारा॥
जउ लउ रिदै नही परगासा तउ लउ अंध अंधारा॥[90]

ज्योति का प्रताप

अगर दिशा ग़लत हो तो केवल चलते रहने से ही मंज़िल पर नहीं पहुँचा जा सकता, बल्कि मंज़िल और भी दूर हो जाती है। मंज़िल पाने के लिए

सही दिशा में चलना ज़रूरी है। पानी में कमल सूर्य के प्रकाश से खिलता है। हमारे हृदय-कमल की भी कुछ ऐसी ही स्थिति है। यह कमल गुरु की कृपा से खिलता है और हृदय की अँधेरी कोठरी ज्योति से जगमगा उठती है:

गुर प्रसाद ऊरध कमल बिगास॥ अंधकार मह भइआ प्रगास॥[91]

इनसान का शरीर देखने में चाहे सुंदर लगे, लेकिन वह मिट्टी ही है, इसका आधार रक्त की एक तुच्छ बूँद से अधिक कुछ नहीं। यह देह अमूल्य वस्तु तभी बनती है जब इसमें अगम ज्योति का प्रकाश हो जाए:

कवन मूल प्रानी का कहीऐ कवन रूप द्रिसटानिओ॥
जोत प्रगास भई माटी संग दुलभ देह बखानिओ॥[92]

ज्योति की महत्ता बताते हुए गुरु अर्जुन देव अपना निजी अनुभव इन शब्दों में प्रकट करते हैं:

सतगुर सबद उजारो दीपा॥
बिनसिओ अंधकार तिह मंदर रतन कोठड़ी खुल्ही अनूपा॥
बिसमन बिसम भए जउ पेखिओ कहन न जाए वडिआई॥
मगन भए ऊहा संग माते ओत पोत लपटाई॥[93]

जब सतगुरु की दया-मेहर से हृदय की कोठरी में ज्योति प्रकट हुई तो सारा अँधेरा दूर हो गया और हृदय के अंदर रत्नों का भंडार मिल गया। उसका दर्शन करने से एक आश्चर्यजनक, अकथ आनंद प्राप्त हुआ और उसके प्रेम में इस प्रकार सराबोर हो गए कि कपड़े के ताने-बाने की तरह उससे एकरूप हो गए।

शब्दगुरु की शरण

शरण और आपाभाव एक साथ नहीं रह सकते। लेकिन अगर एक बार गुरु के हो जाएँ तो ख़ुदी का अस्तित्व ही ख़त्म हो जाता है। असल में

सब कुछ गँवाकर जो कुछ हम पा लेते हैं, वह अमूल्य है, कहने और सुनने के परे है। गुरु अर्जुन देव फ़रमाते हैं:

हर जन छोडिआ सगला आप॥
जिउ जानहो तिउ रखहो गुसाई पेख जीवां परताप॥
गुर उपदेस साध की संगत बिनसिओ सगल संताप॥
मित्र सत्र पेख समत बीचारिओ सगल संभाखन जाप॥
तपत बुझी सीतल आघाने सुन अनहद बिसम भए बिसमाद॥
अनद भइआ नानक मन साचा पूरन पूरे नाद॥[94]

गुरु साहिब कहते हैं—मैंने तो एक ही बार में समस्त आपा अर्पण कर दिया। उसे केवल गिरवी नहीं रखा कि उसे वापस लेने की गुंजाइश रह जाती। मालिक से कह दिया कि चाहे किसी भी हाल में रख, अब मुझे केवल तेरी छत्रछाया, तेरी शोभा और महिमा का बखान करते हुए ही जीना है। गुरु की संगति में उसके अमृत-वचन सुनकर मानों बैकुंठ प्राप्त हो गया और सभी दु:ख और क्लेश नष्ट हो गए। अब दोस्त और दुश्मन एक समान दिखाई देते हैं। उनमें कोई अंतर नहीं है। अपने-पराए का भेद समाप्त हो गया, अब जो भी वचन कानों में पड़ते हैं, हरि का सिमरन लगते हैं। अनहद शब्द की धुन में सराबोर हो जाने पर सारे ताप उतर गए, तृष्णा शांत हो गई, आत्मा शीतल हो गई। यह ऐसा आश्चर्यजनक अनुभव था जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। अपने हृदय में विराजमान प्रभु-प्रियतम का अगम संगीत सुनकर मैं आनंदित हो गया हूँ।

शब्द की चौकी

जब किसी गाँव या बस्ती में हिंसा और लूटमार का डर होता है, तो सरकार वहाँ पुलिस की चौकी बिठा देती है ताकि आवश्यकता पड़ने पर फ़ौरन हथियारबंद सहायता प्राप्त करवाई जा सके। व्यावहारिक दृष्टि से देखें तो वह चौकी किसी घर के बिलकुल निकट होगी, किसी से कुछ

दूर और किसी से बहुत दूर। लेकिन शब्द का पहरा तो हर जगह साथ होता है और चारों ओर से रक्षा करता है, जैसे किसी माँ ने अपने बालक को चादर में छिपा रखा हो:

गुर का सबद रखवारे॥ चउकी चउगिरद हमारे॥
राम नाम मन लागा॥ जम लजाए कर भागा॥[95]

जब अपना मन नाम (शब्द) से जुड़ा हो तो यमराज की क्या हिम्मत कि निकट भी आए।

शब्द में समाना

शब्द का अभ्यास उसकी धुन को सुनने या उसके प्रकाश को देखने तक सीमित नहीं है। यह अभ्यासी जीव का आदि है, आरंभ है। उसका ध्येय शब्द में समाना है:

सूरज किरण मिले जल का जल हूआ राम॥
जोती जोत रली संपूरन थीआ राम॥[96]

किरण सूर्य में मिल जाती है और लहर सागर में। गुरु अर्जुन देव बताते हैं कि मुझे शब्द की खोज थी और जब सतगुरु की दया हुई, तो यह अमूल्य पदार्थ मुझे अपने हृदय में ही मिल गया। उस शब्द में समाने से, लीन होने से मेरे तन, मन, आत्मा को, मेरे संपूर्ण अस्तित्व को शांति का अनुभव हुआ:

पाइआ लाल रतन मन पाइआ॥
तन सीतल मन सीतल थीआ सतगुर सबद समाइआ॥[97]

हारमोनियम बजाने के लिए एक हाथ से उसके पंखे को हिलाना होता है, दूसरे से उसके सुरों को दबाना। बाँसुरी के मुख्य सूराख़ में फूँक मारी जाती है, फिर अंगुलियों की सहायता से उस हवा को आगे दूसरे सूराख़ों में से निकाला जाता है। पर अनहद शब्द के लिए कोई शारीरिक

चेष्टा नहीं करनी पड़ती। अपने इधर-उधर फैले ध्यान को दोनों भौंहों के मध्य, अंतर में केंद्रित कर लेना काफ़ी है। साधना के लिए आवश्यक शब्द तो पहले ही अंतर में बज रहा है। जिज्ञासु अभ्यास द्वारा इस धुन के प्रति जाग्रत हुआ और इसकी अमृत वर्षा शुरू हो गई। हरिकीर्तन के जाग्रत होने का सौभाग्य संतों की संगति में जाने और उनसे दीक्षा लेने से प्राप्त होता है:

संतह संग संत संभाखन हर कीरतन मन जागै॥[98]

शब्द द्वारा प्रभु का साक्षात्कार

गुरु अर्जुन देव बिलावल राग के नदरी आवै तिस सिउ मोह॥[99] से आरंभ होनेवाले शब्द में उदाहरण के तौर पर अपने आप को साधारण मनुष्य के समान प्रस्तुत करते हुए उसकी दयनीय दशा का वर्णन करते हैं। आप कहते हैं कि मनुष्य का ध्येय संसार के विष से भरे सागर को पार करना है। उसकी इस कोशिश को असफल बनाने के लिए एक ओर तो माया उसे तृष्णा की ज़बरदस्त लहरों के थपेड़ों से परेशान कर रही है और दूसरी ओर उसे मोह के चक्कर में डालकर हाथ-पाँव हिलाने से बेबस किया हुआ है। इसके अलावा अहंकार उसे ऐसे जला रहा है, जैसे दीपक की लौ पतंगे को जलाती है। ऐसी स्थिति से उबरने के लिए उसे एक विशेष साधन चाहिए, वह जादुई हीरा जो आसानी से प्राप्त नहीं किया जा सकता। लेकिन जब दया करके सतगुरु ने परदा हटाया, तो वह अमूल्य रत्न (शब्द) शरीर के अंदर ही सच्चे हरिमंदिर में मिल गया। जिस किसी ने उसके संगीत की मिठास चख ली, उसके आनंद की सीमा न रही। गूँगे की तरह उसकी महिमा करने के लिए उसे भी कोई शब्द नहीं मिलते। शब्द की साधना से उस आनंदरूप प्रभु का साक्षात्कार ही नहीं हुआ, वह स्वयं प्रभु में समा गया:

हउ फिरउ उदासी मै इक रतन दसाइआ॥
निरमोलक हीरा मिलै न उपाइआ॥

हर का मंदर तिस मह लाल॥
गुर खोलिआ पड़दा देख भई निहाल॥
जिन चाखिआ तिस आइआ साद॥
जिउ गूंगा मन मह बिसमाद॥
आनद रूप सभ नदरी आइआ॥
जन नानक हर गुण आख समाइआ॥[100]

शब्द सबके लिए साँझा

हमारे देश में प्रचलित दो प्रमुख धर्मों के अनुयायियों की मतभेदपूर्ण गतिविधियाँ देखते हुए गुरु अर्जुन देव उस कृपासिंधु, बख़्शनहार कुलमालिक से विनती करते हैं कि वह इन भूले हुओं पर दया-मेहर करे:

कारण करण करीम॥ किरपा धार रहीम॥[101]

कोई अपने सिरजनहार को राम कहकर याद करता है, कोई ख़ुदा के नाम से पुकारता है। पहला गोसाईं का सेवक बना हुआ है और दूसरा अल्लाह का ख़ादिम। एक उसे प्रसन्न करने के लिए तीर्थों की ओर चल देता है तो दूसरा उसी मनोरथ की सिद्धि के लिए हज करने चला जाता है। एक का आराधना का ढंग मूर्ति की पूजा करना है, दूसरे का नमाज़ पढ़ना। इसी प्रकार उनके धर्मग्रंथों में भी वेद और क़ुरान का अंतर है और उनके रस्मी पहनावे में सफ़ेद और हरे रंग का। उनके विचार के अनुसार उनके धर्म अलग-अलग हैं—हिंदू और इसलाम। वे अपनी जीवन यात्रा की समाप्ति पर अलग-अलग सुखद मंडलों में स्वीकार किए जाने की कामना करते हैं जिनके नाम उन्होंने स्वर्ग और बहिश्त रखे हुए हैं। वास्तविकता यह है कि उन्हें उस एक प्रभु या साहिब के हुक्म अर्थात् शब्द का भेद मालूम नहीं। अगर उनकी पहुँच अपने और अन्य सभी के हृदय के अंदर गूँज रही अनहद शब्द की धुन तक हो जाए, तो वे जान लें कि सब जीवों का एकमात्र पिता हर एक को अपने गले लगाने के लिए अत्यंत मधुर आवाज़ में बुला रहा है। उनका यह भ्रम ख़त्म हो जाएगा

कि उनके पूज्य अलग-अलग हैं और उन्हें पाने के लिए अलग-अलग साधन अपनाने ज़रूरी हैं:

> कोई बोलै राम राम कोई खुदाए॥ कोई सेवै गुसईआ कोई अलाहे॥...
> कोई नावै तीरथ कोई हज जाए॥ कोई करै पूजा कोई सिर निवाए॥
> कोई पड़ै बेद कोई कतेब॥ कोई ओढै नील कोई सुपेद॥
> कोई कहै तुरक कोई कहै हिंदू॥ कोई बाछै भिसत कोई सुरगिंदू॥
> कहो नानक जिन हुकम पछाता॥ प्रभ साहिब का तिन भेद जाता॥[102]

जब कभी कट्टरपंथियों का प्रभाव बढ़ता है, तो वे अपने निर्बल बहन-भाइयों को परमात्मा की अनंत अमूल्य दातों से वंचित करने में कोई कमी नहीं छोड़ते। यह बहुत पुरानी बात तो नहीं कि प्रभु के अनेक प्रेमियों को शूद्र कहकर उन्हें न मंदिरों में प्रवेश करने दिया जाता था, न वेद-शास्त्रों जैसे धर्मग्रंथों को छूने की इजाज़त थी। और तो और, उँची जातियों की स्त्रियों को भी इस अधिकार से वंचित किया हुआ था। परमात्मा ने स्वयं तो ऐसा भेद करने के लिए कोई क़ानून नहीं बनाया। गुरु अर्जुन देव के वचन हैं:

> जात अजात जपै जन कोए॥ जो जापै तिस की गति होए॥[103]

परमात्मा तो उसी तरह हर प्राणी के हृदय में निवास करता है जिस प्रकार चंद्रमा पानी से भरे सभी घड़ों में समान रूप से प्रतिबिंबित होता है:

> हभ समाणी जोत जिउ जल घटाऊ चंद्रमा॥
> परगट थीआ आप नानक मसतक लिखिआ॥[104]

संतों की शिक्षा भी ब्राह्मणों, शूद्रों और अन्य सभी वर्णों के लोगों के लिए एक समान होती है:

> खत्री ब्राहमण सूद वैस उपदेस चहु वरना कउ साझा॥[105]

इसी तरह उनका दिया हुआ नाम बिना किसी भेदभाव के हर जाति के लोगों को भवसागर से पार ले जाने का साधन बनता है:

> खत्री ब्राहमण सूद वैस सभ एकै नाम तरानथ॥[106]

नाम यानी शब्द की टेक

यह विवाद का विषय नहीं कि मनुष्य को जिस मात्रा में बुद्धि, सूझ-बूझ और विवेक की बख़्शिश की गई है उसके मुक़ाबले अन्य जीवों को बहुत कम समझ मिली है। इस समझ के कारण उसने बाक़ी योनियों को अपना सेवक बना लिया:

> अवर जोनि तेरी पनिहारी॥[107]

लेकिन इस कारण उसका अकड़ना, फूलना उचित नहीं हो जाता। तत्त्वों की बाँट में सबसे अधिक हानि उठानेवाली बेज़बान वनस्पति है—उम्र भर क़ैदी—पर अगर नेकी और परोपकार की दृष्टि से विचार करें, तो परमात्मा की अन्य कोई रचना वनस्पति की बराबरी नहीं कर सकती।

वृक्ष और पौधे कार्बन डायऑक्साइड जैसी ज़हरीली गैस लेकर उसके बदले ऑक्सीजन देते हैं, जिसके बिना हम एक पल में मौत के शिकार हो सकते हैं। वनस्पति की अन्य देन है: रोगियों के लिए औषधियाँ, स्वास्थ्य के लिए स्वादिष्ट फल, मन की प्रसन्नता के लिए मनमोहक फूल, जंगली जीवों के लिए अमूल्य सुरक्षा, पशुओं के लिए स्वादिष्ट चारा, पक्षियों के लिए रैनबसेरा आदि। वे बेचारे तो उगने से मिट जाने तक निरंतर हम मनुष्यों की और बाक़ी जीव-जगत की सेवा में जुटे रहते हैं। इसके विपरीत हम मनुष्य जितने चतुर हैं, उतने ही कृतघ्न, स्वार्थी, लालची और बेरहम भी हैं। हमारे उपकार के पीछे भी प्राय: कोई न कोई निजी हित छिपा रहता है। मनुष्य शरीर की तो यही एक बड़ाई है कि इसमें सतगुरु की संगति का सौभाग्य प्राप्त हो सकता है और उसकी दया से नाम का सिमरन किया जा सकता है:

अवर काज तेरै कितै न काम॥
मिल साधसंगत भज केवल नाम॥[108]

जब तक सत्य अर्थात् सतपुरुष से लिव न जुड़े, तब तक हमारी यह सर्वोत्तम देह निष्फल रहती है। इसकी बेबसी, इसकी निष्फलता को दूर करने का उपाय वह मालिक इसे शब्द से जोड़कर करता है। जब तक वह इसे शब्दरूपी बाँह का सहारा न दे, यह ख़ुद निहत्थी, बेसहारा कुछ भी नहीं कर सकती:

साची लिवै बिन देह निमाणी॥
देह निमाणी लिवै बाझहो किआ करे वेचारीआ॥
तुध बाझ समरथ कोए नाही क्रिपा कर बनवारीआ॥
एस नउ होर थाउ नाही सबद लाग सवारीआ॥
कहै नानक लिवै बाझहो किआ करे वेचारीआ॥[109]

कर्मों की खेती

जेहा बीजै सो लुणै करमा संदड़ा खेत॥[110]

किसी माता-पिता की दो बेटियाँ हैं जिनमें छोटी, तीखे, मनमोहक नयन-नक़्श और उजला, साफ़ रंग लेकर पैदा हुई और बड़ी की नाक चपटी, दाँत चौड़े और बाहर की ओर झुके हुए, रंग साँवला, बेनूर। इसलिए पहली के लिए अच्छे घरों से विवाह के लिए रिश्ते आ रहे हैं, जब कि दूसरी को कोई महँगा दहेज देने के वायदे पर भी स्वीकार करने को तैयार नहीं।

एक लड़का जो महाशरारती, माता-पिता के लिए मुसीबत, पड़ोसियों के लिए 'तिजरा' (तीसरे दिन चढ़नेवाला ज्वर), फिर भी परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करके सीधे अफ़सर बन गया, परंतु उसका भाई विनम्र, सुशील और सौम्य-स्वभाव, कम-बुद्धि होने से हल चलाने पर मजबूर है।

कई नेक, लोकहित प्रवृत्ति वाले सज्जन प्रौढ़ अवस्था में ही कूच कर जाते हैं, जब कि कई घरफूँक निखट्टू, अनेक बददुआओं के बावजूद, अस्सी-नब्बे वर्ष का हो जाने पर भी यहीं विचर रहे हैं। देखनेवाले कुछ लोग कह देते हैं, 'प्रभु के घर न्याय नहीं'; उसके अस्तित्व तक में विश्वास गँवा बैठते हैं।

ग़लतफ़हमी इस बात से पैदा होती है कि ईश्वरीय विधान के अनुसार चाहे चपत के बदले चपत ही पड़े, वह प्राय: उसी समय नहीं पड़ती। उसी प्रकार हर माल का मूल्य ठीक तय हो जाने पर भी हाथों-हाथ नहीं चुकाया जाता। ईश्वर का न्यायाधीश देर कर सकता है, अंधेर नहीं। हम जानते हैं कि डाकघर का मनीऑर्डर कई दिनों बाद पहुँचता है। महीने का वेतन आनेवाले मास की पहली को मिलता है। तीस-पैंतीस साल की नौकरी से कमाई पेंशन के लिए सेवामुक्त होने की तिथि तक इंतज़ार करना पड़ता है।

अपराधी सज़ा से बचने के लिए कई हथकंडों का प्रयोग करते हैं—हत्या में काम आए हथियार से अंगुलियों के निशान मिटा दिए, उस पर लगा ख़ून धो दिया, हथियार ही कुएँ में फेंक दिया, दबाव डालकर, धन देकर गवाहों के बयान बदलवा दिए। सरकारी वकील की मुट्ठी गरम कर दी, आदि। शक का फ़ायदा उठाकर क़ातिल फाँसी पर लटकने से बच जाता है। पर ऊपरवाले को किसी भी तरह चकमा नहीं दिया जा सकता। हमारे अंदर बिठाए उसके सदा चौकन्ने लेखाकार चित्रगुप्त, हमारी हर चेष्टा देख रहे हैं और उनकी गवाही को ठुकराए जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसके अतिरिक्त, जैसे अपराधियों की मंडली में से ही कोई एक अपने साथियों के विरुद्ध सरकारी गवाह बन जाता है, वैसे ही दोषी के अपराध में हिस्सेदार उसकी अपनी कर्मेंद्रियाँ ही भेद खोल देती हैं और उसमें अपने किए से इनकार करने की हिम्मत नहीं रहती। इसी लिए गुरु अर्जुन देव फ़रमाते हैं:

तूं वलवंच लूक करह सभ जाणै जाणी राम॥
लेखा धरम भइआ तिल पीड़े घाणी राम॥[111]

जब धर्मराज लेखे की जाँच-पड़ताल करता है तो ऐसे कष्ट देता है जैसे तिलों को कोल्हू में पेरते हैं।

संसार का चौकन्ना चौकीदार भी कभी अपनी ड्यूटी से अनुपस्थित हो सकता है, लेकिन याद रखें कि प्रभु सदा हाज़िर-नाज़िर है। हम जितना चाहें छिपकर कोई कर्म करें, प्रभु उससे अनजान नहीं होता।

दिन रात कमाइअड़ो सो आइओ माथै॥
जिस पास लुकाइदड़ो सो वेखी साथै॥[112]

हर मनुष्य का भाग्य जन्म के समय उसके साथ आता है और उसके अनुसार ही उसको पिछले जन्मों में किए हुए कर्मों का फल भुगतना पड़ता है।

गुरु अर्जुन देव हमारे जीवन को कर्मों का खेत बताते हैं—जो फसल बोएँगे, उसी को काटना पड़ेगा:

जेहा बीजै सो लुणै करमा संदड़ा खेत॥[113]

एक अमीर आदमी, अपने घर के साथ जुड़ी ज़मीन में आँखों को प्रिय लगने और दिल को ताज़गी देने के लिए कोमल घास लगाता है। वह जानता है कि अब उसकी खेती से खाने के लिए न तो अनाज मिलेगा, न फल और न सब्ज़ी। उसी ज़मीन में जो गेहूँ बोएगा, उसके बोए दाने अनेक गुणा होकर फलेंगे, उसका अपना पेट भी भरेगा और कई दूसरों का भी। इसके विपरीत, उसी ज़मीन में अगर कोई तालाब खोदकर मछलियों का व्यवसाय करता है तो वह धर्मराज के सामने उत्तरदायी होगा और न जाने उसे कितने समय तक नरक भोगना पड़े और निचली योनियों में परेशान होना पड़े।

किसी देश का शासक कोई हत्या करता है या करवा देता है, तो इस दुनिया में चाहे कोई उससे जवाब न माँगे, मगर परमात्मा की दरगाह में उसकी प्रतिष्ठा, उसके ताजो-तख़्त किसी काम नहीं आते, उसे दंड से छुटकारा नहीं मिल सकता। वहाँ न ताक़त का सिक्का चलता है, न दौलत या चतुराई का:

सभना का दर लेखा होए॥ करणी बाझहो तरै न कोए॥[114]

जो कुछ किसी व्यक्ति के साथ घटित होता है, उसके किए कर्मों के कारण होता है। पर कौन-सी घटना उसके किस कर्म से जुड़ी हुई है, इसके बारे में वह कुछ नहीं जान पाता। घटना का वास्तविक कारण कोई पिछला कर्म होता है, परंतु भ्रम होता है किसी और कारण का। उदाहरण के तौर पर किसी को अपने प्रारब्ध के अनुसार तीस साल का जीवन मिला है और उसे इतना समय पूरा हो जाने पर अवश्य प्राण त्याग देने हैं। होता क्या है? वह मौत के निश्चित समय से एक दिन पहले किसी बीमार रिश्तेदार का हाल पूछने उसके गाँव चला जाता है और वहाँ उसे छाती में दर्द होने लगता है। गाँव में वैद्य-हकीम कोई मिलता नहीं, अस्पताल पहुँचने से पहले उसके श्वास पूरे हो जाते हैं। घर वाले सोचते हैं कि अगर गाँव न जाता और समय से डॉक्टरी सहायता मिल जाती तो उसकी जान बच जाती।

कई बार ड्राइवर की किसी ग़फ़लत के बिना ही मोटर दुर्घटना का शिकार हो जाती है और कई जानें चली जाती हैं। मौक़े पर इकट्ठी हुई भीड़ बिना कारण जाने भड़क उठती है और उस निर्दोष ड्राइवर को पीट-पीटकर मार देती है।

न तो पहले मामले में मरनेवाले ने अपने संबंधी के यहाँ जाकर हमदर्दी ज़ाहिर करने में कोई ग़लती की और न दूसरे में भीड़ को बेक़सूर ड्राइवर की हत्या से कुछ फ़ायदा था। दोनों व्यक्तियों को अपने-अपने किसी पिछले कर्म की सज़ा मिली, परंतु बहाना कुछ और बन गया। इसी लिए गुरवाणी में कहा गया है:

दोस न दीजै काहू लोग॥ जो कमावन सोई भोग॥[115]

जब कभी हमें कोई बीमारी होती है, कोई मुकद्दमा उलझा लेता है, आर्थिक हानि हो जाती है या किसी बदनामी का धब्बा लग जाता है, तो हम झट अपने शिकवे-शिकायतों के लिए कोई बलि का बकरा ढूँढ़ना

शुरू कर देते हैं यानी किसी और को दोषी ठहराने की कोशिश करते हैं। हमारे सिवाय किसी और का कोई दोष नहीं होता। प्रत्येक दु:ख, कष्ट या ग़म के लिए हमारी अपनी ही करनी ज़िम्मेदार होती है। जब भी हमारा नया जन्म होता है, हम पिछले जन्म की सब यादें भूल जाते हैं। जो फल भोगते हैं वह सौ जन्म पहले के कर्म का भी हो सकता है, इसकी तो हम कल्पना भी नहीं कर सकते। माझ राग में आए बारह माहा में कार्तिक महीने की बात करते हुए गुरु अर्जुन देव समझाते हैं:

कतिक करम कमावणे दोस न काहू जोग॥
परमेसर ते भुलिआं विआपन सभे रोग॥
वेमुख होए राम ते लगन जनम विजोग॥
खिन मह कउड़े होए गए जितड़े माइआ भोग॥[116]

हमारी सभी परेशानियों की जड़ है अपने सिरजनहार को भूल जाना। अगर वह याद हो और यह भी याद रहे कि वर्तमान जन्म हमें उससे प्रेम करके, उसकी भक्ति करके वापस उसमें समाने के लिए मिला है, तो फिर उसकी ओर से मुँह मोड़कर विषय-वासनाओं में लीन क्यों हों? जिस प्रकार आम तौर पर पुस्तकों या फ़िल्मों की कहानियाँ हास्य, खेल, ख़ुशी आदि से शुरू होकर मौत और रोने-धोने में समाप्त होती हैं, इंद्रियों के रस भी समय पाकर दुखों-कष्टों में बदल जाते हैं। बुरे कर्म के रूप में उठाया गया हमारा हर एक क़दम हमें अपने प्रियतम से कोसों दूर ले जाता है, परिणाम होता है—एक और जन्म और कष्ट-क्लेश। आगे गुरु साहिब फ़रमाते हैं:

विच न कोई कर सकै किस थै रोवह रोज॥
कीता किछू न होवई लिखिआ धुर संजोग॥[117]

भाव यह है कि हमारा और धर्मराज का एकदम निजी संबंध है। हमारे कर्मों के भुगतान में किसी मध्यस्थ वकील का कोई काम नहीं होता; हम जानें या धर्मराज जाने। कोई रोग लगे तो हम डॉक्टर के पास जाते हैं। इसी प्रकार कोई देनदारी पूरी करने के लिए साहूकार या बैंक का सहारा लेते हैं।

हमें लगता है कि वे हमारी सहायता कर रहे हैं और हमें उस सहायता के कारण अपनी कठिनाइयाँ हल हो जाने का भरोसा भी हो जाता है। पर वास्तव में हमारे अपने किए का फल भुगत लेने के बाद ही हमारी ज़िम्मेदारी समाप्त होती है। हमारे कर्मों के अनुसार बनीं हमारी भाग्य रेखाओं में किसी दूसरे के कुछ करने से कोई परिवर्तन नहीं होता, क्योंकि हमारे हर कर्म की अपनी प्रतिक्रिया होती है। इसलिए कुछ भी करने से पहले हमें सोच लेना चाहिए कि क्या उस कर्म का फल भोगना हमें अच्छा लगेगा?

गुरु अर्जुन देव हमें सावधान करने के लिए कहते हैं:

प्राणी तूं आइआ लाहा लैण॥
लगा कित कुफकड़े सभ मुकदी चली रैण॥[118]

कोई व्यापारी कभी ऐसा सौदा नहीं करता जिसमें उसे हानि होने का भय हो। ऐसा सौदा भी नहीं, जिसमें उसे लाभ होता नज़र न आए। हम 'मैं-मेरी' की भावना के अधीन होकर जो भी कर्म करते हैं, वे हर संभव प्रयत्न करने के बावजूद भी व्यर्थ जाते हैं:

कोट करम करै हउ धारे॥ स्रम पावै सगले बिरथारे॥[119]

विषय-विकारों के विषैले रस की मस्ती में हमसे अनेक पाप हो जाते हैं और उनके कारण हमें बार-बार संसार में दु:ख और कष्ट सहने पड़ते हैं:

साद बिकार बिखै रस मातो असंख खते कर फेरे॥[120]

इसके विपरीत हमें कुछ ऐसा कार्य करना चाहिए जिससे यहाँ आने-जाने के रोग से मुक्त हो जाएँ:

सो किछ कर जित छुटह परानी॥[121]

अर्थात् न तो हमें यहाँ फँसानेवाला कर्म करना है और न निष्फल जानेवाला, बल्कि वह कर्म करना है जो बंधन तोड़े और बेड़ियाँ काटे।

गंदगी में घसीटनेवाले किसी धंधे में हाथ नहीं डालना चाहिए। जो परमपुरुष पूरी तरह निर्मल है, उसमें तभी समा सकेंगे जब हम ख़ुद पूरी तरह निर्मल हों। गुरु साहिब फ़रमाते हैं:

सो किछ कर जित मैल न लागै॥[122]

हमें हक़-हलाल की सच्ची व पवित्र कमाई करके अपना और परिवार का निर्वाह करना है, पराई धन-संपत्ति की ओर ललचाई दृष्टि से नहीं देखना। इसी प्रकार परस्त्री और परपुरुष पर भी बुरी नज़र नहीं डालनी चाहिए। उन्हें माँ, बहन, बेटी या पिता, भाई, पुत्र समझना है। हम स्वयं अनेक अवगुणों के पुतले हैं, इसलिए दूसरों की कमियाँ ढूँढ़ने और उनकी चर्चा करने से क्या लाभ प्राप्त होगा? हम तो पहले ही मैले हैं, फिर दूसरों के कुकर्मों की निंदा करके और अधिक मैले क्यों हों:

पर धन पर दारा पर निंदा इन सिउ प्रीत निवार॥[123]

हर हृदय में हरि बसता है, वह हृदय चाहे किसी राजा का हो या कंगाल का, कुलीन का या अकुलीन का, बकरी का या मुरगी का। जब हम किसी भी जीव को अस्त्र-शस्त्र, हाथ-पाँव या बोल-कुबोल से चोट पहुँचाते हैं, वह उसके अंदर बैठे हरि को लगती है। इस प्रकार हम एक साधारण जीव के प्रति नहीं, उस परमात्मा के प्रति दोषी बन जाते हैं। इस प्रकार के कुकर्म करते हुए हम प्रभु के द्वार नहीं पहुँच सकते।

दूख न देई किसै जीअ पत सिउ घर जावउ॥[124]

सृष्टि के अस्तित्व में आने से पहले हम ख़ुद उस सतपुरुष, सिरजनहार, सर्वशक्तिमान के संग थे। उस समय हम अपने मूल के समान ही निर्मल तथा पवित्र थे, शुद्ध सोने के कण के समान। उसकी मौज में हम अपने मूल से अलग हो गए। प्रभु से अलग किए जाने के समय हमें कुछ सीमा तक मनचाहे फ़ैसले लेने और कर्म करने की स्वतंत्रता दी गई। पर हम इसका सही प्रयोग नहीं कर पाए। हम मन के पीछे लगकर ग़लत

इच्छाएँ करते हुए अनुचित कर्म करने लगे और उनके बुरे फल भुगतते हुए उन्हें दोहराते भी गए। इसके परिणामस्वरूप चौरासी लाख योनियों के अंतहीन कारावास में फँस गए। कड़कती धूप, बर्फ़ीले तूफ़ान, भयानक बाढ़, भयंकर भूचाल आदि में दुःख उठाता जीव अपना रास्ता तय करके मुक्ति के द्वार मनुष्य देह में पहुँचा है, फिर भी अपने पिछले बुरे संस्कारों के कारण हमें यहाँ से बच निकलने का विचार तक नहीं आता। अगर कोई हितैषी इस अनमोल अवसर की ओर ध्यान दिलाता है, तो हम भ्रष्ट बुद्धिवाले लोग उसकी बात नहीं सुनते, बल्कि और पापों के भागी बनकर अपने कठोर कारावास की अवधि बढ़ाते चले जाते हैं।

काश! कर्म करने की मूल स्वतंत्रता हमें दी ही न गई होती, मालिक ख़ुद ही हमारी अंगुली पकड़कर जिधर चाहता ले जाता! गुरु अर्जुन देव हमारी ओर से परमात्मा से दया की प्रार्थना करते हैं:

किरत करम के वीछुड़े कर किरपा मेलहो राम॥
चार कुंट दह दिस भ्रमे थक आए प्रभ की साम॥[125]

हे प्रभु! हम अपने ही कर्मों के कारण चारों खानियों और दसों दिशाओं में भटकते रहे हैं। अब थके-हारे तेरी शरण में आ पहुँचे हैं। ऐसी स्थिति में गुरु साहिब जीव को उपदेश देते हैं:

करम भूमि मह बोअहो नाम॥ पूरन होए तुमारा काम॥[126]

इस मानव शरीर की धरती में नाम बोओ ताकि तुम्हारा संसार में आने का उद्देश्य पूर्ण हो जाए और आगे आवागमन के दुःख न सहन करने पड़ें।

अंधी गलियाँ

इह बिधि कोए न तरिओ मीत॥
गुरु अर्जुन देव

पाठ-पूजा

काल भगवान ने संसार में कुछ इस प्रकार की व्यवस्था की हुई है कि हर जीव प्रारब्ध के रूप में प्राप्त दुखों से निपटने और सुखों को भोगने में व्यस्त रहता है, उसे अपने जीवनदाता सिरजनहार से संपर्क करने या संबंध जोड़ने का ख़याल तक नहीं आता। अगर किसी बिरले का उस ओर थोड़ा-बहुत झुकाव होता भी है तो जैसे हम किसी ज़िद करनेवाले भोले-भाले बालक को झुनझुना पकड़ाकर प्रसन्न कर लेते हैं, वैसे ही काल उसे फोकट कर्मों की अंधी गलियों की ओर धकेल देता है, जहाँ जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाते हुए वह समझता है कि मंज़िल की ओर बढ़ रहा है, जब कि वास्तव में उसके सही ठिकाने पर पहुँचने की कोई संभावना नहीं होती। उन गलियों में एक बहुत भीड़भरी गली पाठ और जाप की गली है। किसी धर्म पुस्तक का पाठ हर रोज़ कुछ पृष्ठ पढ़कर किया जा सकता है या उसके ख़त्म होने तक उसे लगातार पढ़कर। कई बार माला की टेक से या वैसे ही कुछ शब्द मंत्र के रूप में दोहराकर ऐसा किया जाता है। यह पाठ मुँह से बोलकर या फिर मन ही मन किया जा सकता है। कभी-कभी इसे ऊँची आवाज़ में भी करते हैं ताकि दूसरे लोग भी इसे सुन सकें। इसे सुनाने का उद्देश्य श्रोताओं का भला करना है या अपना सम्मान बढ़ाना भी हो सकता है।

लोगों को धर्मपुस्तकों के पाठ से लाभ उठाने की इच्छा तो होती है, लेकिन अपने काम-धंधे से फ़ुरसत निकालना बहुत मुश्किल होता है। इसलिए वे धर्मपुस्तकों के पाठ करनेवाले लोगों से पूजा-पाठ आदि का धार्मिक आयोजन संपन्न करा लेते हैं और इसके बदले में समुचित दान-दक्षिणा देकर समझ लेते हैं कि हमने पुण्य कमा लिया, धर्म लाभ उठा लिया। विचारणीय बात यह है कि जिसने धर्मपुस्तकों के वचन नहीं सुने, उन्हें परमार्थ के मार्ग की समझ कैसे आ सकती है? यदि उनके उपदेश को समझा ही नहीं तो उस पर अमल कैसे किया जा सकता है? मनुष्य जन्म के असली उद्देश्य से बेख़बर लोगों का यह जन्म सफल कैसे हो सकता है? उदाहरण के लिए कोई व्यक्ति कहीं जाने की इच्छा तो रखता है और किसी जानकार से वहाँ का रास्ता पूछता है, लेकिन उस पर क़दम नहीं रखता। वह बार-बार रास्ता पूछता रहे, परंतु उस पर चलने की कोशिश तक न करे, इस तरह की पूछताछ से मंज़िल तो नहीं मिल सकती।

हालाँकि इन पवित्र ग्रंथों में मानव जीवन के उद्देश्य को सफल बनाने का संदेश निहित होता है, लेकिन इन ग्रंथों के केवल पाठ करने या कराने तक सीमित रहनेवाले लोग चाहे महीनों, सालों या फिर उम्र भर भी पाठ करते-कराते रहें, तो भी वे मनुष्य जन्म के असली उद्देश्य को पाने में सफल नहीं हो सकते। ऐसे लोगों के लिए गुरु अर्जुन देव लिखते हैं:

मुख ते पड़ता टीका सहित॥ हिरदै राम नही पूरन रहत॥
उपदेस करे कर लोक द्रिड़ावै॥ अपना कहिआ आप न कमावै॥[1]

आपने मंत्रों का अर्थ टीका की सहायता से समझ लिया, फिर उपदेश द्वारा उनका संदेश दूसरों को समझाना शुरू कर दिया। परंतु उनकी शिक्षा पर अमल करके अपने आचरण में कोई सुधार या बदलाव न किया और न ही परमात्मा की प्रीति, उसकी याद अपने हृदय में बसाने की कोशिश की। गुरु साहिब फ़रमाते हैं:

खट करमा अर आसण धोती॥ भागठ ग्रिह पड़ै नित पोथी॥
माला फेरै मंगै बिभूत॥ इह बिधि कोए न तरिओ मीत॥[2]

अगर कोई अपने वर्ण के लोगों के लिए निर्धारित किए गए कर्मों को नियमानुसार करता जाए, आसन, धौति जैसी यौगिक क्रियाएँ करते हुए अपने शरीर की बाहरी और भीतरी सफ़ाई करे तथा अपने स्वास्थ्य का भी पूरा ध्यान रखे, तो क्या वह भवसागर को पार कर सकेगा? कभी नहीं। धन कमाने के लिए दूसरों के घर जाकर किसी धर्मग्रंथ का पाठ करने या माला फेरने से तो कोई पुण्य भी नहीं प्राप्त होता, मुक्ति तो बहुत दूर की बात है। फिर कहते हैं:

सो पंडित गुर सबद कमाए॥ त्रै गुण की ओस उतरी माए॥[3]

भले ही कोई वेदों और शास्त्रों का विद्वान हो, पर करनी में कोरा हो तो वह सही अर्थ में पंडित नहीं कहला सकता। सच्चा पंडित वह है जिसने गुरु से दीक्षा प्राप्त करके, शब्द का अभ्यास किया हो और अपने मन और आत्मा से त्रिगुणात्मक माया की मैल धोकर निर्मल हो गया हो। गुरु साहिब का कहना है:

चतुर बेद पूरन हर नाए॥ नानक तिस की सरणी पाए॥[4]

भाव यह कि साधक के लिए हरि का नाम ही चार वेदों के तुल्य है।

सभी शास्त्र और धर्मग्रंथ पुण्य और पाप की चर्चा करते हैं। वे यह तो बताते हैं कि क्या करना पुण्य और क्या करना पाप है, लेकिन प्रभु से मिलाप की विधि, जो कि परमार्थ का मूल तथा सबसे महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है, इन धर्मग्रंथों को पढ़कर प्राप्त नहीं की जा सकती। रज, तम और सत्त्व, तीनों गुणों से प्रेरित कर्मों में व्यस्त इनसान अपनी आयु का सारा समय भ्रमों के अँधेरे में ठोकरें खाता व्यतीत कर देता है। कोई अच्छे कर्म किए, तो सुख भोगने के लिए संसार में आ गया और बुरे किए, तो भी

यहीं आकर सज़ा भोगनी पड़ी। धर्मग्रंथ काल के जाल से छुड़ाने में कोई सहायता नहीं कर सकते:

सिम्रिति सासत्र पुंन पाप बीचारदे ततै सार न जाणी॥
ततै सार न जाणी गुरू बाझहो ततै सार न जाणी॥
तिही गुणी संसार भ्रम सुता सुतिआ रैण विहाणी॥[5]

किसी को स्वयं शास्त्र आदि पढ़ने या पंडितों से उन्हें समझने से क्या लाभ होगा? देवी-देवता भी खोज करते-करते हार गए, लेकिन प्रभु की प्राप्ति की दिशा में उन्हें कुछ सफलता नहीं मिली:

बेद पड़े पड़ ब्रहमे हारे इक तिल नही कीमत पाई॥[6]

केवल वेद ही नहीं, बल्कि स्मृतियाँ, शास्त्र या अन्य धर्मों की महान पुस्तकें भी पढ़ ली जाएँ, लेकिन उन पर अमल न करें तो केवल पढ़ने से मुक्ति प्राप्त नहीं होती। सच्चे मालिक के दरबार में वही जिज्ञासु शोभा पाता है जो सतगुरु के मार्गदर्शन में नाम की साधना करता है:

बेद कतेब सिम्रिति सभ सासत इन्ह पड़िआ मुकति न होई॥
एक अखर जो गुरमुख जापै तिस की निरमल सोई॥[7]

विशेषज्ञ डॉक्टर बीमारी दूर करने के लिए नुसख़ा लिखकर देते हैं, वे कैपसूल, गोलियाँ या इंजैक्शन नहीं बेचते। शास्त्र आदि भी प्राचीन काल में बताए गए नुसख़ों से अधिक कुछ नहीं हैं। उन्हें केवल पढ़ लेने से ही आवागमन के रोग का उपचार नहीं हो जाता:

सासत बेद सिम्रिति सभ सोधे सभ एका बात पुकारी॥
बिन गुर मुकति न कोऊ पावै मन वेखहो कर बीचारी॥[8]

तीर्थ

लगभग हर तीर्थस्थान किसी न किसी महापुरुष के नाम से जुड़ा हुआ है। वे महापुरुष अपनी बस्ती के कोलाहल, घर-परिवार के मोह और हर प्रकार के सांसारिक झंझट-झमेलों को त्यागकर प्रभु से लिव जोड़ने के लिए किसी निर्जन स्थान पर जा विराजते थे। किसी जंगल के एकांत में, किसी नदी के सुनसान किनारे पर या किसी पहाड़ की अँधेरी गुफा में अपना डेरा बना लेते थे। उनकी एकाग्रचित्त साधना को सफल हुई देखकर भोले जिज्ञासु सोच लेते थे कि परमपिता परमात्मा के निकट जाने के लिए इन महापुरुषों का चुना स्थान ही सर्वोत्तम जगह है, फिर वे भेड़चाल की तरह अंधाधुंध उसी ओर चल देते थे। आज स्थिति ऐसी है कि नदी के जिस घाट पर वे प्रभु के भक्त पानी पीकर प्यास बुझाते थे, वहाँ उनकी कुटिया तो नहीं रही लेकिन उसके आसपास बड़े-बड़े शहर बस गए हैं। आज इन निर्मल घाटों पर लाखों जीवों का मल-मूत्र और कारख़ानों का उगला घातक ज़हर बहता है। जिस जगह पर ध्यान एकाग्र करके अपने हृदय में आंतरिक अभ्यास का रस लिया जा सकता था, वहाँ अब हज़ारों ट्रकों, बसों, कारों, स्कूटरों की गड़गड़ाहट में एक दूसरे की बात तक सुनाई नहीं देती। उदाहरण के तौर पर सम्मानित काशी आज देश के सबसे अधिक दूषित शहरों में से एक है। आम लोगों का भ्रम है कि अगर काशी में मृत्यु हो तो मुक्ति मिल जाती है। इस भ्रम को तोड़ने के लिए कबीर साहिब ने काशी छोड़कर एक मनहूस मानी जानेवाली बस्ती, मगहर में निवास किया, तो भी काशी की भीड़ पर कोई असर नहीं पड़ा। जिन महान हस्तियों के चरण पड़ने के कारण साधारण स्थान भी यात्रास्थल अथवा पवित्र स्थल बन गए, वहाँ भी कुछ विशेष नहीं है।

हम अपने हाथों से एक तालाब खोदते हैं, उसके चारों ओर ईंटों की सीढ़ियाँ बनाते हैं और उसको ऐसी नदी से निकली नहर के पानी से भर लेते हैं, जिसे पवित्र कहने का कोई प्रमाण या आधार नहीं मिलता, लेकिन फिर भी उसमें डुबकी लगाकर विश्वास कर लेते हैं कि हमारे पाप धुल गए। आज भी बहुत-से ऐसे लोग मिल जाते हैं जो अपने गाँव

के उस पोखर में जिसमें उनकी गाय-भैंसें नहाती और मल-मूत्र त्यागती हैं, कार्तिक के महीने में सुबह उठकर डुबकी लगाकर यह सोचकर ख़ुश हो जाते हैं कि उन्होंने पुण्य कमा लिया है:

पाप करह पंचां के बस रे॥ तीरथ नाए कहहे सभ उतरे॥[9]

काम, क्रोध आदि विकार जीव के नाक में नकेल डालकर रखते हैं और जिधर चाहें उधर घुमा देते हैं। जब उन्हें लगता है कि ग़लत रास्ते पर चलकर उनसे पाप हो गए हैं, तो वे तीर्थस्नान करने चल देते हैं। जितने ज़्यादा पाप हों, वे उतने ज़्यादा स्थानों पर स्नान करने जाते हैं और अपने पापों की ओर से चिंतामुक्त हो जाते हैं। गुरु साहिब का कथन है:

तीरथ नाए कहा सुच सैल॥ मन कउ विआपै हउमै मैल॥[10]

हौंमैं की मैल हमारे अंतर में है, हम पानी से उसे बाहर-बाहर से धोते हैं। गुरु साहिब स्पष्ट करते हैं कि बुरे कर्मों से विकृत हुआ मन इधर-उधर स्नान करने से साफ़ नहीं हो सकता। तीर्थों पर नहाकर पवित्र हो जाने की भ्रमपूर्ण ख़ुशी से हम और अधिक हौंमैं की दलदल में धँस जाते हैं। गुरु साहिब फ़रमाते हैं:

तीरथ नाए न उतरस मैल॥ करम धरम सभ हउमै फैल॥[11]

माया हमारी सबसे बड़ी शत्रु है और धर्म-कर्म उसका फैलाया हुआ बहुत पेचीदा जाल है। जब तीर्थयात्रा करके हम अपनी शुद्धि की दृष्टि से संतुष्ट हो जाते हैं, तो माया की चाल शत-प्रतिशत सफल हो जाती है, क्योंकि झूठी तसल्ली हासिल करने के बाद हमें वास्तव में कोई और कारगर प्रयत्न करने की बात सूझती ही नहीं। हमारी हौंमैं और बढ़ जाती है। गुरु साहिब का कथन है:

तीरथ नाए अर धरनी भ्रमता आगै ठउर न पावै॥
ऊहा काम न आवै इह बिधि ओह लोगन ही पतीआवै॥[12]

भाव यह है कि कई धर्मस्थल स्नान करने के लिए होते हैं, कई माथा टेकने तथा तिल और फूल भेंट चढ़ाने के लिए। उनकी यात्रा करते हुए चाहे सारी धरती घूम आएँ, इससे प्रभु के घर में ठिकाना नहीं मिलता। यात्रा पर हुए ख़र्च और परिश्रम से लोगों की वाह-वाह तो मिल सकती है, पर वह सिरजनहार प्रसन्न नहीं होता। गुरु साहिब के वचन हैं:

कोट तीरथ मजन इसनाना इस कल मह मैल भरीजै॥
साधसंग जो हर गुण गावै सो निरमल कर लीजै॥[13]

इस कलियुग में हम पवित्र माने जानेवाले स्थानों पर अगर करोड़ों बार भी स्नान कर लें, फिर भी मलिन ही रहेंगे। केवल वही निर्मल होगा, जो संतों की संगति में नाम-सिमरन का अभ्यास करेगा। एक अन्य स्थान पर गुरु साहिब फ़रमाते हैं:

तीरथ वरत लख संजमा पाईऐ साधू धूर॥[14]

तीर्थ, व्रत और लाखों प्रकार के संयमों का फल साधु की चरण-धूलि लेने से प्राप्त हो जाता है। आप कहते हैं:

नानक धूड़ पुनीत साध लख कोट पिरागे॥[15]

यह धूलि प्रयाग जैसे लाखों-करोड़ों तीर्थों से भी पवित्र है। अगर तथाकथित तीर्थों पर नहाने से मैल ही इकट्ठी होती है, तो मन की शुद्धि का इच्छुक और कहाँ जाए? गुरु अर्जुन देव इसका समाधान करते हुए उत्तर में कहते हैं:

नितप्रति नावण राम सर कीजै॥ झोल महा रस हर अंम्रित पीजै॥
निरमल उदक गोविंद का नाम॥ मजन करत पूरन सभ काम॥[16]

मन को स्थिर करके नाम के सरोवर में स्नान करो और उस हरि रस का पान करो जो अमृत है, सर्वोत्तम है। प्रभु के नाम जैसा निर्मल और कौन-सा जल होगा? इस जल की पवित्रता किसी विशेष तिथि या पर्व

पर निर्भर नहीं होती। यह सदा पवित्र है और इसमें स्नान करने से सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं।

गुरु सच्चा तीर्थ

गुरु साहिब यह भी बताते हैं:

गुर तीरथ गुर पारजात गुर मनसा पूरणहार॥
गुर दाता हर नाम देइ उधरै सभ संसार॥[17]

गुरु सच्चा तीर्थ है और मन की सभी कामनाएँ पूरी करनेवाला पारिजात वृक्ष भी है। वह चाहे तो नाम का दान बख़्शकर अपने द्वार पर आए संसार के सब लोगों का उद्धार कर दे। फिर उसके होते तीर्थों पर भटकने की क्या ज़रूरत रह जाती है?

'तीर्थों पर नहाने का कोई लाभ नहीं, ये स्नान घाटे का सौदा हैं।' यह कथन बाक़ी सभी कर्मकांड पर भी लागू होता है। वास्तव में अंधविश्वासी लोगों का कहा मानकर मन में भ्रम पैदा हो जाता है कि तीर्थ पर नहाने से अब तक किए सभी पाप ख़त्म हो गए हैं। ऐसा मान लेने पर भविष्य में भी बुरे कर्म और पाप करने के लिए प्रोत्साहन मिल जाता है। क्योंकि हम अपने मन में सोच लेते हैं कि तीर्थ को तो वहीं रहना है और वहाँ दोबारा डुबकी लगाने से अपने आप को फिर निर्मल कर लेंगे:

पाप करह पंचां के बस रे॥ तीरथ नाए कहहे सभ उतरे॥
बहुर कमावह होए निसंक॥ जम पुर बांध खरे कालंक॥[18]

परिणाम यह होता है कि पाप ख़त्म होने के बजाय और अधिक बढ़ते चले जाते हैं और उसी हिसाब से धर्मराज से मिलनेवाली सज़ा और भी सख़्त, बल्कि असहनीय होती जाती है।

तीर्थों के बारे में गुरु साहिब अपना निजी अनुभव निम्नलिखित पद में वर्णन करते हैं:

तीरथ जाउ त हउ हउ करते॥ पंडित पूछउ त माइआ राते॥[19]

तीर्थों पर जाकर जिन लोगों के संपर्क में आए, वे अहंकार से ग्रस्त दिखाई दिए। अगर पंडितों या पुजारियों के संपर्क में आए तो उन पर माया का गहरा रंग चढ़ा नज़र आया। भाव यह कि इन तीर्थों की यात्रा से कोई लाभ नहीं हुआ।

मूर्तिपूजा

गुरु अर्जुन देव के अनुसार प्रभु के धाम में स्वीकार होने की इच्छा हो तो मूर्तिपूजा एक असफल कर्म है। हम देखते हैं कि जिज्ञासु पत्थर की मूर्ति गले में लटकाए घूमता फिरता है, क्योंकि भ्रमों का शिकार वह नादान नहीं जानता कि उसका इष्ट मूर्ति में नहीं, उसके अपने हृदय में मौजूद है और पल-पल उसका इंतज़ार कर रहा है। मूर्ति की पूजा से कुछ भी हासिल नहीं होगा। जिस पत्थर को ठाकुर समझकर वह भवसागर पार करने की आस लगाए बैठा है, वह पत्थर ख़ुद तो डूबेगा ही, अपने भक्त को भी साथ ही डुबो लेगा। सिरजनहार प्रभु का बख़्शा मनुष्य जन्म व्यर्थ गँवाते जा रहे इस नादान को समझना चाहिए कि पत्थर को तराशकर बनाई गई नाव तैर नहीं सकती और उसी तरह उसका पत्थर का ठाकुर भी उसे भवसागर के पार उतारने में असमर्थ है:

घर मह ठाकुर नदर न आवै॥ गल मह पाहण लै लटकावै॥
भरमे भूला साकत फिरता॥ नीर बिरोलै खप खप मरता॥
जिस पाहण कउ ठाकुर कहता॥ ओह पाहण लै उस कउ डुबता॥
गुनहगार लूण हरामी॥ पाहण नाव न पारगिरामी॥[20]

इसी विचार को और स्पष्ट करते हुए गुरु अर्जुन देव फ़रमाते हैं:

पूजा अरचा बंदन डंडउत खट करमा रत रहता॥
हउ हउ करत बंधन मह परिआ नह मिलीऐ इह जुगता॥[21]

थोड़ा विचार करें तो यह सच्चाई समझ में आ जाती है कि दो-चार मिनट घंटी बजाकर अपने इष्ट को प्रसन्न करने की कोशिश करना, अपने अंदर दिन-रात हो रहे अनहद शब्द के मधुर कीर्तन का स्वाँग रचना है। पूजा के लिए काम में ली जानेवाली चंदन की लकड़ी और अन्य वस्तुओं में सुगंधि अवश्य होती है, पर निर्जीव मूर्ति तो सुगंध का रस भी प्राप्त नहीं कर सकती। हम चाहे खड़े होकर हाथ जोड़ें या घुटनों के बल बैठें, या फिर लाठी की तरह लेट जाएँ, यह मूर्ति को कैसे दिखाई देगा? इस तरह की रस्म पूरी करके हमें ख़ुद यह संतोष ज़रूर हो जाता है कि हमने अपना नित्य का धर्म-कर्म करके काफ़ी नेकी कमा ली, अब भविष्य की ओर से बेफ़िक्र होकर अपने कारोबार में मनचाही हेराफेरी कर सकते हैं। ऐसी साधना के पीछे हर व्यक्ति का कोई न कोई स्वार्थ होता है। अगर प्रभुप्राप्ति का उद्देश्य हो तो उसके लिए यह उपाय कारगर नहीं हो सकता। वह ताला किसी और कुंजी से खुलता है।

जोग

जोगी अपनी पारिवारिक ज़िम्मेदारियों से लापरवाह, कामकाज त्यागकर, कानों में बाले पहने, हाथ में खप्पर लिए, गले में थैली डाल भिक्षा माँगने चल देते हैं। इस प्रकार के जीवन से उन्हें संतुष्टि नहीं मिलती, न पेट तृप्त होता है, न आत्मा।

कान फराए हिराए टूका॥ घर घर मांगै त्रिपतावन ते चूका॥[22]

ब्रह्मचर्य

अपनी पत्नी को घर अकेली छोड़ आए और पराई बेटियों और बहनों की ओर बुरी नज़रों से देखने लग गए। ऐसे ब्रह्मचर्य में तो काम की फाँसी पहले की तरह गले में पड़ी रहती है। वासना के प्रहार से भागने से बचाव नहीं होता, बल्कि वह और भड़क उठती है, जीना मुश्किल हो

जाता है। अगर वासनाएँ और तृष्णाएँ शांत नहीं होतीं तो उस व्यक्ति के लिए संन्यासी या ब्रह्मचारी का भेष धारण करना क्या मायने रखता है?

बनिता छोड बद नदर पर नारी॥ वेस न पाईऐ महा दुखिआरी॥[23]

मौन

अगर कोई मौनव्रत धारण कर लेता है तो वह किसी पर कोई उपकार नहीं करता, बल्कि अपने संपर्क में आनेवालों के लिए एक अनावश्यक समस्या खड़ी कर देता है। कुछ पूछे और बताए बिना गुज़ारा नहीं। अगर वह लिखकर काम चलाना चाहे, तो बहुत-से लोग उसका लिखा पढ़ और समझ नहीं सकेंगे और अगर इशारों से काम लें तो वे भी आसानी से समझ में नहीं आते। प्रभु ने मनुष्य को अपने विचार प्रकट करने के लिए एक कुशल यंत्र बख़्शा है, पर वह आभार प्रकट करने के बजाय इसका प्रयोग ही नहीं करना चाहता! ऐसा कर्म उसे किसी अच्छे फल का अधिकारी नहीं बना सकता। इसके अतिरिक्त ज़बान बंद रखने से मन में उठते संकल्पों-विकल्पों के उत्पात में कोई कमी नहीं आती। जब तक वे मौजूद रहेंगे, शांति प्राप्त नहीं हो सकती। चाहे कोई कितना ही समय मौनव्रत धारण कर ले, उसका जन्म-मरण निरंतर जारी रहता है:

बोलै नाही होए बैठा मोनी॥ अंतर कलप भवाईऐ जोनी॥[24]

व्रत

इसी प्रकार भूखे रहकर परमात्मा की बख़्शी देह को कष्ट पहुँचाने से भी प्रभु की प्रसन्नता नहीं प्राप्त की जा सकती, यह मनमुखता है:

अंन ते रहता दुख देही सहता॥ हुकम न बूझै विआपिआ ममता॥[25]

दान

जो कर्म केवल धर्मग्रंथों में बताए रीति-रिवाज पूरे करने के लिए, केवल दिखावे के लिए किए जाते हैं, उनका कोई विशेष लाभ नहीं होता। ऐसे कर्मों में कोई रीति निभाने के लिए किया गया दान भी हो सकता है। उदाहरण के लिए घर में कोई रोगी व्यक्ति अपनी ज़िंदगी के आख़िरी साँस ले रहा है, वह पीड़ा से तड़प रहा है। उसके प्राण छूट नहीं पा रहे हैं। ऐसे में कुछ हमदर्द लोग सामाजिक परंपरा को ध्यान में रखते हुए सलाह देते हैं कि इसकी तरफ़ से गोदान करा दो। लेकिन परिवार के लोग घर की हालत देखते हुए गोदान कराने के हक़ में नहीं हैं। इन हालात में लोग गली में जा रही किसी भी बछिया को पकड़कर ले आते हैं। पुरोहित मंत्र आदि पढ़कर गोदान की रस्म पूरी कर देते हैं, सब संतुष्ट हो जाते हैं।

केवल रस्म पूरी करने या दिखावे के लिए किए जानेवाले धर्म-कर्म से कोई लाभ नहीं होता। इस प्रकार के शुभ कहे जानेवाले कर्मों के बदले में क्या उम्मीद की जा सकती है? इन कर्मों का क्या पुण्यफल मिलेगा? धर्मराज के दूत भी उससे क्या हमदर्दी प्रकट करेंगे? इसी लिए गुरु साहिब ने कहा है:

करम धरम पाखंड जो दीसह तिन जम जागाती लूटै॥[26]

अगर काल की क़ैद से छूटना हमारा उद्देश्य है तो कामना रहित होकर अनहद शब्द का अभ्यास करना ज़रूरी है। जब यह अभ्यास सच्चे दिल से एकाग्रतापूर्वक किया जाता है तो मुक्ति की कामना अवश्य पूरी हो जाती है:

निरबाण कीरतन गावहो करते का निमख सिमरत जित छूटै॥[27]

अगर दया से प्रेरित होकर कोई दान दिया जाता है तो हम उसकी निंदा नहीं कर सकते। दया धर्म का मूल मानी जाती है। दया भाव से दिया गया दान धन के मोह को कम करता है, इससे संतोष उत्पन्न होगा। लेकिन अधिकतर लोग दान देते समय किसी न किसी फल की कामना

अवश्य करते हैं, आख़िर वह दान एक पूँजी-निवेश बनकर रह जाता है। दान फलता है—यह आम विश्वास है। मनचाहा फल कोई भी हो सकता है, जैसे धन में वृद्धि, संतान की प्राप्ति या रोग से छुटकारा; नहीं तो लोगों की वाहवाही और उससे प्राप्त कई प्रकार के लाभ, किसी पद के लिए वोट, कारोबार का फैलाव आदि। कोई फल न भी माँगा जाए तो भी अहंकार पैदा हो जाता है और अहंकार आ गया, तो मानों हाथी ने नहाकर फिर धूल से सिर भर लिया। गुरु साहिब फ़रमाते हैं:

कनिक कामिनी हैवर गैवर बहु बिधि दान दातारा॥
अंन बसत्र भूमि बहु अरपे नह मिलीऐ हर दुआरा॥[28]

परोपकार के लिए तुम लोगों को भोजन खिला दो, ग़रीबों में वस्त्र बाँट दो, बहुमूल्य सवारियाँ, आभूषण, ज़मीनें बख़्श दो, धर्मशाला, स्कूल, अस्पताल बनवाओ, लेकिन ये सब परमात्मा की ओर नहीं ले जाते। बड़ी से बड़ी क़ुरबानी देकर किया गया दान भी परमात्मा तक पहुँचाने में सफल नहीं होता। प्रभु से मिलाप के लिए यह युक्ति सार्थक नहीं है।

कहते हैं—'हाथी के पाँव में सबका पाँव।' हरिकीर्तन अर्थात् अनहत शब्द की साधना में धर्म-कर्म, दान-पुण्य, पूजा-पाठ सभी आ जाते हैं:

पुंन दान पूजा परमेसुर हर कीरत तत बीचारे॥[29]

'सुखमनी साहिब' की नौवीं पौड़ी में गुरु साहिब स्पष्ट करते हैं कि सारे प्रचलित कर्मकांड मिलकर भी रामनाम की बराबरी नहीं कर सकते:

अनिक प्रकार कीए बहु जतना॥ पुंन दान होमे बहु रतना॥
सरीर कटाए होमै कर राती॥ वरत नेम करै बहु भाती॥
नही तुल राम नाम बीचार॥ नानक गुरमुख नाम जपीऐ इक बार॥[30]

अन्य सब धर्म-कर्म करने के अलावा अगर कोई रत्नों जैसे बहुमूल्य पदार्थ भी दान में दे दे, अपना शरीर तिल-तिल काटकर उसकी आहुति दे दे, फिर भी गुरु द्वारा दिए गए नाम के जाप की बराबरी नहीं हो सकती।

नाम के सिमरन से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, जन्म-मरण ख़त्म हो जाता है। नाम सिमरन के सामने दान-पुण्य जैसी क्रियाओं का महत्त्व इतना कम है कि इनका फल प्राप्त करने के लिए वापस इस संसार में आना ही पड़ेगा:

पुंन दान न तुल किरिआ हर सरब पापा हंत जीउ॥
बिनवंत नानक सिमर जीवा जनम मरण रहंत जीउ॥[31]

सार

कर्मकांड के संबंध में गुरु साहिब का एक और शब्द उल्लेखनीय है:

हर बिन अवर क्रिआ बिरथे॥
जप तप संजम करम कमाणे इह औरै मूसे॥
बरत नेम संजम मह रहता तिन का आढ न पाइआ॥
आगै चलण अउर है भाई ऊंहा काम न आइआ॥
तीरथ नाए अर धरनी भ्रमता आगै ठउर न पावै॥
ऊहा काम न आवै इह बिधि ओह लोगन ही पतीआवै॥
चतुर बेद मुख बचनी उचरै आगै महल न पाईऐ॥
बूझै नाही एक सुधाखर ओह सगली झाख झखाईऐ॥[32]

हरिनाम के सिमरन के अलावा परंपरा से चला आ रहा जो भी धर्म-कर्म किया जाए, व्यर्थ साबित होता है। किसी मंत्र का जाप, कोई तप, अपने आप को वासनाओं से दूर करने के कठोर अभ्यास, ये सब ऐसे साधन हैं जिनसे प्रभु की दरगाह तक पहुँचना संभव नहीं है। उसी प्रकार व्रतों, नियमों जैसे कष्ट झेलने का भी कोई महत्त्व नहीं है। सतलोक का क़ानून संसार से बिलकुल अलग है। यहाँ के लोकप्रिय फोकट कर्मों का सिक्का वहाँ नहीं चलता। जो लोग अपने उद्धार के लिए तीर्थों में स्नान करते हैं या पवित्र स्थानों की यात्राओं पर निर्भर रहते हैं, वे नासमझ लोगों पर अपनी प्रतिष्ठा की धाक जमाने में चाहे सफल हो जाएँ,

पर जिस ठिकाने पर पहुँचना उनका उद्देश्य है, वहाँ उन्हें कोई नहीं पूछता। अब रही विद्वत्ता की बात। इसके बारे में भी यही कहना है कि जिसने सच्चे नाम की खोज की ओर ध्यान नहीं दिया, परंतु चारों वेदों को ज़बानी सुना देने की क्षमता प्राप्त कर ली, उसका भी सारा परिश्रम व्यर्थ जाएगा; उसे भी मालिक के दरबार में प्रवेश करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं होगा।

कर्मकांड के विषय में चर्चा की समाप्ति के लिए गुरु साहिब का कानड़ा राग में बद्ध निम्नलिखित छोटा-सा शब्द उपयुक्त है। आप फ़रमाते हैं:

प्रभ कहन मलन दहन लहन गुर मिले आन नही उपाउ॥
तटन खटन जटन होमन नाही डंडधार सुआउ॥
जतन भांतन तपन भ्रमन अनिक कथन कथते नही थाह पाई ठाउ॥
सोध सगर सोधना सुख नानका भज नाउ॥[33]

हमारे पापों की मैल प्रभु के नाम के सिमरन द्वारा ही उतरती और नष्ट होती है और जीव को नाम केवल गुरु द्वारा बख़्शा जाता है। पापों के नाश के लिए और कोई उपाय सफल नहीं होता। नदियों, समुद्रों के पवित्र घाटों पर स्नान करना, शास्त्रों द्वारा सुझाए गए छः कर्मों में जुटे रहना, जटाएँ धारण करना, यज्ञ-हवन करना, डंडाधारी योगी बनना आदि भी प्रभुप्राप्ति के मनोरथ को सफल नहीं कर सकते। अनेक प्रकार के तप करना, तीर्थों पर भ्रमण, प्रभु संबंधी वार्तालाप या चर्चा करने से प्रभुधाम का ज्ञान नहीं होता और न ही उसकी दरगाह में पहुँचा जा सकता है। गुरु साहिब कहते हैं कि हमने सारे साधन खोज और आज़माकर देख लिए, प्रभु से मिलाप का सुख केवल नाम सिमरन से ही प्राप्त होता है।

जल मह कमल

ब्रह्म गिआनी सदा निरलेप॥ जैसे जल मह कमल अलेप॥
गुरु अर्जुन देव

संतुलित जीवन

स्वास्थ्य की दृष्टि से इलाज का अधिक महत्त्व है या परहेज़ का? इस प्रश्न का उत्तर सोच-विचार कर ही दिया जा सकता है। शरीर को कोई रोग लग जाए तो औषधियों के सेवन और कई बार ऑपरेशन के बिना उससे छुटकारा नहीं होता। पर अगर अपना वायुमंडल दूषित न होने दिया जाए, उचित प्रकार का पौष्टिक आहार लिया जाए, नशीले व अन्य हानिकारक पदार्थों का सेवन न किया जाए, उचित गतिविधियों और व्यायाम से शरीर को चुस्त और फुर्तीला रखा जाए और व्यर्थ की मानसिक उलझनों से दूर रहा जाए, तो आम तौर पर रोग नहीं लगते। अगर लग जाएँ तो केवल दवाइयों से लाभ नहीं होता। वह सावधानी, वे प्रतिबंध और परहेज़ भी अपनाने पड़ते हैं जिनसे स्वास्थ्य में सुधार की गति बनी रहे और वह निरोगी हो जाए। अगर कोई मधुमेह का रोगी दिन में कई बार इंसुलिन का इंजैक्शन तो लगवाए, पर अंधाधुंध मिठाइयाँ भी खाता रहे, तो वह रोग से छुटकारा नहीं पा सकता। कहने का भाव यह है कि अगर जन्म-मरण की विपदा से छुटकारा पाकर प्रभु से मिलने का लक्ष्य रखा गया हो, तो प्रभु के नाम की कमाई करने के साथ-साथ जीवन के मार्ग में बिखरे काँटों, गड्ढों, खाइयों आदि से भी बचकर चलना होगा।

जेल की दीवारों पर चारों ओर पहरेदार राइफ़लें लिए तैनात रहते हैं। काल ने भी अपने क़ैदियों को बाँधे रखने के लिए पाँच सावधान चौकीदार नियुक्त किए हुए हैं। हर एक ने पूरी ज़िम्मेदारी ले रखी है कि अगर कोई एक चौकीदार को चकमा देकर निकल जाए, तो वह दूसरे के शिकंजे में फँस जाएगा, दूसरे की नज़र भी न पड़े तो तीसरे की नज़र में अवश्य आ जाएगा।

हौंमैं

हौंमैं या अहंकार हमें इस भ्रम में रखता है कि हम अपने स्रोत प्रभु परमेश्वर से अलग हैं। हमारी अपनी अलग पहचान और व्यक्तित्व है। इस भ्रम के कारण, चाहे आत्मा और परमात्मा के बीच हौंमैं का परदा तितली के पंख जैसा पतला है, परंतु दूरी उत्पन्न करने में वह क़िले की वज्र से भी कठोर दीवार से कम नहीं है। गुरु अर्जुन देव का वचन है:

हउ हउ भीत भइओ है बीचो सुनत देस निकटाइओ॥
भांभीरी के पात परदो बिन पेखे दूराइओ॥[1]

अहंकार से कौन बचा हुआ है? गुरु साहिब अपने चारों ओर दृष्टि डालते हैं, तो उन्हें करोड़ों लोग अलग-अलग कारणों से अहंकार में डूबे नज़र आते हैं। इस विषय में हमें सावधान करने के लिए आप फ़रमाते हैं कि जिस किसी में सत्ता या प्रताप की अकड़ है, उसे नरकों में जलना पड़ता है; जो कोई अपनी शारीरिक सुंदरता का अहंकार करता है, वह अंत में गंदगी का कीड़ा बनता है। जो अपने किए शुभ कर्मों के गर्व से फूला फिरता है, उसे उन कर्मों का फल भोगने के लिए बार-बार जन्म-मरण के चक्कर में आना पड़ता है। अपने आप को बहुत-से धन और संपत्ति का मालिक होने का गर्व करनेवाला व्यक्ति मूर्ख, अंधा और अज्ञानी है:

जिस कै अंतर राज अभिमान॥ सो नरकपाती होवत सुआन॥
जो जानै मै जोबनवंत॥ सो होवत बिसटा का जंत॥

आपस कउ करमवंत कहावै॥ जनम मरै बहु जोनि भ्रमावै॥
धन भूमि का जो करै गुमान॥ सो मूरख अंधा अगिआन॥
कर किरपा जिस कै हिरदै गरीबी बसावै॥
नानक ईहा मुकत आगै सुख पावै॥[2]

एक और स्थान पर आप कहते हैं कि धनवान होने का अभिमान करना उचित नहीं, क्योंकि मरते समय तो तिनका भी साथ नहीं जा सकता। जिसे संबंधियों, साथियों का गुमान हो, वे चाहे गिनती में पूरी सेना की तरह हों, वक़्त आने पर उस व्यक्ति का साथ कोई नहीं दे सकता। जो इस भ्रम का शिकार है कि उसकी ताक़त का कोई मुक़ाबला नहीं कर सकता, उसे भी जलकर राख होने में कुछ ही देर लगेगी। अगर कोई अपने आप को ही सब कुछ समझता हो, दूसरों को हीन दृष्टि से देखता हो, उसे भी धर्मराज के हाथों ख़्वार होना पड़ेगा। मालिक की दरगाह में सम्मान और सत्कार उसी को प्राप्त होता है जो गुरु की कृपा से अहंकार से मुक्त होकर नम्रता धारण कर ले:

धनवंता होए कर गरबावै॥ त्रिण समान कछु संग न जावै॥
बहु लसकर मानुख ऊपर करे आस॥ पल भीतर ता का होए बिनास॥
सभ ते आप जानै बलवंत॥ खिन मह होए जाए भसमंत॥
किसै न बदै आप अहंकारी॥ धरम राए तिस करे खुआरी॥
गुर प्रसाद जा का मिटै अभिमान॥ सो जन नानक दरगह परवान॥[3]

गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि अहं के प्रभाव के अधीन किए शुभ कर्मों का भी कुछ लाभ नहीं है, उनसे संबंधित सारा श्रम व्यर्थ जाता है:

कोट करम करै हउ धारे॥ स्रम पावै सगले बिरथारे॥[4]

सुखमय जीवन उसी भाग्यवान को प्राप्त होता है जो नम्रता के गुण से सुसज्जित है। अपने आपको बहुत बड़ा समझनेवाले को उसका अहंकार ही बरबाद कर देता है:

सुखी बसै मसकीनीआ आप निवार तले॥
बडे बडे अहंकारीआ नानक गरब गले॥[5]

अगर तराज़ू के एक पलड़े में पड़ी वस्तु को थोड़ा-थोड़ा कम करते जाएँ, तो दूसरा पलड़ा अपने आप झुकता चला जाता है। इसी प्रकार हम जैसे-जैसे अपने आप में नम्रता का गुण पैदा करेंगे, वैसे-वैसे अहं की पकड़ कमज़ोर होती जाएगी और हमारे मनोरथ की पूर्ति भी आसान होती चली जाएगी:

तउ किछ पाईऐ जउ होईऐ रेना॥[6]

और फिर, नम्रता अहंकार से तो बचाती ही है, क्रोध से भी बचाती है।

काम

विषयों के रस भोगने की लालसा का सामना हर व्यक्ति को करना पड़ता है और वह प्राय: बड़े-बड़े ज्ञानियों और दानियों पर भी विजय प्राप्त कर लेती है। अगर किसी को भोग-विलास के सभी साधन प्राप्त हों और वह उनका जी भरकर उपभोग भी कर ले, तब भी वह अपनी तृष्णा को पूर्णतया संतुष्ट कभी नहीं कर सकता। उसके सभी प्रयास वैसे ही व्यर्थ सिद्ध होते हैं जैसे सपने में हुई प्राप्तियाँ। तृप्ति केवल संतोष हो जाने पर होती है:

अनिक भोग बिखिआ के करै॥ नह त्रिपतावै खप खप मरै॥
बिना संतोख नही कोऊ राजै॥ सुपन मनोरथ ब्रिथे सभ काजै॥[7]

दुर्भाग्य से काम उत्तेजक नृत्य और संगीत हमें इतना आकर्षित करते हैं कि हमारा मन उन्हीं में खो जाता है। अपने आंतरिक कानों से अंतर में हो रहे हरिकीर्तन के प्रति हम जाग्रत होने की नहीं सोचते। हमारी दशा वैसे ही है जैसे कोई सही दृष्टिवाला व्यक्ति आँखों पर पट्टी बाँधकर रखे:

बिखै नाद करन सुण भीना॥ हर जस सुनत आलस मन कीना॥
द्रिसटि नाही रे पेखत अंधे॥ छोड जाहे झूठे सभ धंधे॥[8]

काम का ग़ुलाम अपनी वासना को शांत करने के लिए चाहे कितने ही पराए घरों में भटकता फिरे, उसकी तृप्ति नहीं होती। वह पाप करता है, अपने किए पर पछताता भी है और फिर उसी लालसा के अधीन वही दुष्कर्म दोहराने के लिए चल देता है:

कामवंत कामी बहु नारी पर ग्रिह जोह न चूकै॥
दिन प्रति करै करै पछुतापै सोग लोभ मह सूकै॥[9]

जिस प्रकार दूसरों का धन चोरी करने या उन्हें ठगनेवाले व्यक्ति को दोषी ठहराकर अपमानित किया जाता है, उसी प्रकार काम की कमज़ोरी भी परेशानी और अपमान का कारण बनती है, मनुष्य को कहीं मुँह दिखाने के योग्य नहीं छोड़ती:

पर त्रिअ रावण जाहे सेई ता लाजीअह॥
नित प्रति हिरह पर दरब छिद्र कत ढाकीअह॥[10]

काम और अन्य विकारों के ग़ुलाम बने जीव वही कर्म करते हैं जिनसे आवागमन के अँधेरे गड्ढे में और नीचे गिरते चले जाएँ:

काम क्रोध लोभ मोह बाधा॥ महा गरत मह निघरत जाता॥[11]

विषयों को भोगते हुए किसी ने आज तक अपने दिल से 'अब बस' नहीं कहा। जिस प्रकार आग में जैसे-जैसे ईंधन डालते जाएँ, वह और अधिक भड़क उठती है, उसी प्रकार इंद्रियों को अधिक से अधिक तृप्त करने के प्रयत्नों का परिणाम उन्हें और अधिक उत्तेजित करना ही होता है:

बिखिआ मह किन ही त्रिपत न पाई॥
जिउ पावक ईधन नही ध्रापै बिन हर कहा अघाई॥[12]

लोभ

लोभी पुरुष को भी मन की शांति प्राप्त नहीं होती। वह हज़ार कमा लेता है तो लाख के पीछे भागता है और लाख कमाने के बाद करोड़ के पीछे। उसकी भूख दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही चली जाती है:

सहस खटे लख कउ उठ धावै॥ त्रिपत न आवै माइआ पाछै पावै॥[13]

माया यानी धन-संपत्ति आवश्यक होते हुए भी तुच्छ वस्तु है। यह हमारे साथ सदा नहीं रहती; पर हम इसे स्थायी मानते हुए इसके छल और भ्रम में सब कुछ छोड़कर उसी को इकट्ठा करने में जीवन बिता देते हैं। इस में सफल होने के लिए छल-कपट, हेराफेरी करने से भी नहीं कतराते। ऐसा करना नाम के अमूल्य रत्न को त्यागकर संसार की कौड़ियों को बीनने के समान है:

कउडी बदलै तिआगै रतन॥ छोड जाए ताहू का जतन॥
सो संचै जो होछी बात॥ माइआ मोहिआ टेढउ जात॥[14]

किसी ओर से धन-संपत्ति प्राप्त होने की संभावना हो तो हम फूले नहीं समाते और हमारी ख़ुशी की कोई सीमा नहीं रहती। लेकिन जिन संतों के द्वार से सच्ची अविनाशी दौलत का मिलना निश्चित है, उनकी संगति का आनंद प्राप्त करना तो दूर, उनके दर्शन को भी नहीं जाते:

लोभ लहर कउ बिगस फूल बैठा॥ साध जना का दरस न डीठा॥[15]

अगर याद रखें कि किसी बढ़िया से बढ़िया मकान या महल को हम अपने साथ नहीं ले जा सकेंगे, न घोड़े-हाथी जैसी सवारी को और न किसी भी बहुमूल्य जायदाद को, तो इनके मोह में क्यों क़ैद रहें?

घोर महल सदा रंग राता॥ संग तुम्हारै कछू न जाता॥[16]

किसी फूस की छतवाली कच्ची झोंपड़ी में बैठकर कोई शब्द की साधना करता हो तो उस झोंपड़ी को भी सौभाग्यशाली समझना चाहिए।

उसकी तुलना में उस महल की कोई क़ीमत नहीं जिसमें ऐश करते हुए हमें एक पल भी मालिक की याद न आए:

भली सुहावी छापरी जा मह गुन गाए॥
कित ही काम न धउलहर जित हर बिसराए॥[17]

संतों की शरण में रहते हुए ध्यान प्रियतम में लगा रहे तो ग़रीबी की कठिनाइयाँ सहते हुए भी आनंद आता है और जिसके लिए हर समय माया की ग़ुलामी करनी पड़ी, ऐसे बड़प्पन को त्याग देना अच्छा है:

अनद गरीबी साधसंग जित प्रभ चित आए॥
जल जाउ एह बडपना माइआ लपटाए॥[18]

मोह

पति-पत्नी, बेटे-बेटियाँ, माँ-बाप और अन्य परिवार के सदस्यों से हमारा मोह होना तो स्वाभाविक है। लेकिन उनके हित की देखभाल को अपना फ़र्ज़ समझकर हम जितने भी कुकर्म करते हैं, उन सबका दंड केवल हमें भुगतना पड़ता है। लेखा देने की घड़ी में हमारे आँसू पोंछने के लिए वे हमारे पास नहीं होंगे। हमें उनके प्रति ज़िम्मेदारी तो निभानी है, पर इस अस्थायी रिश्ते में उनके झूठे मोह में कोई इतना क्यों उलझे और क्यों ऐसे गुनाह करे जिनसे दु:ख उठाना, अपमानित होना और पछताना पड़े? दूसरी ओर सतगुरु, हरि मिलन की आख़िरी मंज़िल तक शिष्य के साथ होते हैं। इसलिए उनके मार्गदर्शन में चलते हुए सच्चे परमात्मा की याद में मग्न रहना चाहिए:

ए मन पिआरिआ तू सदा सच समाले॥
एह कुटंब तू जे देखदा चलै नाही तेरै नाले॥
साथ तेरै चलै नाही तिस नाल किउ चित लाईऐ॥
ऐसा कंम मूले न कीचै जित अंत पछोताईऐ॥

सतगुरू का उपदेस सुण तू होवै तेरै नाले॥
कहै नानक मन पिआरे तू सदा सच समाले॥[19]

क्रोध

आत्मा के चार परम शत्रुओं का ज़िक्र ऊपर आ चुका है। इनका पाँचवाँ साथी क्रोध है।

निर्दयता, हिंसा, वैर और अन्याय, इसकी प्रकृति के विशेष अंग हैं। हर हत्या, हर बग़ावत, हर जंग इसी की कृपा से होती है, जिसमें अनेक निरपराधों का लहू बहता है।

संत-महात्माओं ने इन विकारों को चोर, डाकू, बैरी आदि कहा है, पर क्रोध को चांडाल कहना उपयुक्त होगा। गुरु रामदास जी कहते हैं: *ओना पास दुआस न भिटीऐ जिन अंतर क्रोध चंडाल॥*[20] भाव यह है कि जिन लोगों के अंदर क्रोध निवास करता है, उनसे बहुत दूर रहना चाहिए। गुरु अर्जुन देव फ़रमाते हैं कि अगर ख़ुशक़िस्मती से संतों की संगति मिल जाए तो क्रोध और उसके दुष्ट साथी अपने आप ही मुँह फेर लेते हैं: *पंच चोर आगै भगे जब साधसंगेत॥*[21]

स्तुति और निंदा

कई बार लोगों की प्रशंसा प्राप्त करने के लिए हम ऐसे काम करने लगते हैं जो व्यर्थ का दिखावा मात्र होते हैं। गुरु अर्जुन देव फ़रमाते हैं:

लोकन कीआ वडिआईआ बैसंतर पागउ॥[22]

अर्थात् जगत की वाहवाह लूटने की इच्छा त्यागो।

उसतत निंदा नानक जी मै हभ वञाई छोड़िआ हभ किझ तिआगी॥[23]

जब सच्चे साँईं की शरण ले ली, फिर न किसी से धन्य-धन्य कहलाने की इच्छा, न किसी के भला-बुरा कहने की परवाह।

आयु—बाढ़ का पानी

हमारी उम्र बाढ़ के पानी के समान बहती जा रही है। इस भीषण हानि का हमें कभी एहसास नहीं होता। मोह के अधीन हम तन-मन से निरंतर मंदे कर्म इकट्ठे करते चले जाते हैं, अपने प्रियतम की याद के लिए हमारे दिल में रत्ती भर जगह नहीं है। जितना समय हमें जीवन में मिला है, यदि वह शरीर के भरण-पोषण में ही बिता देंगे, तो अपने सिरजनहार के सम्मुख क्या मुँह लेकर जाएँगे:

बहती जात कदे द्रिसटि न धारत॥ मिथिआ मोह बंधह नित पारच॥
माधवे भज दिन नित रैणी॥ जनम पदारथ जीत हर सरणी॥
करत बिकार दोऊ कर झारत॥ राम रतन रिद तिल नही धारत॥
भरण पोखण संग अउध बिहाणी॥ जै जगदीस की गति नही जाणी॥[24]

गुरु साहिब समझाते हैं कि हमें वही करनी अपनानी चाहिए जिससे हम भवसागर से छुटकारा पा सकें और वह करनी केवल प्रभु के नाम का अभ्यास है:

सो किछ कर जित छुटह परानी॥ हर हर नाम जप अंम्रित बानी॥॥[25]

कुसंगति

कहते हैं बुरे लोगों की परछाईं से भी बचना चाहिए। मनमुखों की संगति में उलटी प्रेरणा मिलने के कारण पाप कर्मों से बचना कठिन हो जाता है। उनकी संगति करने से हमारी नेकनीयती भी शंका का विषय बन जाती है।

जुआरियों के पास बैठनेवाले के विषय में विश्वास कर लिया जाता है कि यह भी खेल में शामिल होता होगा। क़ातिल का साथी उसके साथ ही बँध जाता है। गुरु अर्जुन देव कबीर साहिब के श्लोक का दृष्टांत देते हैं:

कबीर चावल कारने तुख कउ मुहली लाए॥
संग कुसंगी बैसते तब पूछै धरम राए॥[26]

जैसे चावल के दाने की संगति के कारण छिलके को चोटें सहनी पड़ती हैं, वैसे ही गुनाहगारों से मेलजोल रखकर इनसान कोई न कोई ऐसी भूल अवश्य कर बैठता है जिसके कारण उसे धर्मराज के सामने पेश होना पड़े।

अकथ की कहानी

सच्चा जिज्ञासु व्यर्थ की बातों में समय नहीं गँवाता, क्योंकि अनावश्यक बातें करते हुए कभी झूठ बोला जाता है, किसी की निंदा हो जाती है, कोई कठोर वचन कहकर किसी का दिल दुखा दिया जाता है। गुरु अर्जुन देव जी अपने प्रियजनों के भले के लिए फ़रमाते हैं कि व्यर्थ की सब चर्चा छोड़कर हर समय अकथ की कहानी कहो:

आवहो संत पिआरिहो अकथ की करह कहाणी॥
करह कहाणी अकथ केरी कित दुआरै पाईऐ॥[27]

संतों के मार्ग पर चलना एक लंबा संघर्ष है जिसमें जीत हासिल करनी है। इस संघर्ष में प्रयोग होनेवाले हथियारों के बारे में गुरु साहिब फ़रमाते हैं:

गरीबी गदा हमारी॥ खंना सगल रेन छारी॥[28]

अर्थात् हमारे एक हाथ में नम्रता की गदा है, दूसरे में सबकी चरण-धूलि की तलवार। रक्षा मालिक के हाथ में है; वह जाने, उसकी रज़ा जाने।

साधक की दृष्टि एक ही ध्येय पर केंद्रित होनी चाहिए और वह ध्येय है अपने सच्चे साँईं से मिलाप। उसे चाहिए कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह संतों की संगति में हाज़िर होकर दीक्षा प्राप्त करे और उनकी बताई विधि के अनुसार सच्चे शब्द का अभ्यास करे। इस अभ्यास के लिए अपना तन-मन गुरु को भेंट करना और उसके हुक्म, उसकी रज़ा में रहना ज़रूरी है:

तन मन धन सभ सउप गुर कउ हुकम मंनिऐ पाईऐ॥
हुकम मंनिहो गुरू केरा गावहो सची बाणी॥[29]

नम्र विनती

अपनी ओर से सच्ची और पवित्र ज़िंदगी जीने का कठोर और भरसक प्रयत्न करते हुए भी गुरु अर्जुन देव जी मालिक के सामने विनती करते हैं। कहते हैं: मैं, तेरी दासी, अनेक भूल-चूक करती रहती हूँ। मैं तेरे योग्य नहीं, फिर भी लोग मुझे तेरी ही कहते और मानते हैं। जो अभागिनें अपने पति को छोड़कर किसी और से प्रीति करने लगती हैं, वे पश्चात्ताप करती हुई मरती हैं। पर मैं तो अपने स्वामी का आँचल नहीं छोड़ूँगी। हे प्रेम की मूरत मेरे प्रियतम! मेरा तो तू ही एक सहारा है:

जे भुली जे चुकी साईं भी तहिंजी काढीआ॥
जिन्हा नेह दूजाणे लगा झूर मरहो से वाढीआ॥
हउ ना छोडउ कंत पासरा॥
सदा रंगीला लाल पिआरा एह महिंजा आसरा॥[30]

आगे कहते हैं कि तू ही मेरा मित्र है, एकमात्र संबंधी है और इस रिश्ते के कारण मुझे तुझ पर पूरा भरोसा है। हे मेरे मान! कृपा के पुंज! अगर तू मुझ पर मेहरबान हुआ ही है तो मुझे अब किसी और का मुँह न दिखाना, किसी और के द्वार पर मत धकेलना। मैं तुझसे इतनी दया माँगती हूँ कि तेरी याद, तेरी प्रीति, निरंतर मेरे हृदय में बसी रहे:

सजण तूहै सैण तू मै तुझ उपर बहु माणीआ॥
जा तू अंदर ता सुखे तूं निमाणी माणीआ॥
जे तू तुठा क्रिपा निधान ना दूजा वेखाल॥
एहा पाई मू दातड़ी नित हिरदै रखा समाल॥[31]

मन पर विजय

महापुरुष बताते हैं कि अगर मन हमारा एकमात्र मित्र नहीं तो सबसे बड़ा शत्रु अवश्य है और हमें उसकी ओर से सदा चौकस रहना चाहिए। वह बेहद चंचल है, मरज़ी का मालिक और ग़ैरज़िम्मेदार है। गुरु रामदास जी ने कहा है: *मन खिन खिन भरम भरम बहु धावै तिल घर नही वासा पाईऐ॥*[32] वह हर वक़्त भटकता ही नहीं रहता, मंदी प्रवृत्तियों वाला मस्त हाथी है: मन मैगल साकत देवाना॥ बन खंड माइआ मोह हैराना॥[33] जिस प्रकार मदमस्त हाथी शोर मचाता हुआ खेतों, बग़ीचों और जंगलों को उजाड़ देता है, उसी तरह यह मन जीव के महीनों, सालों, दशकों और जन्मों तक का सत्यानाश कर देता है। इससे दु:खी होकर कई लोग इसे मारने का ज़िक्र करते हैं। परंतु इसकी हस्ती को मिटा देना संभव नहीं। जैसा कि कबीर साहिब ने कहा है: *ममा मन सिउ काज है मन साधे सिधि होए॥*[34] हरि के दर तक की काफ़ी यात्रा तो हमें इस मन की सहायता से ही करनी है। इसलिए इसे मारने से अभिप्राय इसे वश में करने से है। इसे क़ाबू करने के लिए किसी हथकड़ी या बेड़ी का प्रयोग नहीं किया जा सकता और न इसे किसी अँधेरी कोठरी में धकेला जा सकता है। इसके साथ ज़बरदस्ती न करने का सुझाव देते हुए गुरु नानक साहिब पिटारी में रखे साँप का उदाहरण देते हैं: *सप पिड़ाई पाईऐ बिख अंतर मन रोस॥*[35] इस बरताव से क्रोधित हुआ साँप बाहर आते ही डंक मारने का अवसर ढूँढ़ता है। इसलिए उसे पिटारी में डाल देने से कोई बचाव नहीं होता। गुरु अमरदास जी के अनुसार मन को वश में करने की और सही रास्ते पर लाने की दवा केवल शब्द है: *इह मन मरै दारू जाणै कोए॥ मन सबद मरै बूझै जन सोए॥*[36]

गुरु अर्जुन देव समझाते हैं कि मन को कोसने के साथ-साथ इसे प्यार से समझाना भी है। मन के स्वभाव से भलीभाँति परिचित आप उसे संबोधित करते हुए फ़रमाते हैं:

> कवन कवन नही पतरिआ तुम्हरी परतीत॥
> महा मोहनी मोहिआ नरक की रीत॥[37]

तुझ पर विश्वास करके कौन-कौन नहीं गिरे और बरबाद हुए। उनके नाम गिनना आसान नहीं। माया के मोह में फँसा तू जो मार्ग चुनता है, वह सीधा नरकों को जाता है। आगे फ़रमाते हैं:

> मन खुटहर तेरा नही बिसास तू महा उदमादा॥
> खर का पैखर तउ छुटै जउ ऊपर लादा॥[38]

गधे के पाँवों में बँधी रस्सी तभी खोलते हैं, जब वह पीठ पर लदे बोझ के कारण भागने या दुलत्ती मारने से लाचार हो जाए। इसलिए ऐ मेरे मन! तेरी उन्मत्तता, तेरे दोषों पर विचार करें, तो तुझ पर भरोसा करके तुझे कर्म करने की छूट नहीं दी जा सकती। फिर कहते हैं:

> जप तप संजम तुम्ह खंडे जम के दुख डांड॥
> सिमरह नाही जोनि दुख निरलजे भांड॥[39]

तेरे किए जप, तप, संयम जैसे सब कर्म व्यर्थ हो जाते हैं और उलटे तुझे यम के दंड का पात्र बनना पड़ता है। तू इतना निर्लज्ज है कि अपने किए पापों के लिए अनेक घटिया योनियों के जो दु:ख तुझे भोगने पड़ते हैं, उन्हें बिलकुल याद नहीं रखता। इसी कारण वही पाप आगे भी वैसे ही होते चले जाते हैं। फिर कहते हैं:

> हर संग सहाई महा मीत तिस सिउ तेरा भेद॥
> बीधा पंच बटवारई उपजिओ महा खेद॥[40]

जो प्रभु हमारे अंग-संग रहनेवाला हमारा परम हितैषी और रक्षक है, उससे तू दूर रहता है और जो काम, क्रोध आदि पाँच डाकू हमें लूटने का कोई मौक़ा नहीं गँवाते, उनसे तेरी ख़ूब मित्रता है।

अपने एक और शब्द में गुरु साहिब फ़रमाते हैं:

> जिह प्रसाद आरोग कंचन देही॥ लिव लावहो तिस राम सनेही॥...
> जिह प्रसाद तेरे सगल छिद्र ढाके॥ मन सरनी पर ठाकुर प्रभ ता कै॥ ...

जिह प्रसाद आभूखन पहिरीजै॥ मन तिस सिमरत किउ आलस कीजै॥
जिह प्रसाद अस्व हसति असवारी॥ मन तिस प्रभ कउ कबहू न बिसारी॥
जिह प्रसाद बाग मिलख धना॥ राख परोए प्रभ अपुने मना॥ ...
जिह प्रसाद तेरा परताप॥ रे मन मूड़ तू ता कउ जाप॥[41]

जिस प्रभु की कृपा से तुझे सोने जैसा सुंदर, स्वस्थ शरीर मिला है, अपना ध्यान उस प्रभु में लगा। जिसकी कृपा से तेरे सारे अवगुण ढके रहते हैं, उसके चरणों की शरण ले। जिसकी कृपा से तूने सुंदर आभूषण पहन रखे हैं, उसे याद करने में तू आलस्य क्यों करता है? जिसकी बख़्शिश से तू हाथी-घोड़ों पर सवार होता है, उस मालिक को कभी भी मन से नहीं भुलाना चाहिए। जिस दाता ने तुझे धन-दौलत, संपत्ति बख़्शी है, उसे अपने हृदय में पिरोकर रख। रे मूर्ख मन! जिसकी दया से तुझे सम्मान और इज़्ज़त प्राप्त है, तू निरंतर उसी का सिमरन कर।

आप मन को समझाते हुए कहते हैं कि तेरी सुंदर शक्ल, तेरे सुख और आराम, मौज और बहारें तुझे अपनी हिम्मत से नहीं मिलीं; यह सब कुछ अविनाशी प्रभु की दया से प्राप्त हुआ है, अंत में परम गति भी उसी की दया-मेहर से मिलेगी। इसलिए तेरा कर्तव्य है कि उसका धन्यवाद कर, प्रेमपूर्वक उसकी भक्ति कर।

गुरु अर्जुन देव अपने मन को समझाने के बहाने जिज्ञासु को शिक्षा देते हैं:

मन पिआरिआ जीउ मित्रा गोबिंद नाम समाले॥
मन पिआरिआ जी मित्रा हर निबहै तेरै नाले॥[42]

मेरे प्यारे मन! मेरे दोस्त! प्रभु के नाम की आराधना ही तेरा साथ निभाएगी। आगे कहते हैं:

मन पिआरिआ जी मित्रा हर बिन झूठ पसारे॥
मन पिआरिआ जीउ मित्रा बिख सागर संसारे॥[43]

जो कुछ तुझे नज़र आता है सब धोखा है, छल है; यह सारा संसार विष से भरा सागर है। फिर फ़रमाते हैं:

मन पिआरिआ जीउ मित्रा हर लदे खेप सवली॥
मन पिआरिआ जीउ मित्रा हर दर निहचल मली॥[44]

यहाँ केवल नाम की वस्तु ही व्यापार करने और कमाने के योग्य है। उसी के प्रताप से हरि के महल में स्थायी स्थान प्राप्त होगा। आगे फ़रमाते हैं:

मणी मिटाए जीवत मरै गुर पूरे उपदेस॥
मनूआ जीतै हर मिलै तिह सूरतण वेस॥[45]

सच्ची बहादुरी यह है कि मनुष्य गुरु के हुक्म का पालन करते हुए हौंमैं को मिटा दे, अपने अहं को ख़त्म कर दे। मन को जीत लेने पर ही प्रभु से मिलाप होता है।

चरण-शरण

ठाकुर जीउ तुहारो परना।
मान महत तुम्हारै ऊपर तुम्हरी ओट तुम्हारी सरना॥
गुरु अर्जुन देव

मनुष्य के जीवन में कभी-कभी मुसीबत की कोई ऐसी घड़ी आ जाती है जब किसी ओर से सहारा नहीं मिलता। शत्रु हानि पहुँचाने की ताक में होते हैं। सगे-संबंधी, दोस्त-मित्र आँखें फेर लेते हैं, पीठ दिखा जाते हैं। गुरु अर्जुन देव कहते हैं कि ऐसे समय में जब कोई सहारा न दे, उस समय यदि हम समर्पण भाव से परमेश्वर की शरण लेते हैं, तो वह पूरी रक्षा करता है, बाल भी बाँका नहीं होने देता:

जा कउ मुसकल अत बणै ढोई कोए न देइ॥
लागू होए दुसमना साक भि भज खले॥
सभो भजै आसरा चुकै सभ असराउ॥
चित आवै ओस पारब्रहम लगै न तती वाउ॥[1]

आपके अन्य वचन हैं:

अपना मीत सुआमी गाईऐ॥
आस न अवर काहू की कीजै सुखदाता प्रभ धिआईऐ॥
सूख मंगल कलिआण जिसह घर तिस ही सरणी पाईऐ॥
तिसह तिआग मानुख जे सेवहो तउ लाज लोन होए जाईऐ॥

एक ओट पकरी ठाकुर की गुर मिल मत बुध पाईऐ॥
गुण निधान नानक प्रभ मिलिआ सगल चुकी मुहताईऐ॥[2]

जीव को शरण उस घर में लेनी चाहिए, जहाँ सुख, ख़ुशियाँ और कुशल-मंगल प्राप्त हो सकें। सब सुखों के स्रोत उस सिरजनहार का ध्यान करना चाहिए जो हमारी आत्मा का एकमात्र मित्र और स्वामी है। उसके सिवा किसी और से कोई आशा नहीं रखनी चाहिए। उसे भुलाकर किसी मनुष्य का सहारा लेंगे तो अपमानित होना पड़ता है। जब हमें गुरु से मार्गदर्शन मिला तो हमने अपने मालिक का ही सहारा लिया। जब वह दया का भंडार मिल गया तो किसी और पर निर्भर होने की आवश्यकता ही नहीं रही।

शरण माँगते समय नम्रतापूर्वक यह स्वीकार करना चाहिए, हे प्रभु! मेरे पाप असंख्य हैं, उनकी गिनती नहीं हो सकती। उनका हिसाब चुकाना मेरे बस में नहीं है। अब मैं तेरे चरणों में आ गया हूँ। तेरी जैसी रज़ा हो, मेरी रक्षा कर:

जिउ जानहो तिउ राख हर प्रभ तेरिआ॥
केते गनउ असंख अवगण मेरिआ॥[3]

गुरमुख सब कार्य उस प्रभु के हुक्म में रहते हुए करते हैं, उसी की रज़ा में राज़ी रहते हैं। उनका सगा-संबंधी, धन-संपत्ति, मान-प्रतिष्ठा सब कुछ केवल प्रभु होता है। ऐसे गुरमुख प्रभु की क़ुदरत पर बलिहारी जाते हैं:

कहिआ करणा दिता लैणा॥ गरीबा अनाथा तेरा माणा॥
सभ किछ तूंहै तूंहै मेरे पिआरे तेरी कुदरत कउ बल जाई जीउ॥[4]

हे जगत के पालनहार! मैं जानता हूँ, मुझे जो कुछ मिलेगा, तुझसे मिलेगा। तुझे छोड़कर मैं किसी और के आगे हाथ नहीं फैलाऊँगा।

अगर तेरे बख़्शे हुए कष्ट या दु:ख भी आएँगे, मैं उन्हें सुख मानकर भुगत लूँगा। मेरी शोभा और बड़ाई केवल तेरा दास होने में है। तेरी रज़ा के अनुसार मेरी जो भी अवस्था हो, मेरे लिए वही बैकुंठ होगी:

प्रभ तुम ते लहणा तूं मेरा गहणा॥ जो तूं देह सोई सुख सहणा॥
जिथै रखह बैकुंठ तिथाई तूं सभना के प्रतिपाला जीउ॥[5]

अगर तू राजगद्दी पर बिठा दे तो भी तेरा दास बना रहूँगा और अगर घसियारा बना दे, तो भी शिकायत करने के लिए ज़बान न खोलूँगा:

जे तखत बैसालह तउ दास तुम्हारे घास बढावह केतक बोला॥[6]

शरणागत की न अपनी कोई राय होती है न दलील, न हक़ न शिकवा। मालिक के हर आदेश, हर ताकीद का एक ही उत्तर है—जो आज्ञा। गुरु साहिब के वचन हैं:

बै खरीद किआ करे चतुराई इह जीउ पिंड सभ थारे॥[7]

प्रभु के आगे बिक जाने पर अर्थात् शरण ले लेने पर हमारा शरीर, शक्ति और समझ सब मालिक के हो जाते हैं। इसके बाद हम जो कुछ करते हैं उसके निमित्त होता है, उसके बदले में कुछ माँगने का हमारा कोई अधिकार नहीं रहता। फिर भी हम एक तिनका तोड़कर जंगल काटने की मज़दूरी चाहते हैं:

सेवा थोरी मागन बहुता॥[8]

वास्तव में करने और करवानेवाला तो वह प्रभु स्वयं ही है। हम ख़ुद किसी योग्य नहीं। हमारा योगदान शून्य है। हमारी लाज रखने के लिए, वह हमारे द्वारा किया होने का भ्रम पैदा कर देता है, यही प्रभु का गुण है, उसका बिरद है:

सो किछ नाही जे मै ते होवै मेरे ठाकुर अगम अपारे॥[9]

शरण की महत्ता पर ज़ोर देते हुए गुरु साहिब फ़रमाते हैं:

चार पदारथ असट महा सिधि कामधेनु पारजात हर हर रुख॥
नानक सरन गही सुख सागर जनम मरन फिर गरभ न धुख॥[10]

अगर आपाभाव मिटाकर अपने आप को सुखों के सागर, परमपिता परमेश्वर की दया-मेहर पर छोड़ दिया जाए तो धर्म, अर्थ आदि चारों पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं और साथ ही आठों प्रमुख सिद्धियाँ तथा इच्छाएँ पूर्ण करनेवाले कामधेनु गाय और पारिजात वृक्ष भी उसके अधीन हो जाते हैं। फिर गर्भ की आग में कभी नहीं जलना पड़ता और जन्म-मरण सदा के लिए ख़त्म हो जाता है।

गुरु साहिब का कहना है कि मेरे सतगुरु ने मुझे सुमति दी है कि मैं सुखी होऊँ या दु:खी, मुझे हर हालत में उस प्यारे से लिव लगाए रखनी है। वही मेरा एकमात्र सहारा है। मेरी नाव उसके चरणों की प्रीति से ही किनारे पर लगेगी:

दुख सुख पिआरे तुध धिआई॥ एह सुमत गुरू ते पाई॥
नानक की धर तूंहै ठाकुर हर रंग पार परीवां जीउ॥[11]

शरणागत की प्रभु से प्रार्थना है कि मैं किसी ज्ञान-ध्यान से परिचित नहीं, न मैंने सेवा, दान-पुण्य जैसी कोई शुभ करनी की है। संसार के अंधे कुएँ में ऐसा गिरा हूँ कि अनेक जन्म भोग लेने पर भी मेरे उद्धार के लिए रास्ता नहीं खुला। हे दाता! मेरी यही विनती है, मुझे संतों की संगति बख़्श ताकि मैं यह दुस्तर भवसागर पार कर सकूँ:

आए अनिक जनम भ्रम सरणी॥
उधर देह अंध कूप ते लावहो अपुनी चरणी॥
गिआन धिआन किछ करम न जाना नाहिन निरमल करणी॥
साधसंगत कै अंचल लावहो बिखम नदी जाए तरणी॥[12]

प्रभु के चरणों में शरण लेने पर साधक अपने मनोभावों के अनुसार नहीं चलता। कठपुतली उसी प्रकार नाचती है जिस प्रकार उसका स्वामी उसे नचाता है। इसी प्रकार हरि के प्रेमी की हर गतिविधि हरि के हुक्म के मुताबिक़ होती है। इस प्रकार कोई कर्म उसका अपना कर्म नहीं रहता और इसी लिए उसका परिणाम भुगतने के लिए उसे फिर जन्म नहीं लेना पड़ता:

जीअ जंत तेरे धारे॥ प्रभ डोरी हाथ तुमारे॥
जे करावै सो करणा॥ नानक दास तेरी सरणा॥[13]

जब सतगुरु दयालु होकर शिष्य को अपने गले लगा लेता है, तो प्रभु उस जीव के सब मनोरथ पूरे कर देता है। उसे संसार के अग्नि-सागर से बचकर पार जाने में कठिनाइयाँ पेश नहीं आतीं। वह अंतर्यामी प्रभु कमज़ोर जीव का सहारा बन जाता है और उसकी सब कमज़ोरियों को जानते हुए भी उसे अपने साक्षात्कार का मान बख़्श देता है:

सगल मनोरथ प्रभ ते पाए कंठ लाए गुर राखे॥
संसार सागर मह जलन न दीने किनै न दुतर भाखे॥ ...
चरन सरन पूरन परमेसुर अंतरजामी साखिओ॥
जान बूझ अपना कीओ नानक भगतन का अंकुर राखिओ॥[14]

प्रभु अलख और अगम है। उससे सीधे संपर्क नहीं किया जा सकता। इसलिए आवश्यक है कि अपना अहंभाव, अपनी बुद्धि व चतुराई तथा अन्य प्रयत्न छोड़कर किसी संत-सतगुरु के चरणों में शरण प्राप्त की जाए:

साधू की होह रेणुका अपणा आप तिआग॥
उपाव सिआणप सगल छड गुर की चरणी लाग॥[15]

लेकिन शरण लेने के लिए सतगुरु से श्रेष्ठ कोई नहीं है। उसका तो केवल दर्शन ही निहाल कर देता है। वह अपने शिष्य को प्रभुभक्ति में

लगाकर उसके दुखों को दूर कर देता है। वह हर प्रकार का सुख बख़्शने में समर्थ है:

सरब सुखा का दाता सतगुर ता की सरनी पाईऐ॥
दरसन भेटत होत अनंदा दूख गइआ हर गाईऐ॥[16]

शरण लेना आसान नहीं है। शरण चाहे कई कठिन क़ुरबानियों की माँग करती है, लेकिन उसके फलस्वरूप मिलनेवाली रहमतें भी बेअंत हैं। गुरु अर्जुन देव जी ने अपने सतगुरु की शरण में जाकर क्या पाया, यह उनके मुखारविंद से ही सुनते हैं:

अब मोरो सहसा दूख गइआ॥
अउर उपाव सगल तिआग छोडे सतगुर सरण पइआ॥
सरब सिधि कारज सभ सवरे अहं रोग सगल ही खइआ॥
कोट पराध खिन मह खउ भई है गुर मिल हर हर कहिआ॥
पंच दास गुर वसगति कीने मन निहचल निरभइआ॥
आए न जावै न कत ही डोलै थिर नानक राजइआ॥[17]

सांसारिक पदार्थों की भागदौड़ छोड़कर सतगुरु के चरणों में शरण लेने से मन शांत हो गया, सब दुःख-दर्द और तकलीफ़ें ख़त्म हो गईं, सब मनोरथ सिद्ध हो गए तथा अहंकार की बीमारी जड़ से चली गई। गुरु की शिक्षा पर चलते हुए जब नाम का सिमरन किया, तो सब पिछले कर्म नष्ट हो गए। उसकी दया से मैंने काम, क्रोध आदि विकारों पर जीत प्राप्त कर ली; मेरा हर पल भटकनेवाला मन, अपने निज स्थान पर आकर टिक गया और मुझे सहज अवस्था प्राप्त हो गई।

जिस कुकर्मी की संसार में क़द्र न हो, यदि वह सतगुरु की शरण में आ जाए तो वह मेहरबान उसकी सब मलिनताओं को दूर कर उसे परमात्मा के सम्मुख जाने के योग्य बना देता है:

जिस पापी कउ मिलै न ढोई॥ सरण आवै तां निरमल होई॥[18]

जब अपना सर्वस्व सतगुरु के चरणों में अर्पण करके उसकी दया से, उसके हुक्म के अनुसार नाम की कमाई की जाती है तो सब दुःख और क्लेश मिट जाते हैं, कोई चिंता बाक़ी नहीं रहती:

तन संतन का धन संतन का मन संतन का कीआ॥
संत प्रसाद हर नाम धिआइआ सरब कुसल तब थीआ॥[19]

जब यह संसार आग का समुद्र है तो इसके तूफ़ानों में घिरा और डूबता कोई इनसान सुखी कैसे रह सकता है? गुरु अर्जुन देव का उत्तर है: इस संसार में इनसान बच्चे के समान मासूम बनकर सुखी रह सकता है। चाहे उसने कितनी ही लंबी आयु क्यों न भोग ली हो और जीवन के लंबे अनुभव के साथ चाहे कितनी विद्वत्ता और चतुराई प्राप्त कर ली हो, उसे बच्चे के समान निश्छल बनना होगा।

बच्चा इतना सरल-हृदय होता है कि माता-पिता जो भी बताएँ, वह झटपट उसे सच मान लेता है। अपनी कच्ची मति के पीछे लगकर वह किसी वाद-विवाद में नहीं उलझता। जिस प्रकार बालक अपने माता-पिता पर निर्भर होता है, उसी प्रकार सच्चा शिष्य अपने सतगुरु पर निर्भर रहता है। इसका फल क्या होता है?

पाइओ बाल बुध सुख रे॥
हरख सोग हान मिरत दूख सुख चित समसर गुर मिले॥[20]

हर्ष-शोक, सुख-दुःख, लाभ-हानि, यहाँ तक कि मौत भी ऐसे शिष्य के मन को विचलित नहीं कर सकती।

जब तक हम ख़ुद सोच-विचार करते रहते हैं, तब तक हम चिंता में घुलते रहते हैं, हमें भाँति-भाँति के झगड़े परेशान करते हैं। जब दयालु सतगुरु का सहारा ले लेते हैं तो मन सहज ही वश में आ जाता है, हम सुख और शांति प्राप्त करने लगते हैं:

जउ लउ हउ किछ सोचउ चितवउ तउ लउ दुखन भरे॥
जउ क्रिपाल गुर पूरा भेटिआ तउ आनद सहजे॥[21]

अपनी बुद्धि के अनुसार हम जो भी कर्म करते हैं, वे हमें और अधिक बंधनों में जकड़ते चले जाते हैं। जितना अधिक 'मैं-मेरी' का एहसास होता है, उतना ही अधिक मनुष्य घातक माया के दम घोट देनेवाले नागपाश* में फँसता चला जाता है:

जेती सिआनप करम हउ कीए तेते बंध परे॥ ...
जउ लउ मेरो मेरो करतो तउ लउ बिख घेरे॥[22]

जब तक हौंमैं की पोटली सिर से उतारकर फेंकी नहीं जाती, तब तक दंड भुगतने का क्रम जारी रहता है। गुरु के चरणों की शरण से जीव निश्चिंत हो जाता है:

जउ लउ पोट उठाई चलिअउ तउ लउ डान भरे॥
पोट डार गुर पूरा मिलिआ तउ नानक निरभए॥[23]

लेकिन शरण ख़ुद नहीं प्राप्त की जा सकती; वह लेनेवाले की मरज़ी पर निर्भर नहीं करती, बल्कि देनेवाले की बख़्शिश के रूप में प्राप्त होती है। अगर शरण प्राप्त हो जाए तो मानों अनंत काल का सोया भाग्य जाग उठा है:

जिस लड़ लाए लए सो लागै॥ जनम जनम का सोइआ जागै॥[24]

---

* कभी न छूटनेवाला फंदा

निमख-निमख बलिहार

धूड़ी विच लुडंदडी सोहां नानक तै सह नाले॥

गुरु अर्जुन देव

प्रेम की प्रकृति

प्रेम, प्यार, प्रीति—ये शब्द अति मनमोहक हैं, बर्फ़ के अभी-अभी गिरे फूहे की तरह कोमल, माघ महीने की गुनगुनी धूप की तरह सुखद, कस्तूरी की मंद-मंद सुगंधि की तरह मस्त कर देनेवाले हैं। उनकी मनमोहकता का कारण उनका शाब्दिक अर्थ नहीं, बल्कि वह अनूप और कोमल भावना है, जिसे वे प्रकट करते हैं। यही भावना प्रभु की सर्वोत्तम विशेषता है, उसका गुण, उसका स्वभाव, उसकी प्रकृति है।

जिस प्रकार फूल की हर पत्ती कोमल होती है, शहद की हर बूँद मीठी, प्रकाश की हर किरण उज्ज्वल, उसी प्रकार सच्ची प्रीति भी सर्वथा निर्मल होती है। उसमें कोई दोष या कमी नहीं होती। सोने में मिलावट से फ़र्क़ नहीं पड़ता; सोना चौबीस कैरेट का हो, बाईस का या फिर चौदह का, ग्राहक उसे ले लेता है। प्रीति में ऐसा नहीं हो सकता। उसके बारे में प्राय: सुनने में आता है; 'जहाँ गाँठ वहाँ रस नहीं यह प्रीत की बान।' प्रीति तो बिलकुल पोर होती है। गाँठ चाहे गन्ने का आवश्यक भाग हो, लेकिन पोर से उसकी रग नहीं मिलती।

किसी देश का राज प्राप्त हो जाना या आवागमन से छूट जाना, दोनों का अपनी-अपनी जगह बड़ा महत्त्व है। हुकूमत से संसार के अनेक सुख और आराम प्राप्त हो जाते हैं—विशाल महल, स्वादिष्ट भोजन, सुंदर वस्त्र, बढ़िया सवारियाँ, योग्य सेवक और मनोरंजन के सभी साधन।

दूसरी ओर यदि मुक्ति प्राप्त हो जाए, तो न गधे की देह धारण करके भारी बोझ उठाना पड़े, न बैल का रूप लेकर गाड़ी या हल चलाना, न भेड़-बकरी बनकर क़साइयों से गले कटवाना और न गिद्ध या सूअर की योनि में जाकर गंदगी पर पलना।

शासन हथियाने और उसे चलाने के लिए अपनाए गए साधन अंत में नरकों में डुबो देते हैं। शासन से इस लोक में प्राप्त होनेवाले सुख तृप्त नहीं करते, न अंत तक साथ देते हैं। दूसरी ओर प्रभु से प्रीति भवसागर से ही नहीं निकालती, बल्कि प्रभु से मिलाप करवाकर स्वर्ग और बैकुंठ से कहीं अधिक आनंद, परम आनंद बख़्शती है। यह सुख गूँगे के गुड़ की तरह है जिसका वर्णन करना असंभव है:

मिल सखीआ पुछह कहो कंत नीसाणी॥
रस प्रेम भरी कछु बोल न जाणी॥[1]

इसी लिए प्रेम और भक्ति के रंग में रँगा हुआ साधक राज और मुक्ति दोनों को ठुकरा देता है:

राज न चाहउ मुकत न चाहउ मन प्रीत चरन कमलारे॥[2]

प्रियतम के पास न होने पर कोई दोस्त, दोस्त नहीं लगता, कोई हमदर्द, हमदर्द नहीं। सभी जान के दुश्मन, यमदूत नज़र आने लगते हैं:

प्रभ सुआमी कंत विहूणीआ मीत सजण सभ जाम॥[3]

काम, क्रोध, आदि अनादि काल से जीवात्मा के परम शत्रु हैं। हम इनके अधीन बेबस कठपुतली बनकर रह जाते हैं। पर सौभाग्य से अगर आत्मा, परमेश्वर की प्रीति में सरोबार हो जाए, तो ये अत्यंत शक्तिशाली विकार इसके निकट नहीं फटकते, उसी प्रकार जैसे क़िले का सहारा लेकर बैठे व्यक्ति पर किसी तीर या तलवार का वार नहीं पहुँचता:

काम क्रोध न लोभ बिआपै जो जन प्रभ सिउ रातिआ॥[4]

प्रेम-विहीन व्यक्ति

कई लोग अनेक धर्मग्रंथ पढ़ लेते हैं और फिर अपने किताबी ज्ञान के आधार पर पुस्तकें लिखना, व्याख्यान देना शुरू कर देते हैं। समय के साथ उनके आध्यात्मिक ज्ञान की धाक जम जाती है, धन इकट्ठा होने लगता है, मान-बड़ाई की भी कमी नहीं रहती। वे चर्चा चाहे सिरजनहार प्रभु की करते रहें, लेकिन उनके दिल में प्रभु से विरह जैसी कोई भावना कभी नहीं उत्पन्न होती। अंत में अपना जीवन काल समाप्त करके वे कर्मों के अनुसार किसी और योनि में जा गिरते हैं।

इस श्रेणी के विद्वान और प्रसिद्ध व्यक्तियों का दुर्भाग्य उन कलछियों जैसा है जिन्हें अनेक प्रकार के रसीले भोजन में डुबकी लगाने का अवसर तो मिलता है, पर वे उनका स्वाद चखने से वंचित रह जाती हैं। वह विद्वत्ता, वह ज्ञान किस काम का जो परमात्मा की प्रीति में रँगे जाने में सहायक न हो, जो उसकी ओर प्रेरित ही न करे। गुरु अर्जुन देव के अनुसार ऐसे अभागों से दूर रहना चाहिए:

> कड़छीआ फिरंन्ह सुआउ न जाणन्ह सुञीआ॥
> सेई मुख दिसंन्ह नानक रते प्रेम रस॥[5]

गुरु साहिब कहते हैं कि धिक्कार है उन दुर्भाग्यशाली जीवों पर जिन्होंने दुनिया में आकर जिह्वा के रस भोगते-भोगते शरीर को बेकार कर लिया। जिस दयालु प्रभु ने मनुष्य जन्म बख़्शा, उसके प्यार के रंग से वंचित रहे:

> खांदिआ खांदिआ मुह घठा पैनंदिआ सभ अंग॥
> नानक ध्रिग तिना दा जीविआ जिन सच न लगो रंग॥[6]

प्रेम की दीनता

सफलता उसी प्रेमिका को मिलती है जो स्वामी को भा जाए। प्रेम-भक्ति का स्वीकार होना बहुत हद तक मालिक की अपनी दया-मेहर पर निर्भर

करता है। अपने गुणों पर गर्व करनेवाली स्त्री की असफलता निश्चित है। अहंकार के कारण उसका प्रियतम से मिलाप तो दूर, वह उसके महल में प्रवेश भी नहीं पा सकती:

> सोई कमावै जो प्रभ भावै॥ सा सोहागण अंक समावै॥
> गरब गहेली महल न पावै॥[7]

इसके विपरीत, सच्ची विरहिणी विनती करती है:

> तू ठाकुरो बैरागरो मै जेही घण चेरी राम॥
> तूं सागरो रतनागरो हउ सार न जाणा तेरी राम॥[8]

तू मेरा स्वामी है, तू माया से निर्लेप है। मेरे जैसी तेरी अनेक दासियाँ हैं। मैं एक बूँद हूँ, तू समुद्र है, रत्नों का ख़ज़ाना है। मैं बेचारी तेरी थाह कैसे पा सकती हूँ। तेरी और मेरी क्या बराबरी हो सकती है?

आत्मारूपी प्रेमिका को अपनी हौंमैं, अपने अहं को पूरी तरह मिटा देना पड़ता है। सच तो यह है कि उसकी दीनता ख़ुद को प्रियतम प्रभु की एक तुच्छ दासी मानने तक सीमित नहीं रहती। वह तो सारे जहान के क़दमों की ख़ाक बन जाने को तैयार हो जाती है।

> पहिला मरण कबूल जीवण की छड आस॥
> होह सभना की रेणुका तउ आउ हमारै पास॥[9]

धुर दरगाह का यही विधान है।

विरह

अपने सगे-संबंधी सबको प्रिय लगते हैं। उनकी संगति से ख़ुशी प्राप्त होती है। मनुष्य संसार के अनेक पदार्थ अपने तन के सुख, मन की प्रसन्नता के लिए जुटा लेता है। परंतु अगर सच्चे प्रेमी के अंत:करण से प्रभु प्रियतम दूर हो जाए तो सब कुछ होते हुए भी उसके लिए घड़ी भर

जीना नरक बन जाता है। अपने प्राण प्यारे के बिना यह संसार उसके किस काम का, इसके ऐशो-आराम का उसे क्या लाभ?

दय गुसाई मीतुला तूं संग हमारै बास जीउ॥
तुझ बिन घरी न जीवना ध्रिग रहणा संसार॥
जीअ प्राण सुखदातिआ निमख निमख बलिहार जी॥[10]

जब हम संसार में आते हैं, तो हमारा सिरजनहार प्रभु हमें निरुद्देश्य भटकने के लिए अकेले नहीं छोड़ देता। वह स्वयं हमारे साथ होता है, शब्दरूप में हमारे ध्यान, हमारी प्रीति का केंद्र बनने के लिए हमारे साथ रहता है। वह गर्भ के दिनों से लेकर आख़िरी साँस तक हमारा पालन करता है। हमारा दुर्भाग्य यह है कि हम स्वयं उससे विमुख होकर उसे अलग समझते हैं और उससे मिलाप के बारे में कभी नहीं सोचते। हमारे इस दुर्भाग्य को गुरु अर्जुन देव ने अति सुंदर शब्द-चित्रण द्वारा समझाने की कोशिश की है। आप लिखते हैं:

खखड़ीआ सुहावीआ लगड़ीआ अक कंठ॥
बिरह विछोड़ा धणी सिउ नानक सहसै गंठ॥[11]

आक का फल, जिसे पंजाबी में खखड़ी कहा जाता है, देखने में आम के फल जैसा लगता है और ख़ुशी देता है, परंतु जब वह अपने पौधे से अलग हो जाता है तो उसकी वही सुंदर देह हज़ारों रोएँ बनकर जगह-जगह बिखर जाती है। भाव यह कि जब तक जीवात्मा अपने स्वामी के चरणों से लिपटी रहती है, उसे सुख और मान प्राप्त होता है और जब उससे बिछुड़ जाती है, तो चौरासी लाख योनियों के चक्कर में पड़कर अनेक कष्ट सहती है।

छोटा बच्चा भूख से बेहाल हो रहा हो तो उसे माँ के सिवाय किसी और का लाड़-प्यार और लोरियाँ शांत नहीं कर सकतीं। न मेवे और मिठाइयाँ, न खिलौनों से भरी टोकरी। उसी प्रकार विरह के रोगी को

अपने प्रियतम के दीदार के सिवाय और किसी दवा से धैर्य और आराम नहीं मिलता। प्रेमी को तो वियोग की संभावना का ज़िक्र ही तड़पाकर रख देता है; प्रियतम के स्वरूप को देखने से वंचित हो जाना उसके लिए महाप्रलय बन जाता है।

विछोड़ा सुणे डुख विण डिठे मरिओद॥
बाझ पिआरे आपणे बिरही ना धीरोद॥[12]

सच्चे प्रेमियों के लिए प्रियतम का वियोग बहुत दुःखदायी होता है। एक बारीक तिनके जितना विरह भी उन्हें भाले की तरह चुभता है। गुरु अर्जुन देव अपने दिल की बात बताते हैं:

एक निमख जे बिसरै सुआमी जानउ कोट दिनस लख बरीआ॥[13]

'निमख' का अर्थ है आँख झपकने भर का समय। अगर वियोग का इतना समय लाखों, करोड़ों, अरबों वर्षों के समान लगने लगे, तो उसे कोई कैसे सहन करेगा? मानों जीते-जी ही मर गए:

किउ जीवन प्रीतम बिन माई॥
जा के बिछुरत होत मिरतका ग्रिह मह रहन न पाई॥[14]

इस स्थिति में प्रेमी का क्षणमात्र के वियोग की आशंका से ही बेहाल हो जाना स्वाभाविक है:

जे तू मित्र असाडड़ा हिक भोरी ना वेछोड़॥
जीउ महिंजा तउ मोहिआ कद पसी जानी तोहे॥[15]

भोजन यदि कम मात्रा में हो या उसमें पोषक तत्त्वों की कमी हो तो कुछ समय बाद हड्डियों से मांस घुलकर अलग होने लगता है। परंतु धीरे-धीरे निरंतर बढ़ रही इस कमज़ोरी का एहसास जल्दी नहीं होता। इसके विपरीत उतना ही मांस अगर कोई जंबूर में दबाकर थोड़ा-थोड़ा तोड़े, तो जान पर जो गुज़रती है, वह चीख़ों द्वारा ही प्रकट हो सकती है,

शब्दों से नहीं। मिलाप के रूप में प्रेम का रस चख लेने के बाद वियोग का क़हर टूटने पर बिलकुल यही हाल होता है:

विछोहे जंबूर खवे न वंञन गाखड़े॥
जे सो धणी मिलंन नानक सुख संबूह सच॥[16]

गुरु अर्जुन देव इस स्थिति से स्वयं गुज़रे थे, इसी लिए उस हूक से परिचित थे जो विरही के अंदर उठती है—'काश! एक बार फिर कंत से मिलाप हो जाए और वह पहले वाला अकथ सुख प्राप्त हो जाए।'

प्रियतम के चरणों की धूलि बन जाने या अपने आप को मिटा देने से प्रेम की माँग पूरी नहीं हो जाती। प्रेमी के हृदय में मिलाप की तीव्र इच्छा और विरह की तड़प होना ज़रूरी है। मछली का जीवन जल होता है। उसके बिना वह बेचारी तड़प-तड़पकर मर जाती है। स्वाति बूँद पर पपीहे की भी ऐसी ही निर्भरता दिखाई देती है। मृग को संगीत इतना आकर्षित करता है कि वह अपनी जान लेने आए शिकारी के सामने जाकर खड़ा हो जाता है। सुगंध की मस्ती में भौंरा कमल की पंखुड़ियों में बंद हो जाता है। इत्र बनानेवाले उन कमलों को तोड़कर गर्म तेल की कड़ाही में डाल देते हैं। भौंरा भी उसी तेल में जल मरता है। प्रभु के भक्त अपने प्रियतम के दीदार के लिए उसी व्याकुलता से तरसते हैं:

जिउ मछुली बिन पाणीऐ किउ जीवण पावै॥
बूंद विहूणा चात्रिको किउ कर त्रिपतावै॥
नाद कुरंकह बेधिआ सनमुख उठ धावै॥
भवर लोभी कुसम बास का मिल आप बंधावै॥
तिउ संत जना हर प्रीत है देख दरस अघावै॥[17]

विरही के हृदय को किसी अन्य साधन या अन्य पदार्थ से तृप्ति नहीं होती। उसकी जान तो अपने प्रियतम की एक झलक मात्र के लिए तरसती रहती है:

बिन मिलबे नाही संतोखा पेख दरसन नानक जीजै॥[18]

उसकी चाह इतनी प्रबल होती है कि उसे प्रियतम की ज़रा-सी दूरी भी सहन नहीं होती:

प्रीत प्रेम तन खच रहिआ बीच न राई होत॥[19]

प्रीति करनेवाली आत्मा जहाँ हर समय तड़पती रहती है कि उसके प्रियतम की दयादृष्टि सदा उस पर रहे, वहीं इस चिंता से भी व्याकुल होती है कि वह कहीं कोई ऐसी हरकत न कर बैठे, कोई ऐसा वचन न बोल दे जो उसकी नाराज़गी का कारण बन जाए। इसलिए वह अपने पूज्य को दोनों हाथ जोड़कर बार-बार विनती करती है कि उससे तो ग़लतियाँ और अशिष्टता होती ही रहती है, पर हे प्रभु! यह न भूलना कि मैं तेरी तुच्छ, बेसहारा दासी हूँ और मुझे इस दासता पर मान है:

मोहन घर आवहो करउ जोदरीआ॥
मान करउ अभिमानै बोलउ भूल चूक तेरी प्रिअ चिरीआ॥[20]

जब ईश्वर की कृपा से किसी के हृदय में प्रभु प्रियतम के लिए प्रीति की बारिश होती है, तो वह बूँदाबाँदी तक सीमित नहीं रहती, बल्कि मूसलाधार वर्षा बनकर बरसती है। उसका वेग इतना बलवान होता है कि नाम का सिमरन करती हुई रसना बिलकुल न होने के बराबर प्रतीत होती है, हरि का यशोगान सुनने के लिए मिले दो कान बिलकुल अपर्याप्त और उसकी सेवा के लिए दो हाथ न होने के समान होते हैं। पाँव ऐसे लगते हैं जैसे दो चींटियाँ धरती का घेरा नापने के लिए चली हों और आँखें ऐसे मानों वे जी भरकर दर्शन करने के लिए बनाई ही नहीं गई थीं। इसलिए दर्शन की प्यास तृप्त होने में ही नहीं आती। इस प्रकार की विवशता में दिल पुकार उठता है:

कर किरपा मेरे प्रीतम सुआमी नेत्र देखह दरस तेरा राम॥
लाख जिहवा देहो मेरे पिआरे मुख हर आराधे मेरा राम॥ ...

कोट करन दीजह प्रभ प्रीतम हर गुण सुणीअह अबिनासी राम॥
सुण सुण इह मन निरमल होवै कटीऐ काल की फासी राम॥ ...
करोड़ हसत तेरी टहल कमावहं चरण चलह प्रभ मारग राम॥
भव सागर नाव हर सेवा जो चड़ै तिस तारग राम॥[21]

प्रेम का रस

यहाँ काल और माया के राज्य में रहते जीवों को कितनी आशाएँ और तृष्णाएँ परेशान करती हैं। एक संतुष्ट हुई तो चार और ने सिर उठा लिया, सभी एक दूसरे से अधिक बेचैन करनेवाली होती हैं। उनसे बचने का अगर कोई मार्ग है तो प्रभु की प्रीति है। इस प्रीति का रस पल-पल सताती कामनाओं से सदा के लिए मुक्त कर देता है। उससे मिलनेवाले आनंद की बराबरी संसार का कोई रस नहीं कर सकता, ठीक उसी प्रकार जैसे भँवरे को कमल की सुगंध के सिवा और कुछ अच्छा नहीं लगता। सृष्टि में कोई भी ऐसा नहीं जो उस प्रभु के एक रोम तक की बराबरी कर सकता है।

मेरा मन एकै ही प्रिअ मांगै॥
पेख आइओ सरब थान देस प्रिअ रोम न समसर लागै॥
मै नीरे अनिक भोजन बहु बिंजन तिन सिउ द्रिसटि न करै रुचांगै॥
हर रस चाहै प्रिअ प्रिअ मुख टेरै जिउ अल कमला लोभांगै॥[22]

प्रभु प्रेम की मूर्ति

प्रभु से प्रेम करना साधक के अपने हाथ में नहीं होता। प्रेम मालिक की अपनी बख़्शिश है और वह प्रेमी को बाँधने के लिए ऐसी मज़बूत रस्सी का प्रयोग करता है, उसे इस तरह कसकर बाँधता है कि अगर प्रेमी ख़ुद उससे मुक्त होना चाहे, तो वह खुल नहीं सकती, भरसक कोशिश करने पर भी टूट नहीं सकती:

मू लालन सिउ प्रीत बनी॥
तोरी न तूटै छोरी न छूटै ऐसी माधो खिंच तनी॥[23]

नन्हें बालक माता-पिता को तो प्यारे होते ही हैं, मौत के किनारे खड़े नाना और दादा भी अपने जोड़ों के दर्द को भुलाकर पोतों-दोहतों के लिए घुटनों के बल चलती सवारी बनने से नहीं कतराते। अपने सारे बड़प्पन के बावजूद प्रभु भी इस प्रकार के खेल में शामिल होने से पीछे नहीं हटता। अगर उस पूर्ण प्रभु में कोई कमज़ोरी होने की कल्पना की जा सकती है तो यही प्रेम उसकी भी कमज़ोरी है। जब जिज्ञासु उसकी प्रीति में डूब जाता है तो स्वाभाविक रूप से वह अपने स्वामी के प्रति किसी गुस्ताख़ी का दोषी नहीं बनता और उसके सारे काम प्रभु की प्रसन्नता पाने के लिए होते हैं। दूसरी ओर वह जो कुछ भी करता है वह सब—उसकी नादानियाँ भी—प्रभु को अच्छी लगती हैं, जैसे पिता को अपने बच्चे की तोतली बोली, उसकी लड़खड़ाती चाल प्रिय लगती है:

निमख न बिसरउ हीए मोरे ते बिसरत जाई हउ मरत॥
सुखदाई पूरन प्रभ करता मेरी बहुत इआनप जरत॥[24]

प्रेम की ताली दोनों हाथों से

प्रभु सर्वशक्तिमान है। सृष्टि का पत्ता-पत्ता, कण-कण उसकी प्रभुता स्वीकार करता है। वह ख़ुद किसी के अधीन नहीं है। लेकिन उसकी रज़ा वैसे ही कार्य करती है, जैसे उसके प्रेमी चाहते हैं। उन्हें इस तरह सम्मान देने का मानों उसने ज़िम्मा ले रखा है जिसे वह पूरी तरह निभाता है। इस विषय में आवश्यक नहीं कि वह सही-ग़लत की कसौटी पर खरा उतरता हो। नासमझ बच्चा जब हठ पर उतर आता है तो वह यह नहीं देखता कि उसकी माँग को पूरी करना संभव है भी या नहीं, फिर भी पिता उस माँग को पूरी करने की कोशिश करता है। इसी प्रकार प्रभु अपने भक्तों के भोलेपन में किए गए हठ को उनकी ख़ुशी के लिए पूरा कर देता है:

हर के भगत सदा सुखवासी॥ बाल सुभाए अतीत उदासी॥
अनिक रंग करह बहु भाती जिउ पिता पूत लाडाइदा॥[25]

हरि अपने संतों का प्रतिपालन तो करता ही है, उनका मनोरंजन भी करता है, उनका जी भी ख़ुश करता है, क्योंकि वे उसे अत्यंत प्रिय लगते हैं। दूसरी ओर संत भी कोई कमी नहीं छोड़ते, वे जी-जान से उससे प्रीति करते हैं, ठीक उसी तरह जैसे पिता और उसके पुत्र में लाड़-प्यार होता है:

तूं संतन की करह प्रतिपाला॥ संत खेलह तुम संग गोपाला॥
अपुने संत तुध खरे पिआरे तू संतन के प्राना जीउ॥[26]

जब मालिक की मौज होती है तो वह यह नहीं सोचता कि याचक आत्मा के गुण बहुत कम हैं और उसके अवगुण बहुत गंभीर, तो मैं उसे क्यों अपनाऊँ? वह दया का सागर है। इसलिए वह दयालु हो ही जाता है। फिर वह ख़ुद ही अपनी अपार दया से उस अयोग्य प्रेमी आत्मा को सद्गुणों से सँवार देता है जिससे उसकी अयोग्यता ढक जाती है और वह सुंदर दिखने लगती है। इतने पर ही न रुककर वह उसके हृदय को नाम के बहुमूल्य रत्न से जगमगा देता है और उसे गले लगाकर सदा के लिए अपना बना लेता है:

आपनड़ै प्रभ आप सीगारी सोभावंती नारे राम॥
सहज सुभाए भए किरपाला गुण अवगण न बीचारिआ॥
कंठ लगाए लीए जन अपुने राम नाम उर धारिआ॥[27]

गुरु की ज़रूरत

प्रभु के प्रेम का पक्का मजीठी रंग केवल उन जिज्ञासुओं पर चढ़ता है जिन्होंने उस प्रभु के उज्ज्वल स्वरूप की पहचान कर ली हो। फिर चाहे उन पर असह दुखों के पहाड़ टूट पड़ें या सुध-बुध भुला देनेवाली सांसारिक सुख व आनंद की वर्षा होने लगे, किसी भी हालत में वे उसकी ओर से मुख नहीं मोड़ते। जिनके प्रेम का रंग कुसुंभ के फूल की तरह कच्चा होता है, जिन्हें प्रेम का खेल खेलने की विधि का ज्ञान नहीं होता, उन्हें रस से भरने से पहले ही झड़ जानेवाले फल का दुर्भाग्य

प्राप्त होता है। जिस आत्मारूपी स्त्री का परमात्मारूपी पति उसके पास नहीं, उसके लिए रेशमी, मख़मल के वस्त्रों का कोई मूल्य नहीं। उसका हार-शृंगार व्यर्थ है, लेकिन जिसे उसका संयोग प्राप्त है, वह धूल में लथपथ होते हुए भी प्रसन्न रहती है:

रते सेई जे मुख न मोड़ंन्ह जिन्ही सिञाता साई॥
झड़ झड़ पवदे कचे बिरही जिन्हा कार न आई॥
धणी विहूणा पाट पटंबर भाही सेती जाले॥
धूड़ी विच लुडंदड़ी सोहां नानक तै सह नाले॥[28]

प्रभु से मिलने के इच्छुक के लिए इतना तो जान लेना आवश्यक है कि वह प्रभु है कहाँ? और ऐसा कोई व्यक्ति आसानी से नहीं मिलता जो दावे के साथ कह सके कि मैं यह जानता हूँ और उस प्रभु से मिलता रहता हूँ। ऐसे संत महात्मा का पता जानने के लिए कोई क्या मूल्य चुकाता है, यह उसके प्रेम की गहराई पर निर्भर करता है। सच्चे जिज्ञासु को जो भी उसके प्यारे का पता बता दे, वह अपना सब कुछ उसे भेंट करने के लिए तैयार हो जाता है। 'अलख-अगम' का पता जानने के लिए अपना सर्वस्व अर्पण करने को तैयार प्रेमी के बारे में गुरु अर्जुन देव लिखते हैं:

पूछउ पूछउ दीन भांत कर कोऊ कहै प्रिअ देसांगिओ॥
हींडो देंउ सभ मन तन अरपउ सीस चरण पर राखिओ॥[29]

प्रियतम का पता बतानेवाले सतगुरु के चरणों में सिर रखकर अपना तन, मन, हृदय, सब कुछ अर्पित करने के लिए तैयार होना पड़ता है। उस प्रियतम प्रभु से मिलाप करानेवाले बिचौलिए मित्र पर अपना जीवन क़ुरबान कर देने को जी चाहता है:

घोल घुमाई तिस मित्र विचोले जै मिल कंत पछाणा॥[30]

केवल यह जान लेने से कि अगर अलख और अगोचर प्रभु से संबंध सीधे नहीं, बल्कि गुरु के द्वारा ही जोड़ा जा सकता है, समस्या हल

नहीं हो जाती। प्रीति दो हाथों से बजनेवाली ताली है, अगर गुरु की दया-कृपा न हो तो केवल शिष्य के चाहने से काम नहीं बनता। बात इसलिए बन जाती है कि परमेश्वर की तरह गुरु भी प्यार की मूर्ति होता है और भवसागर में ग़ोते खाते जीवों का उद्धार करना, उन्हें पार उतारना, उसका बिरद है। गुरु के द्वार पर पहुँचे जिज्ञासु को कभी निराशा का मुँह नहीं देखना पड़ता, इसलिए कि गुरु तो पहले ही दातों की झोली भरकर स्वयं शिष्य की राह देखता है और गुरु द्वारा खींची गई डोरी की ताक़त से ही यह रास्ता ख़त्म होता है, न कि शरण में आनेवाले शिष्य की अपनी कोशिश से:

जिन गुर मो कउ दीना जीउ॥ आपुना दासरा आपे मुल लीउ॥
आपे लाइओ अपना पिआर॥ सदा सदा तिस गुर कउ करी नमसकार॥[31]

जब कोई कुशल दर्ज़ी सिलाई में व्यस्त होता है तो उसके पाँव मशीन चलती रखने के लिए पैडल हिलाते हैं, उसके हाथ सिल रहे कपड़े को सीध दिए जाते हैं और आँखें बखिया सही रखने की ज़िम्मेदारी निभाती हैं। इस प्रकार अपनी आजीविका का कार्य भलीभाँति पूरा करते हुए उसके कान और ज़बान किसी पास बैठे साथी से बातें करने या ग्राहक को निपटाने के लिए ख़ाली होते हैं। पर जो प्रेम हमारे विचार का विषय है, वह सौ फ़ीसदी ध्यान और एकाग्रता माँगता है। रोम-रोम सतगुरु की प्रीति में सराबोर हो जाने पर शिष्य के मन में अन्य बातों के ध्यान के लिए कोई स्थान नहीं होता:

अंतर गुर आराधणा जिहवा जप गुर नाउ॥
नेत्री सतगुर पेखणा स्रवणी सुनणा गुर नाउ॥
सतगुर सेती रतिआ दरगह पाईऐ ठाउ॥[32]

तन और मन न्योछावर करने का यह अर्थ नहीं कि जब जी चाहेगा उन्हें वापस ले लिया जाए या निश्चित समय बीतने पर वे फिर असली मालिक के कब्ज़े में आ जाएँगे। उन्हें न्योछावर करने का अर्थ है उन्हें

पक्के तौर पर बेच देना और बेची हुई संपत्ति का स्वामित्व पूरी तरह पराए हाथ में चला जाता है। इस बिक्री के सौदे में आशा से अधिक लाभ होता है—कुलमालिक तक मिल जाता है:

इह तन वेची संत पह पिआरे प्रीतम देइ मिलाए॥[33]

एक अन्य शब्द में गुरु साहिब फ़रमाते हैं:

मन बेचै सतगुर कै पास॥ तिस सेवक के कारज रास॥[34]

एक विनती

जिउ जानहो तिउ राख हर प्रभ तेरिआ॥

गुरु अर्जुन देव

गुरु अर्जुन देव एक निश्चित उद्देश्य के लिए संसार में आए थे और वह था इस जगत के माया से ग्रस्त जीवों को अज्ञानता की नींद से जगाना। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने जगह-जगह जाकर अपना संदेश ही नहीं सुनाया, बल्कि वाणी की रचना भी की ताकि उनका संदेश उन स्थानों पर भी पहुँचे, जहाँ वे ख़ुद नहीं जा सके और वह आनेवाली पीढ़ियों का भी मार्गदर्शन करता रहे।

अपनी रचनाओं के लिए उन्होंने अति सरल भाषा का प्रयोग किया और अलग-अगल क्षेत्रों के निवासियों की सुविधा के लिए उसमें आवश्यकतानुसार स्थानीय बोलियों के शब्दों को भी शामिल किया। अलंकारों से सजी सुंदर शैली में उनकी वाणी, पाठक के हृदय में सहज ही अपना स्थान बना लेती है। आपकी विद्वत्ता निस्संदेह उच्च कोटि की थी और वह आपके विचारों और तर्कों को प्रामाणिक बनाने में सहायक सिद्ध हुई है।

गुरु साहिब की वाणी हमारे मन में यह बात अच्छी तरह बिठा देती है कि हमारे करने के योग्य केवल एक ही कार्य है और वह है—नाम और शब्द के अभ्यास के रूप में संत-सतगुरु की अगुआई में अपने सिरजनहार की प्रेमपूर्ण भक्ति:

अवर काज तेरै कितै न काम॥ मिल साधसंगत भज केवल नाम॥[1]

अनहद शब्द का भेद केवल संत ही खोल सकते हैं और कोई नहीं:

अनहद बाणी पूंजी॥ संतन हथ राखी कूंजी॥[2]

ऊपर बताई गई साधना के साथ-साथ हमें अपनी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में यह ध्यान रखना है कि हमारा मन और आत्मा कर्मों की मैल से दूर रहें:

सो किछ कर जित मैल न लागै॥ हर कीरतन मह एह मन जागै॥[3]

गुरु साहिब द्वारा बताई गई साधना के लिए अपने संबंधियों और मित्रों से विमुख होने की ज़रूरत नहीं है, न किसी जंगल, पहाड़, तीर्थ या पवित्र धाम में शरण लेने की। आप अपने निजी अनुभव से फ़रमाते हैं:

दह दिस खोजत हम फिरे मेरे लाल
जीउ हर पाइअड़ा घर आए राम॥
हर मंदर हर जीउ साजिआ मेरे लाल
जीउ हर तिस मह रहिआ समाए राम॥[4]

जब हमारे इष्ट द्वारा ख़ुद बनाया गया हरिमंदिर, हमारी अपनी काया में मौजूद है तो उसे अपने अंदर ही खोजेंगे, देश-विदेश में उसे ढूँढ़ना व्यर्थ है।

हमारा शरीर एक रथ है, मन उसका सारथी, आत्मा उसकी सवारी और सिरजनहार की ज्योति उसे चलानेवाली शक्ति है। जब इस जन्म का सफ़र इस शरीर की सहायता से ही ख़त्म किया जा सकता है, तो उचित है कि हम इसे मांस-मछली जैसी गंदी और शराब-तंबाकू जैसी हानिकारक वस्तुओं से बचाकर सात्त्विक भोजन से निर्मल और स्वस्थ रखें। हमारा सृजन करनेवाला प्रभु 'अनद बिनोदी' है—वह कृपानिधान अपने द्वारा बनाए संसार की लीला देखता है और प्रसन्न होता है: वेख विडाण रहिआ विसमाद॥[5] वह क्यों चाहेगा कि हम अपने आप को किसी तरह के व्रत से भूखा और प्यासा रखें, तप से सुखाएँ, जलाएँ या और किसी प्रकार का कष्ट दें? इसलिए गुरु अर्जुन देव फ़रमाते हैं:

हसंदिआ खेलंदिआ पैनंदिआ खावंदिआ विचे होवै मुकत॥[6]

लेकिन, ऐसा करते हुए हमें किसी को दु:ख नहीं देना, जीवन के इस खेल में छल-कपट नहीं करना, अपना तन ढकने-सजाने के लिए और अपना पेट भरने के लिए समभाव रखते हुए दूसरों के प्रति उदार होना है। हमारा परमपिता परमात्मा हर हृदय में बसता है। किसी भी हृदय पर लगी चोट उसे पीड़ित करती है। अगर उस प्रियतम को नाराज़ करेंगे तो हम कैसे ख़ुश रह सकते हैं? सतगुरु यह समझाते हैं कि अपने उद्धार के लिए हर संभव प्रयत्न अवश्य करना चाहिए, लेकिन हमें यह कभी नहीं भूलना कि हमारी अपनी कोशिश से कुछ नहीं होगा; जो कुछ हमें प्राप्त होगा, दाता की बख़्शिश से, उसकी दया से प्राप्त होगा। इसलिए सदा विनती करते रहना चाहिए:

जिउ जानहो तिउ राख हर प्रभ तेरिआ॥
केते गनउ असंख अवगण मेरिआ॥[7]

वाणी

सुखमनी	बारह माहा
बावन अखरी	सलोक सहसक्रिती
दिन-रैन	डखणे यानी श्लोक
गुरु की रहमत	सर्वसमर्थ
गुरु की महिमा	मनुष्य बेचारा
एक ही टेक	प्रभु की कृपा से
नाम का दाता	सेवा
मालिक की मेहर और बख़्शिश	एक नाम
हरिरस का अमृत	सहज अवस्था
झूठे सहारे	विषय-विकार

सुखमनी

'सुखमनी' गुरु अर्जुन देव की सुप्रसिद्ध वाणी है। श्लोकों के अतिरिक्त चौबीस असटपदियों के रूप में आदि ग्रन्थ के 262 से 296 पृष्ठों पर लिखी गई इस रचना का पाठ अनेक श्रद्धालु हर रोज़ करते हैं। हालाँकि गुरु साहिब ने इस वाणी में रूहानी मार्ग के सच्चे जिज्ञासुओं का हर पहलू से मार्गदर्शन किया है, फिर भी मुख्य रूप से इसका विषय है—हरिनाम—जिसकी साधना से परमपद तक सब फल प्राप्त हो जाते हैं। गुरु अर्जुन देव ने अपनी इस रचना को 'सुखमनी' कहा है जिसका अर्थ है 'मन को आनंद देनेवाली वाणी' या 'सुख का रत्न'।

मंगलाचरण के बाद सुखमनी की पहली असटपदी इस प्रकार है:

सिमरउ सिमर सिमर सुख पावउ॥ कल कलेस तन माहे मिटावउ॥
सिमरउ जास बिसुंभर एकै॥ नाम जपत अगनत अनेकै॥
बेद पुरान सिंम्रिति सुधाख्यर॥ कीने राम नाम इक आख्यर॥
किनका एक जिस जीअ बसावै॥ ता की महिमा गनी न आवै॥
कांखी एकै दरस तुहारो॥ नानक उन संग मोहे उधारो॥[1]

शब्दार्थ: बिसुंभर=सृष्टि का पालनहार; **आख्यर**=अक्षर, अविनाशी; **किनका**=थोड़ा-सा; **कांखी**=चाहवान।

भावार्थ: प्रभु के नाम का निरंतर सिमरन करने से सुखों की प्राप्ति होती है, शरीर के सब दुःख और क्लेश दूर हो जाते हैं। उस प्रभु का सिमरन करो जो संपूर्ण सृष्टि का एकमात्र पालनहार है। गुरु साहिब कहते हैं: उसका सिमरन करनेवाला एक मैं ही नहीं, बल्कि और भी अनगिनत लोग हैं।

वेदों, पुराणों और स्मृतियों के पवित्र वचन उस प्रभु के अविनाशी नाम के द्वारा ही रचे गए हैं। जिसके हृदय में परमेश्वर अपने नाम का एक कण भी बसा देता है, उसकी महिमा का बखान नहीं किया जा सकता। गुरु साहिब विनती करते हैं कि हे प्रभु! जो लोग इस तरह के निरंतर सिमरन के द्वारा तेरा दर्शन पाना चाहते हैं, उनके साथ मुझे भी उबार ले।

सुखमनी सुख अंम्रित प्रभ नाम॥ भगत जना कै मन बिस्राम॥
प्रभ कै सिमरन गरभ न बसै॥ प्रभ कै सिमरन दूख जम नसै॥
प्रभ कै सिमरन काल परहरै॥ प्रभ कै सिमरन दुसमन टरै॥
प्रभ सिमरत कछु बिघन न लागै॥ प्रभ कै सिमरन अनदिन जागै॥[2]

भावार्थ: अमर करनेवाला और सुखदायी प्रभु का नाम सब सुखों में शिरोमणि है। उस नाम का निवास स्थान परमेश्वर के प्रेमी भक्तों का हृदय है।

परमेश्वर के नाम का सिमरन करने पर फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। इस सिमरन का एक और लाभ यह है कि अभ्यासी को वे दुःख नहीं सहन करने पड़ते जो आम जीवों को यमराज के द्वारा दिए जाते हैं। सिमरन करने पर मनुष्य काल का दास नहीं रहता और आत्मा के शत्रु (काम, क्रोध आदि) उससे दूर रहते हैं, उसे परेशान नहीं करते।

नाम का सिमरन करने से रूहानियत के मार्ग की रुकावटें दूर हो जाती हैं; माया के भ्रम दूर हो जाते हैं; अज्ञान की नींद नहीं सताती, क्योंकि आत्मा की आँख सदा के लिए खुल जाती है।

प्रभ कै सिमरन भउ न बिआपै॥ प्रभ कै सिमरन दुख न संतापै॥
प्रभ का सिमरन साध कै संग॥ सरब निधान नानक हर रंग॥[3]

भावार्थ: प्रभु का सिमरन करनेवाला जीव हर प्रकार के भय से मुक्त हो जाता है; उसे न मौत से डर लगता है, न किसी मुसीबत से।

वह मालिक की रज़ा में रहता है और सिर पर आए हर कष्ट को ख़ुशी-ख़ुशी स्वीकार करता है। उसे कोई दुःख महसूस नहीं होता। प्रभु का सिमरन करने के लिए साधु की संगति की, उसके मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। प्रभु से प्रेम करने से हर कामना और इच्छा पूरी हो जाती है।

प्रभ कै सिमरन रिधि सिधि नउ निधि॥
प्रभ कै सिमरन गिआन धिआन तत बुधि॥
प्रभ कै सिमरन जप तप पूजा॥ प्रभ कै सिमरन बिनसै दूजा॥[4]

शब्दार्थ: रिधि=संपन्नता।

भावार्थ: जप, तप, पूजा आदि सब परमेश्वर के सिमरन में आ जाते हैं। इन क्रियाओं का जो भी फल होता है, वह सिमरन से अपने आप प्राप्त हो जाता है। सिमरन से द्वैत भाव ख़त्म हो जाता है। परमेश्वर का सिमरन करने से नौ प्रकार की निधियाँ और सब करामाती शक्तियाँ हासिल हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त इससे ज्ञान, ध्यान और यथार्थ के सार तक पहुँचने में समर्थ बुद्धि भी प्राप्त हो जाती है।

प्रभ कै सिमरन तीरथ इसनानी॥ प्रभ कै सिमरन दरगह मानी॥
प्रभ कै सिमरन होए सो भला॥ प्रभ कै सिमरन सुफल फला॥
से सिमरह जिन आप सिमराए॥ नानक ता कै लागउ पाए॥[5]

भावार्थ: प्रभु के नाम का सिमरन कर लिया तो समझ लो कि सब तीर्थों पर स्नान कर लिया। तीर्थों पर स्नान करने के जो भी लाभ माने जाते हैं—जैसे आत्मा का पवित्र हो जाना, पापों का बख़्शा जाना आदि—वे सभी सिमरन द्वारा सहज ही प्राप्त हो जाते हैं। प्रभु का सिमरन ही सच्चा तीर्थ स्थान है। सिमरन करनेवाला जीव मालिक की दरगाह में सम्मान प्राप्त करता है। प्रभु के सिमरन का अभ्यासी जो भी कर्म करता है, हितकारी होता है, क्योंकि उसका मन गुनाहों के प्रति सचेत रहता है। जो कुछ उसके साथ गुज़रती है, वह उसे

मालिक की रज़ा मानकर ख़ुशी से स्वीकार कर लेता है। सिमरन के प्रभाव से उसके जीवनरूपी वृक्ष में सुख-समृद्धि के फल लगते हैं। परमेश्वर का सिमरन हर कोई नहीं कर सकता, यह सौभाग्य उन व्यक्तियों को ही प्राप्त होता है जिन्हें प्रभु ख़ुद इस साधना के लिए प्रेरित करता है। गुरु साहिब कहते हैं कि मैं ऐसी भाग्यवान आत्माओं के आगे नतमस्तक होता हूँ।

प्रभ का सिमरन सभ ते ऊचा॥ प्रभ कै सिमरन उधरे मूचा॥
प्रभ कै सिमरन त्रिसना बुझै॥ प्रभ कै सिमरन सभ किछ सुझै॥[6]

शब्दार्थ: **मूचा**=बहुत-से।

भावार्थ: प्रभु से मिलाप के इच्छुक लोगों के लिए सिमरन सबसे उत्तम साधन है। इसी साधन को अपनाकर बहुत-से लोगों का उद्धार हुआ है। प्रभु का सिमरन करने से मन की तृष्णा शांत हो जाती है। जीव का विवेक जाग्रत हो जाता है और उसे लोक-परलोक की सूझ हो जाती है।

प्रभ कै सिमरन नाही जम त्रासा॥ प्रभ कै सिमरन पूरन आसा॥
प्रभ कै सिमरन मन की मल जाए॥ अंम्रित नाम रिद माहे समाए॥
प्रभ जी बसह साध की रसना॥ नानक जन का दासन दसना॥[7]

शब्दार्थ: **त्रासा**=ख़तरा, भय; **दासन दसना**=दासों का दास।

भावार्थ: जो प्रभु का सिमरन करता है, उसे धर्मराज के दूतों का भय नहीं सताता। उसकी अपने प्रभु से मिलाप की आशा पूरी हो जाती है। सिमरन के फलस्वरूप मन विकारों की मलिनता से मुक्त होता है और इससे अमृत जैसा मीठा और अमर जीवन बख़्शनेवाला नाम हृदय में स्थिर हो जाता है। इस प्रकार सिमरन करनेवाले साधु की ज़बान पर परमेश्वर ख़ुद आकर बस जाता है। गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि मैं ऐसी करनी वाले संतों के सेवकों का सेवक हूँ।

प्रभ कउ सिमरह से धनवंते॥ प्रभ कउ सिमरह से पतिवंते॥
प्रभ कउ सिमरह से जन परवान॥ प्रभ कउ सिमरह से पुरख प्रधान॥[8]

शब्दार्थ: **पतिवंते**=सम्माननीय, आदरणीय।

भावार्थ: जो व्यक्ति हरि का सिमरन करते हैं, वे सही अर्थों में धनवान हैं, सही अर्थों में आदरणीय हैं। प्रभु का सिमरन करनेवालों को कुलमालिक के दरबार में सम्मान प्राप्त होता है और वे ही गुरमुख कहलाने के अधिकारी होते हैं।

प्रभ कउ सिमरह से बेमुहताजे॥ प्रभ कउ सिमरह से सरब के राजे॥
प्रभ कउ सिमरह से सुखवासी॥ प्रभ कउ सिमरह सदा अबिनासी॥
सिमरन ते लागे जिन आप दइआला॥ नानक जन की मंगै रवाला॥[9]

शब्दार्थ: **रवाला**=चरण-धूलि।

भावार्थ: परमेश्वर का सिमरन करते रहने से किसी दूसरे पर निर्भर नहीं होना पड़ता, उन्हें किसी के अधीन नहीं रहना पड़ता। सिमरन करनेवालों का सब सम्मान करते हैं, उनका दूसरों के हृदय पर राज होता है। उन्हें स्थायी सुख प्राप्त होता है। उन्हें अमरपद की प्राप्ति हो जाती है। लेकिन सिमरन की साधना अपने आप करने से नहीं होती। इसमें वही रुचि लेते हैं जिनका मन प्रभु अपनी दया से ख़ुद इसकी ओर मोड़े। गुरु साहिब ऐसे जीवों की चरण-धूलि पाने के लिए प्रार्थना करते हैं।

प्रभ कउ सिमरह से परउपकारी॥ प्रभ कउ सिमरह तिन सद बलिहारी॥
प्रभ कउ सिमरह से मुख सुहावे॥ प्रभ कउ सिमरह तिन सूख बिहावै॥[10]

भावार्थ: प्रभु का सिमरन करनेवाले दूसरों का भला चाहते हैं, हितकारी होते हैं। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं कि मैं ऐसे अभ्यासियों पर सदा क़ुरबान जाता हूँ। सिमरन करनेवालों के चेहरे तेजमय होते हैं। उनका जीवन सुख और शांति से व्यतीत होता है।

प्रभ कउ सिमरह तिन आतम जीता॥
प्रभ कउ सिमरह तिन निरमल रीता॥
प्रभ कउ सिमरह तिन अनद घनेरे॥ प्रभ कउ सिमरह बसह हर नेरे॥
संत क्रिपा ते अनदिन जाग॥ नानक सिमरन पूरै भाग॥[11]

शब्दार्थ: रीता=जीवन का ढंग।

भावार्थ: जो प्रभु का सिमरन करते हैं, उन्होंने अपने मन को वश में करके अहं पर विजय प्राप्त की होती है, इसलिए वे विकारों से विचलित नहीं होते। वे जीवन का ऐसा ढंग अपना लेते हैं कि उनका मन हर प्रकार की मलिनता से मुक्त, सच्चा और पवित्र रहता है। प्रभु का सिमरन करनेवाले बड़े आनंद में रहते हैं और परमेश्वर उनके अंग-संग रहता है। जब संतों की दया होती है तो जीव किसी भी समय सिमरन करना भूलता नहीं, हर समय इसके प्रति सचेत रहता है। गुरु साहिब कहते हैं कि प्रभु की रहमत से ही जीव सिमरन करने में समर्थ होता है।

प्रभ कै सिमरन कारज पूरे॥ प्रभ कै सिमरन कबहु न झूरे॥
प्रभ कै सिमरन हर गुन बानी॥ प्रभ कै सिमरन सहज समानी॥[12]

शब्दार्थ: झूरे=पश्चात्ताप करना।

भावार्थ: प्रभु का सिमरन करने से सभी कार्य पूर्ण हो जाते हैं। हरि के सिमरन के अभ्यासी को यह पछतावा नहीं होता कि उसका जीवन व्यर्थ चला गया। अगर कोई विपत्ति या कठिनाई आ जाए तो वह उसे प्रभु का भाणा मानकर सहन कर लेता है। प्रभु का सिमरन करनेवाले के वचनों में हरि का गुणगान होता है। उसकी अवस्था सहज और स्थिर होती है।

प्रभ कै सिमरन निहचल आसन॥ प्रभ कै सिमरन कमल बिगासन॥
प्रभ कै सिमरन अनहद झुनकार॥ सुख प्रभ सिमरन का अंत न पार॥
सिमरह से जन जिन कउ प्रभ मइआ॥ नानक तिन जन सरनी पइआ॥[13]

शब्दार्थ: बिगासन=खिलता है; **अनहद झुनकार**=अनहद शब्द की ध्वनि; **मइआ**=दया।

भावार्थ: प्रभु का सिमरन करने से ध्यान में एकाग्रता आती है और जीव को निश्चल पद प्राप्त होता है। दुखों और चिंताओं से मुक्त हुए जीव का हृदय कमल की भाँति खिल जाता है। उसे अपने हृदय में अनहद शब्द का संगीत सुनाई देने लगता है। सिमरन से मिलनेवाले सुख की कोई सीमा नहीं। जिन लोगों पर प्रभु की दया-मेहर होती है, वे ही उसका सिमरन कर पाते हैं। गुरु साहिब कहते हैं कि मैं ऐसे महापुरुषों की शरण में आ गया हूँ।

हर सिमरन कर भगत प्रगटाए॥ हर सिमरन लग बेद उपाए॥
हर सिमरन भए सिध जती दाते॥ हर सिमरन नीच चहु कुंट जाते॥[14]

शब्दार्थ: कुंट=दिशाएँ; **जाते**=जाने जाते हैं।

भावार्थ: हरि के सिमरन से साधारण जन, भक्त के रूप में प्रसिद्ध हो जाते हैं। ऋषि-मुनियों ने वेदों, शास्त्रों और धर्मग्रंथों की रचना का सामर्थ्य प्रभु के नाम के सिमरन द्वारा ही प्राप्त किया। सिद्ध, यति और दानी होने का सौभाग्य भी प्रभु के सिमरन से प्राप्त होता है। हरि का सिमरन करने से अधम से अधम जीव का यश चारों दिशाओं में फैल सकता है।

हर सिमरन धारी सभ धरना॥ सिमर सिमर हर कारन करना॥
हर सिमरन कीओ सगल अकारा॥ हर सिमरन मह आप निरंकारा॥
कर किरपा जिस आप बुझाइआ॥
नानक गुरमुख हर सिमरन तिन पाइआ॥[15]

भावार्थ: गुरु साहिब समझाते हैं कि प्रभु ने यह रचना इसलिए उत्पन्न की है ताकि जीव उसके नाम के सिमरन द्वारा उसके साथ मिलाप कर सके। हरि के सिमरन में हरि ख़ुद समाया होता है।

प्रभु के सिमरन के साथ जुड़ा जीव उसी का रूप हो जाता है। जिसे परमेश्वर कृपा करके हरि सिमरन करने की सूझ दे देता है, वही किसी गुरमुख से प्रभु सिमरन की युक्ति (गुरुमंत्र) प्राप्त करता है।

साधु की महिमा

साध कै संग मुख ऊजल होत॥ साधसंग मल सगली खोत॥
साध कै संग मिटै अभिमान॥ साध कै संग प्रगटै सुगिआन॥[16]

भावार्थ: संत की संगति करनेवाले के मुख पर नूर छा जाता है, क्योंकि यह संगति विकारों तथा पापों की मैल को धो डालती है। साधु की संगति का एक और लाभ यह होता है कि मनुष्य अहंकार के दोष से मुक्त हो जाता है और उसे अपने अंदर श्रेष्ठ ज्ञान का अनुभव होता है।

साध कै संग बुझै प्रभ नेरा॥ साधसंग सभ होत निबेरा॥
साध कै संग पाए नाम रतन॥ साध कै संग एक ऊपर जतन॥[17]

भावार्थ: संत की संगति से उसे यह एहसास हो जाता है कि प्रभु उसके निकट ही है, उससे दूर नहीं। उसे हर प्रकार के द्वैत से, दुविधा से छुटकारा मिल जाता है। साधु के संग से उसे बहुमूल्य नामरूपी रत्न प्राप्त हो जाता है, तब साधना का सारा प्रयास केवल एक परमेश्वर की प्राप्ति के लिए केंद्रित हो जाता है। वह किसी अन्य फल की कामना नहीं करता।

साध की महिमा बरनै कउन प्रानी॥
नानक साध की सोभा प्रभ माहे समानी॥[18]

भावार्थ: ऐसे गुणनिधान साधु की महिमा का वर्णन कर पाना किसी भी प्राणी के बस की बात नहीं। गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि साधु

की महिमा प्रभु की महिमा में समाई होती है। जो महिमा प्रभु की है, वही साधु की है।

साध कै संग अगोचर मिलै॥ साध कै संग सदा परफुलै॥
साध कै संग आवह बस पंचा॥ साधसंग अंम्रित रस भुंचा॥[19]

शब्दार्थ: अगोचर=वह जो इंद्रियों का विषय नहीं; **पंचा**=पाँच विकार—काम, क्रोध आदि; **भुंचा**=पीना, आनंद पाना।

भावार्थ: प्रभु परमेश्वर अगोचर है यानी वह आँख, कान आदि इंद्रियों की पहुँच से परे है, लेकिन साधु की संगति से उस परमेश्वर से मिलाप हो जाता है। साधु की संगति में आया प्राणी सदा प्रसन्न रहता है। साधु की संगति से काम, क्रोध आदि पाँच विकार वश में आ जाते हैं। संतों की संगति करनेवाले शारीरिक सुखों से ऊपर उठकर नामरूपी अमृत के रस का आनंद लेने लगते हैं।

साधसंग होए सभ की रेन॥ साध कै संग मनोहर बैन॥
साध कै संग न कतहूं धावै॥ साधसंग असथित मन पावै॥[20]

शब्दार्थ: असथित=स्थिर।

भावार्थ: साधु की संगति में रहनेवाला जीव नम्रता धारण करके ऐसे व्यवहार करता है जैसे वह सबके चरणों की धूलि हो। वह मधुर वचन बोलता है और किसी का दिल नहीं दुखाता, बल्कि सुननेवाले के मन को मोह लेता है। साधु की संगति करनेवाले के मन की भटकन समाप्त हो जाती है, मन स्थिर हो जाता है।

साध कै संग माइआ ते भिंन॥ साधसंग नानक प्रभ सुप्रसंन॥
साधसंग दुसमन सभ मीत॥ साधू कै संग महा पुनीत॥[21]

भावार्थ: संतों की संगति करनेवाला माया से निर्लेप हो जाता है, यानी वह माया का गुलाम बनकर अपना जीवन व्यतीत नहीं करता। साधु की संगति उसे प्रभु की प्रसन्नता और कृपा का पात्र बना देती है।

यह मनुष्य के आचार-व्यवहार में कुछ ऐसी मिठास भर देती है कि उसके शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। वह रहनी, करनी और चरित्र की दृष्टि से पूरी तरह निर्मल और पवित्र हो जाता है।

साधसंग किस सिउ नही बैर॥ साध कै संग न बीगा पैर॥
साध कै संग नाही को मंदा॥ साधसंग जाने परमानंदा॥[22]

शब्दार्थ: **बीगा**=टेढ़ा, उलटा।

भावार्थ: उसके मन में किसी के लिए वैर-विरोध नहीं रहता। वह किसी ग़लत मार्ग पर पग नहीं रखता। साधु की संगति करने से उसे सब में आनंद-स्वरूप परमेश्वर दिखाई देता है, इसलिए वह किसी को बुरा नहीं समझता।

साध कै संग नाही हउ ताप॥ साध कै संग तजै सभ आप॥
आपे जानै साध बडाई॥ नानक साध प्रभू बन आई॥[23]

भावार्थ: साधु की संगति से उसे हौंमैं (अहं) का ताप नहीं चढ़ता। वह आपाभाव से पूरी तरह मुक्त हो जाता है। उसका प्रभु से इतना निकट संबंध हो जाता है कि वह प्रभु का रूप हो जाता है। इसलिए उसकी बड़ाई केवल परमेश्वर को ही मालूम होती है। इनसान उसका अनुमान नहीं लगा सकता।

साध कै संग न कबहू धावै॥ साध कै संग सदा सुख पावै॥
साधसंग बसत अगोचर लहै॥ साधू कै संग अजर सहै॥[24]

भावार्थ: साधु की संगति से जीव का मन इधर-उधर नहीं भटकता, सच्चे नाम में, अनहद शब्द में लीन रहता है। साधु की संगति से मिलनेवाला सुख स्थायी होता है। साधु की संगति करनेवाले को ऐसा पदार्थ मिल जाता है जो आँखों, कानों आदि इंद्रियों का विषय नहीं। साधु की संगति में वह असहनीय दुःख भी सहन कर लेता है। गुरु अर्जुन देव का एक अन्य कथन भी इसी भाव को दृढ़ करता है:

इछ पुंनी मेरी मन तन हरिआ जीउ॥
दरसन पेखत सभ दुख परहरिआ जीउ॥
हर हर नाम जपे जप तरिआ जीउ॥
इह अजर नानक सुख सहीऐ जीउ॥[25]

साध कै संग बसै थान ऊचै॥ साधू कै संग महल पहूचै॥
साध कै संग द्रिड़ै सभ धरम॥ साध कै संग केवल पारब्रहम॥
साध कै संग पाए नाम निधान॥ नानक साधू कै कुरबान॥[26]

भावार्थ: साधु की संगति करनेवाले का मन संसार की वस्तुओं और व्यक्तियों के मोह में नहीं उलझता। वह सदा उच्च आत्मिक मंडलों में विचरता है, यहाँ तक कि प्रभु के महल सचखंड तक उसकी पहुँच हो जाती है। साधु की संगति में उसे पूरी तरह समझ आ जाती है कि प्रभुभक्ति में सफल होने के लिए क्या करना उचित है, क्या करना उचित नहीं और उसका एकमात्र लक्ष्य होता है पारब्रह्म परमेश्वर से मिलाप। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसे साधु की संगति में नाम का भरपूर ख़ज़ाना मिल जाता है। मैं ऐसे साधु पर क़ुरबान जाता हूँ।

साध कै संग सभ कुल उधारै॥ साधसंग साजन मीत कुटंब निसतारै॥
साधू कै संग सो धन पावै॥ जिस धन ते सभ को वरसावै॥[27]

शब्दार्थ: **वरसावै**=लाभ मिलता है।

भावार्थ: साधु की संगति के फलस्वरूप जीव का केवल अपना ही उद्धार नहीं होता, उससे मिली प्रेरणा से यानी नाम के अभ्यास द्वारा उसके कुल का भी उद्धार हो जाता है। साधु की संगति में आनेवाले जीव के दोस्त-मित्र और परिवार भी संसार-सागर से पार हो जाते हैं। साधु की संगति से उसे नाम का वह धन प्राप्त हो जाता है जिससे हर एक को लाभ होता है।

साधसंग धरम राए करे सेवा॥ साध कै संग सोभा सुरदेवा॥
साधू कै संग पाप पलाइन॥ साधसंग अंम्रित गुन गाइन॥
साध कै संग स्रब थान गंम॥ नानक साध कै संग सफल जनंम॥[28]

भावार्थ: धर्मराज भी साधु की संगति करनेवाले अभ्यासी की सेवा करता है और वह साधक देवताओं तक से सम्मान पाता है। साधु की संगति में हरि के गुण गाने का सौभाग्य प्राप्त होता है और पाप नष्ट होते हैं। साधु की संगति से जीव की सब आंतरिक मंडलों में पहुँच हो जाती है और उसका जन्म सफल हो जाता है।

साध कै संग नही कछु घाल॥ दरसन भेटत होत निहाल॥
साध कै संग कलूखत हरै॥ साध कै संग नरक परहरै॥[29]

शब्दार्थ: **घाल**=कठोर साधना (जैसे तप); **निहाल**=प्रसन्न; **कलूखत**=पापों की मैल।

भावार्थ: साधु की संगति में कठोर तप जैसी कोई साधना नहीं करनी पड़ती, कोई विशेष प्रकार की शारीरिक कठिनाइयाँ नहीं सहनी पड़तीं। साधु के दर्शन मात्र से ही जीव निहाल हो जाता है। साधु की संगति से पापों की मैल दूर हो जाती है और नरक से बचाव हो जाता है।

साध कै संग ईहा ऊहा सुहेला॥ साधसंग बिछुरत हर मेला॥
जो इछै सोई फल पावै॥ साध कै संग न बिरथा जावै॥
पारब्रहम साध रिद बसै॥ नानक उधरै साध सुन रसै॥[30]

शब्दार्थ: **सुहेला**=सुखी; **रसै**=रसमय अर्थात् अमृतमय।

भावार्थ: साधु की संगति से लोक और परलोक दोनों सुखमय हो जाते हैं और न जाने कितने जन्मों से बिछुड़े हरि से मिलाप हो जाता है। साधु की संगति कभी व्यर्थ नहीं जाती, बल्कि मन की सभी कामनाएँ पूरी कर देती है। स्वयं परमेश्वर साधु के हृदय में बसता है। साधु के अमृतमय वचन सुनने से उद्धार हो जाता है।

साध कै संग सुनउ हर नाउ॥ साधसंग हर के गुन गाउ॥
साध कै संग न मन ते बिसरै॥ साधसंग सरपर निसतरै॥[31]

शब्दार्थ: **सरपर**=अवश्य।

भावार्थ: साधु के संग से परमात्मा का नाम (शब्द) मन में बसा रहता है और सुनाई भी देता है। जीव सदा उसकी महिमा का बखान करता है। साधु की संगति में रहने से परमेश्वर की याद सदा बनी रहती है। इस प्रकार साधु की संगति आवागमन के चक्र से मुक्ति प्राप्त करने का अचूक साधन बन जाती है।

साध कै संग लगै प्रभ मीठा॥ साधू कै संग घट घट डीठा॥
साधसंग भए आगिआकारी॥ साधसंग गति भई हमारी॥
साध कै संग मिटे सभ रोग॥ नानक साध भेटे संजोग॥[32]

भावार्थ: साधु की संगति करने से प्रभु से प्रेम जाग्रत हो जाता है और यह एहसास होने लगता है कि वह हर हृदय में बसा हुआ है। साधु की संगति और उपदेश में रहता हुआ जीव परमेश्वर के हुक्म, उसकी रज़ा में रहने लगता है। इस संगति से ही ऐसी अवस्था प्राप्त होती है। साधु की संगति के प्रताप से सब रोगों (तन और मन के) से छुटकारा हो जाता है। यह उत्तम अवस्था बख़्शनेवाले साधु का मिलाप बड़े सौभाग्य से प्राप्त होता है।

साध की महिमा बेद न जानह॥ जेता सुनह तेता बखिआनह॥
साध की उपमा तिहु गुण ते दूर॥ साध की उपमा रही भरपूर॥[33]

भावार्थ: साधु की बेअंत महिमा का ज्ञान वेदों से भी प्राप्त नहीं हो सकता, क्योंकि उनमें साधु की महिमा का उतना ही व्याख्यान किया गया है जितना पूर्वजों से सुनने में आया है। साधु की महिमा तीनों गुणों से ऊपर है। उसकी शोभा संपूर्ण रचना में झलकती है।

साध की सोभा का नाही अंत॥ साध की सोभा सदा बेअंत॥
साध की सोभा ऊच ते ऊची॥ साध की सोभा मूच ते मूची॥
साध की सोभा साध बन आई॥ नानक साध प्रभ भेद न भाई॥[34]

शब्दार्थ: मूच=बड़ा।

भावार्थ: साधु की शोभा और महिमा अनंत है, इसका कोई पारावार नहीं है। ऐसी शोभा केवल साधु की ही हो सकती है क्योंकि साधु और परमेश्वर एक दूसरे से अभिन्न होते हैं, उनमें कोई अंतर नहीं होता।

बारह माहा

समय-समय पर बदलती छः ऋतुओं की शृंखला एक वर्ष में सिमट जाती है। एक वर्ष को मनुष्य ने अपनी सुविधा के अनुसार बारह महीनों में बाँट रखा है। हर ऋतु और हर महीने की अपनी विशेष प्रकृति है और यह मनुष्य के मन को उसकी निजी प्रकृति के अनुसार प्रभावित करती है। प्रभु के मिलाप के लिए तड़पती विरहिणी आत्मा पर अलग-अलग बारह महीनों के दौरान क्या गुज़रती है, इसका वर्णन गुरु साहिब ने अपनी प्रसिद्ध वाणी 'बारह माहा' में किया है। 'बारह माहा' आपकी एक विशेष लोकप्रिय रचना है।

किरत करम के वीछुड़े कर किरपा मेलहो राम॥
चार कुंट दह दिस भ्रमे थक आए प्रभ की साम॥
धेन दुधै ते बाहरी कितै न आवै काम॥
जल बिन साख कुमलावती उपजह नाही दाम॥
हर नाह न मिलीऐ साजनै कत पाईऐ बिसराम॥
जित घर हर कंत न प्रगटई भठ नगर से ग्राम॥[1]

शब्दार्थ: नाह=पति।

भावार्थ: अपने सिरजनहार से बिछुड़कर आवागमन का संताप सह रही अनगिनत आत्माओं की ओर से गुरु अर्जुन देव प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु! हम अपने पिछले जन्मों में किए कर्मों के फलस्वरूप अब तक आपसे बिछुड़े हुए हैं और दसों दिशाओं में तरह-तरह की अनेक योनियों में भटकते हुए अब थककर आपकी शरण में आए हैं। अब कृपा करें कि हमारा आपसे मिलाप हो जाए, हम आपमें

समा जाएँ। जब गाय दूध देना बंद कर दे, तो वह किसी काम की नहीं रहती। पानी की कमी के कारण फ़सल सूख जाए तो उसका कोई मूल्य नहीं मिलता, इसी प्रकार अगर आत्मा अपने प्रियतम प्रभु के मिलाप से वंचित रह जाए तो उसका जीवन दु:खपूर्ण रहता है और उसे किसी तरह चैन नहीं मिलता। जिस जीव के हृदय में प्रियतम के प्रेम का प्रकाश नहीं होता, उसे अपनी काया ही नहीं, बल्कि अपना गाँव और शहर भी आग की भट्ठी के समान लगते हैं।

सब सीगार तंबोल रस सण देही सभ खाम॥
प्रभ सुआमी कंत विहूणीआ मीत सजण सभ जाम॥
नानक की बेनंतीआ कर किरपा दीजै नाम॥
हर मेलहो सुआमी संग प्रभ जिस का निहचल धाम॥[2]

शब्दार्थ: तंबोल=पान; **खाम**=बेकार; **जाम**=धर्मराज के दूत।

भावार्थ: जब तक कंत का संग प्राप्त न हो, कामिनी के लिए होंठ लाल करनेवाले पान और शरीर को सुंदर बनानेवाले सभी शृंगार बेकार हैं। मित्र, संबंधी भी यदि दिखाई दें तो उसे अच्छे नहीं लगते, मानों वे यमदूत हों।

गुरु अर्जुन देव विनती करते हैं कि हे सतगुरु! मुझे नाम की दात बख़्शकर मेरे स्वामी प्रभु से मिला दो, जिसका निवास-स्थान अविनाशी सचखंड है और जिससे मिलाप हो जाने पर संसार में वापस नहीं आना पड़ता।

चेत गोविंद अराधीऐ होवै अनंद घणा॥
संत जना मिल पाईऐ रसना नाम भणा॥
जिन पाइआ प्रभ आपणा आए तिसह गणा॥
इक खिन तिस बिन जीवणा बिरथा जनम जणा॥

जल थल महीअल पूरिआ रविआ विच वणा॥
सो प्रभ चित न आवई कितड़ा दुख गणा॥
जिनी राविआ सो प्रभू तिंना भाग मणा॥
हर दरसन कंउ मन लोचदा नानक पिआस मना॥
चेत मिलाए सो प्रभू तिस कै पाए लगा॥[3]

शब्दार्थ: भणा=उच्चारण करना; **गणा**=गिनना, मानना; **जणा**=जानना; **रविआ**=समाया; **राविआ**=आनंद प्राप्त किया।

भावार्थ: चैत के महीने की उपमा मनुष्य जन्म से करते हुए गुरु साहिब कहते हैं कि प्रभु प्रियतम की आराधना और भक्ति द्वारा ही सच्चा और पूर्ण आनंद प्राप्त हो सकता है। जिस नाम का सिमरन रसना द्वारा करना है, उस नाम का भेद संतों से प्राप्त होता है। जो नामभक्ति के मार्ग पर चलकर प्रियतम को पा लेता है, उसी का संसार में आना सफल है। प्रभु को पलभर के लिए भी भुलाना, अपने जन्म को व्यर्थ गँवा देना है। जो प्रभु जल में, थल में, वन में, आकाश में अर्थात् ब्रह्मांड के कण-कण में रमा हुआ है, उसे भुला देना अपार दु:ख की बात है। जिन्होंने उसके मिलाप का आनंद प्राप्त कर लिया, उन्हें अति सौभाग्यशाली मानना चाहिए। गुरु साहिब कहते हैं कि मेरे मन में भी प्रभु के दर्शन की प्रबल इच्छा है। मैं भी उसके दर्शन का प्यासा हूँ। इस चैत मास में जो मुझे उससे मिला दे, मैं उसके चरणों पर नतमस्तक हो जाऊँगा।

वैसाख धीरन किउ वाढीआ जिना प्रेम बिछोह॥
हर साजन पुरख विसार कै लगी माइआ धोह॥
पुत्र कलत्र न संग धना हर अविनासी ओह॥
पलच पलच सगली मुई झूठै धंधै मोह॥
इकस हर के नाम बिन अगै लईअह खोह॥

दयु विसार विगुचणा प्रभ बिन अवर न कोए॥
प्रीतम चरणी जो लगे तिन की निरमल सोए॥
नानक की प्रभ बेनती प्रभ मिलहो परापत होए॥
वैसाख सुहावा तां लगै जा संत भेटै हर सोए॥[4]

शब्दार्थ: **धीरन**=धैर्य धारण करना; **वाढीआ**=बिछुड़ी हुई; **धोह**=धोखा; **पलच पलच**=उलझ-उलझकर; **दयु**=परमात्मा; **विगुचणा**=ख़्वार होना; **सोए**=शोभा।

भावार्थ: प्रभु से बिछुड़ी हुई जीवात्मारूपी स्त्रियाँ जो पति के प्रेम से वंचित हैं और अपने प्रियतम को भुलाकर माया के छल का शिकार हो गई हैं, वे बैसाख के महीने में कैसे धीरज रखें? उनको यह ज्ञान नहीं है कि अंत समय पुत्र-पुत्री, पति-पत्नी या दौलत किसी को हमारे साथ नहीं जाना। वह अविनाशी प्रभु ही हमारा असली साथी है। सारी दुनिया माया के झूठे धंधों में उलझकर मर रही है। एक प्रभु के नाम के अलावा सब कुछ रास्ते में ही छिन जाता है। असल में परमेश्वर के सिवाय और कोई अपना नहीं, इसलिए उसे भुलाकर दु:ख ही उठाने पड़ते हैं। जो जीवात्माएँ प्रियतम के चरणों की शरण में आ जाती हैं, सच्ची शोभा उन्हीं को प्राप्त होती है। गुरु साहिब परमेश्वर से विनती करते हैं कि आप मेरे हृदय में प्रकट हो जाएँ। बैसाख के महीने में मुझे सुख का अनुभव तभी होगा जब संतों की संगति से उस प्रभु के साथ मिलाप हो जाए।

हर जेठ जुड़ंदा लोड़ीऐ जिस अगै सभ निवंन॥
हर सजण दावण लगिआ किसै न देई बंन॥
माणक मोती नाम प्रभ उन लगै नाही संन॥
रंग सभे नाराइणै जेते मन भावंन॥
जो हर लोड़े सो करे सोई जीअ करंन॥
जो प्रभ कीते आपणे सेई कहीअह धंन॥

आपण लीआ जे मिलै विछुड़ किउ रोवंन॥
साधू संग परापते नानक रंग माणंन॥
हर जेठ रंगीला तिस धणी जिस कै भाग मथंन॥[5]

शब्दार्थ: **बंन**=बाँधकर; **मथंन**=मस्तक।

भावार्थ: जेठ के महीने में उस प्रभु से जुड़ने की कामना करनी चाहिए जिसके आगे सब नतमस्तक हो जाते हैं। अगर उस साजन का दामन पकड़ लिया जाए, तो फिर वह बंदी बनाकर हमें किसी और (यानी यमदूतों) के सुपुर्द नहीं करता, शरण आए की लाज रखता है। परमात्मा का नाम ऐसा अनुपम लाल या मोती है जिसे कोई चुरा नहीं सकता। यह दौलत जिसने कमा ली, उसी के पास रहती है। प्रभु सब मनोवांछित सुख प्रदान करने में सक्षम है। उसके रंग न्यारे हैं। हरि वही करता है जो उसको मंज़ूर होता है और जीवों को भी वही करना पड़ता है जो उस हरि को प्रिय है। धन्य हैं वे जीव जिन्हें प्रभु अपना बना लेता है। लेकिन उसकी शरण का सौभाग्य अपनी इच्छा से प्राप्त नहीं किया जा सकता। अगर ऐसा करना अपने वश में होता, तो जिन्हें वह नहीं मिला, वे वियोग का दु:ख क्यों सहन करते? प्रभु की प्राप्ति का आनंद वही पाता है जिसको साधु का संग प्राप्त हो जाता है। वह आनंदस्वरूप प्रभु उसी को प्राप्त होता है जिसके भाग्य में लिखा हो। मनुष्य जन्मरूपी जेठ का महीना भी उसी के लिए आनंददायक होता है।

आसाड़ तपंदा तिस लगै हर नाह न जिंना पास॥
जगजीवन पुरख तिआग कै माणस संदी आस॥
दुयै भाए विगुचीऐ गल पईस जम की फास॥
जेहा बीजै सो लुणै मथै जो लिखिआस॥
रैण विहाणी पछुताणी उठ चली गई निरास॥
जिन कौ साधू भेटीऐ सो दरगह होए खलास॥

कर किरपा प्रभ आपणी तेरे दरसन होए पिआस॥
प्रभ तुध बिन दूजा को नही नानक की अरदास॥
आसाड़ सुहंदा तिस लगै जिस मन हर चरण निवास॥[6]

शब्दार्थ: **नाह**=पति; **संदी**=की; **दुयै भाए**=प्रभु के सिवाय किसी और से प्रीति करना; **विगुचीऐ**=ख़्वार होना; **रैण**=रात यानी उम्र; **खलास**= मुक्ति।

भावार्थ: आषाढ़ महीने की गरमी उस जीवात्मा को सताती है जिसका प्रभुरूपी पति उसके साथ नहीं अर्थात् जिसने जगत के सिरजनहार की ओर से मुँह फेरकर मनुष्य का सहारा ले रखा है। प्रभु को छोड़ किसी और पर निर्भर होना, जीते-जी ख़्वार होना है और मौत के बाद यम का फंदा गले में डालना है। जो फ़सल हम बीजते हैं, वही फ़सल हमें काटनी पड़ती है; जीव का भाग्य उसके मस्तक पर लिखे कर्मों के अनुसार होता है। प्रभु के प्रेम से विहीन जीवात्मा की उम्र जब बीत जाती है तो वह पछताती हुई निराश मन लिए संसार से विदा होती है। जिन जीवात्माओं को पूर्ण साधु मिल जाए, उनको मालिक की दरगाह में किसी रोक, बंदिश या सज़ा का सामना नहीं करना पड़ता। गुरु साहिब कहते हैं कि हे प्रभु! तेरे सिवाय मेरा और कोई नहीं है। इसलिए मेरी विनती है कि मन में तेरे दर्शन की प्यास बनी रहे और कोई दूसरा मेरे मन में न बसे। आषाढ़ का महीना उसी को सुहावना और सुखमय लगता है जिसके हृदय में हरि चरणों का निवास हो जाता है।

सावण सरसी कामणी चरन कमल सिउ पिआर॥
मन तन रता सच रंग इको नाम अधार॥
बिखिआ रंग कूड़ाविआ दिसन सभे छार॥
हर अंम्रित बूंद सुहावणी मिल साधू पीवणहार॥
वण तिण प्रभ संग मउलिआ संम्रथ पुरख अपार॥
हर मिलणै नो मन लोचदा करम मिलावणहार॥

जिनी सखीए प्रभ पाइआ हंउ तिन कै सद बलिहार॥
नानक हर जी मइआ कर सबद सवारणहार॥
सावण तिना सुहागणी जिन राम नाम उर हार॥[7]

शब्दार्थ: **रंग**=प्रेम; **कूड़ाविआ**=झूठे; **वण तिण**=वनस्पति; **मउलिआ**=खिल उठा; **करम**=दया; **मइआ**=मेहर।

भावार्थ: सावन के महीने में प्रभु के चरण-कमलों से प्रीति करनेवाली जीवात्मारूपी स्त्री आनंद से प्रफुल्लित है। उसका तन और मन दोनों प्रभु की प्रीति में लीन हैं। अब उसका एकमात्र सहारा उस मालिक का नाम है। उसे विषयों के आनंद झूठे, बेस्वाद और ख़ाक जैसे लगते हैं। साधु के मिल जाने से वह हरिनाम का अमृत पीने में सफल हो गई है। उसे अनंत सर्वसमर्थ प्रभु के संग से सारी वनस्पति हरी-भरी लग रही है। जीवात्मा को हरि के प्रेम का आनंद लेते देखकर मेरे मन में भी उस प्रियतम से मिलने की कामना जाग उठी है, पर यह उसकी बख़्शिश से ही पूरी होगी। मैं अपनी उन सखी आत्माओं पर बलिहारी जाती हूँ जिन्होंने उसे पा लिया है। गुरु साहिब प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु! दया करके मुझे शब्द के द्वारा आत्मा को सँवारनेवाले संत की संगति बख़्शो, क्योंकि शब्द-अभ्यास गुरु के उपदेश के बिना अपने आप नहीं किया जा सकता। सावन का महीना उन सुहागिन आत्माओं के लिए सुखदायक होता है जिन्होंने परमेश्वर के नाम को अपने हृदय का हार बना लिया हो।

भादुइ भरम भुलाणीआ दूजै लगा हेत॥
लख सीगार बणाइआ कारज नाही केत॥
जित दिन देह बिनससी तित वेलै कहसन प्रेत॥
पकड़ चलाइन दूत जम किसै न देनी भेत॥
छड खड़ोते खिनै माहे जिन सिउ लगा हेत॥
हथ मरोड़ै तन कपे सिआहहो होआ सेत॥

जेहा बीजै सो लुणै करमा संदड़ा खेत॥
नानक प्रभ सरणागती चरण बोहिथ प्रभ देत॥
से भादुइ नरक न पाईअह गुर रखण वाला हेत॥[8]

शब्दार्थ: हेत=प्यार; **संदड़ा**=का; **सेत**=सफ़ेद; **बोहिथ**=जहाज़।

भावार्थ: जो आत्माएँ भ्रमवश एक परमात्मा को छोड़कर किसी और से प्रेम करती हैं, उन्होंने चाहे कितने ही शुभ कर्मरूपी शृंगार किए हों, परमार्थ की दृष्टि से उन्हें सफलता प्राप्त नहीं होती। जिस दिन शरीर का अंत हो जाएगा, घर के और पराए, सब लोग उसको प्रेत कहेंगे। धर्मराज के दूत उसे पकड़कर ले जाएँगे और किसी को पता भी नहीं चलेगा कि वे उसे किधर ले गए हैं। जिनसे उसका मोह और प्यार रहा, वे क्षण भर में उससे संबंध तोड़ लेते हैं। मौत के समय जीव अपना जीवन व्यर्थ गँवा देने के कारण हाथ मलता रह जाता है। दुर्दशा के भय से उसकी देह में कँपकँपी होने लगती है और चेहरे का रंग सफ़ेद पड़ जाता है। उस समय उसका कोई बस नहीं चलता, कर्मों की जो फ़सल उसने जीवन में बोई है, मौत के बाद वही उसे काटने को मिलती है। गुरु साहिब बताते हैं कि जो कोई प्रभु की शरण में आ जाता है, वह भवसागर से पार हो जाता है। जिनका रक्षक प्रेमस्वरूप गुरु हो, उन जीवों को नरकों में नहीं जाना पड़ता। उन्हें हमेशा गुरु का संरक्षण प्राप्त होता है।

असुन प्रेम उमाहड़ा किउ मिलीऐ हर जाए॥
मन तन पिआस दरसन घणी कोई आण मिलावै माए॥
संत सहाई प्रेम के हउ तिन कै लागा पाए॥
विण प्रभ किउ सुख पाईऐ दूजी नाही जाए॥
जिंन्ही चाखिआ प्रेम रस से त्रिपत रहे आघाए॥
आप तिआग बिनती करह लेहो प्रभू लड़ लाए॥
जो हर कंत मिलाईआ से विछुड़ कतह न जाए॥

प्रभ विण दूजा को नही नानक हर सरणाए॥
असू सुखी वसंदीआ जिना मइआ हर राए॥[9]

भावार्थ: क्वार (असोज) महीने के वर्णन में उपदेश है कि जीव के मन में प्रभु की प्रीति उमड़ पड़ी है और वह सोचता है कि उससे कैसे मिलाप किया जाए। उसका तन और मन प्रभु के दर्शनों के लिए तरसते हैं। जी चाहता है कि कोई आए और उससे मिलाप करा दे। केवल संतजन ही प्रभु प्रेम में सहायक होते हैं, इसलिए अपनी कामना की पूर्ति के लिए उनके चरणों की शरण लेनी चाहिए। उस प्रभु के बिना सुख कैसे मिल सकता है? सुख का और कोई साधन नहीं है। जो उसके प्रेम का रस चख लेते हैं, वे सदा के लिए तृप्त हो जाते हैं। हमें भी आपाभाव छोड़कर विनम्र होकर विनती करनी चाहिए कि प्रभु हमें भी अपने चरणों में स्थान दे। जिन प्रेमी जीवात्माओं को प्रभु प्रियतम अपने साथ मिला लेता है, उनको फिर उससे बिछुड़ने का संताप नहीं सहना पड़ता। गुरु साहिब कहते हैं कि हरि के सिवाय मेरा और कोई नहीं है, इसलिए मैंने उसी की शरण ली है। जिन जीवात्माओं पर प्रभु प्रियतम की कृपा हो जाती है, वे सदा सुखी रहती हैं।

कतिक करम कमावणे दोस न काहू जोग॥
परमेसर ते भुलिआं विआपन सभे रोग॥
वेमुख होए राम ते लगन जनम विजोग॥
खिन मह कउड़े होए गए जितड़े माइआ भोग॥
विच न कोई कर सकै किस थै रोवह रोज॥
कीता किछू न होवई लिखिआ धुर संजोग॥
वडभागी मेरा प्रभ मिलै तां उतरह सभ बिओग॥
नानक कउ प्रभ राख लेह मेरे साहिब बंदी मोच॥
कतिक होवै साधसंग बिनसह सभे सोच॥[10]

शब्दार्थ: विच=मध्यस्थता; **थै**=पास।

भावार्थ: कार्तिक मास के इस शब्द में यह उपदेश दिया गया है कि हर किसी को अपने किए कर्मों का फल भोगना पड़ता है। कोई किसी और को दोषी नहीं ठहरा सकता। कर्म उसके अपने ही कमाए हुए होते हैं। परमेश्वर को भुलाने से जीव को तन, मन और आत्मा, सभी तरह के रोग लग जाते हैं। जो प्रभु की ओर से विमुख हो जाते हैं, उन्हें जन्म-जन्मांतरों तक वियोग का संताप सहना पड़ता है। माया के भोगों का रस क्षणमात्र के लिए ही स्वादिष्ट होता है और पीछे कड़वापन (दु:ख और पश्चात्ताप) छोड़ जाता है। कर्मों को भुगतने के मामले में कोई बीच-बचाव नहीं कर सकता। फिर आपबीती का दु:ख रोज़-रोज़ किसके पास जाकर रोया जाए? जीव के अपने बल से कुछ नहीं हो सकता, होता वही है जो धुर से भाग्य में लिखा है। अगर सौभाग्य से किसी का प्रभु से मिलाप हो जाए, तो उसका जन्म-जन्मांतरों का वियोग ख़त्म हो जाता है। गुरु साहिब प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु! तू मुझे बंधन मुक्त कर दे। कार्तिक के महीने से यही उपदेश है कि अगर साधु (गुरु) की संगति प्राप्त हो जाए तो हर प्रकार की चिंता का अंत हो जाता है।

मंघिर माहे सोहंदीआ हर पिर संग बैठड़ीआह॥
तिन की सोभा किआ गणी जे साहिब मेलड़ीआह॥
तन मन मउलिआ राम सिउ संग साध सहेलड़ीआह॥
साध जना ते बाहरी से रहन इकेलड़ीआह॥
तिन दुख न कबहू उतरै से जम कै वस पड़ीआह॥
जिनी राविआ प्रभ आपणा से दिसन नित खड़ीआह॥
रतन जवेहर लाल हर कंठ तिना जड़ीआह॥
नानक बांछै धूड़ तिन प्रभ सरणी दर पड़ीआह॥
मंघिर प्रभ आराधणा बहुड़ न जनमड़ीआह॥[11]

शब्दार्थ: राविआ=आनंद लिया।

भावार्थ: अगहन (मघर) के महीने में जो आत्माएँ गहरी प्रीति का शृंगार करती हैं, प्रभु प्रियतम उनके अंग-संग रहता है और वे उसके दरबार में शोभा पाती हैं। जिनकी प्रेमपूर्ण भक्ति को स्वीकार करके उस मालिक ने अपने साथ मिला लिया हो, उनकी शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। जिन्हें संतों की संगति प्राप्त हो जाती है, उनका तन, मन प्रभु के प्रेम में प्रफुल्लित रहता है। इसके विपरीत जो संतों की दया-मेहर से वंचित रह जाती हैं, वे उसके वियोग का संताप सहती हैं और संसार छोड़ने पर यमदूतों के वश में पड़ जाती हैं। जिन्होंने प्रियतम को अपने हृदय में बसाकर उससे मिलाप का रस प्राप्त कर लिया हो, वे मानों सदा उसकी हुज़ूरी में रहती हैं। उनके गले में हरिनाम के रत्न, जवाहर, लाल सुसज्जित हैं। गुरु साहिब को उन सौभाग्यशाली आत्माओं की चरण-धूलि की चाह है जो प्रभु की शरण प्राप्त करके उसके द्वार पर, उसकी शरण में पहुँच गई हैं। आप फ़रमाते हैं कि मनुष्य जन्मरूपी अगहन के महीने में जी-जान से प्रभु का सिमरन किया जाए तो पुनर्जन्म के बंधन से मुक्ति मिल जाती है।

पोख तुखार न विआपई कंठ मिलिआ हर नाह॥
मन बेधिआ चरनारबिंद दरसन लगड़ा साह॥
ओट गोविंद गोपाल राए सेवा सुआमी लाह॥
बिखिआ पोह न सकई मिल साधू गुण गाह॥
जह ते उपजी तह मिली सची प्रीत समाह॥
कर गह लीनी पारब्रहम बहुड़ न विछुड़ीआह॥
बार जाउ लख बेरीआ हर सजण अगम अगाह॥
सरम पई नाराइणै नानक दर पईआह॥
पोख सोहंदा सरब सुख जिस बखसे वेपरवाह॥[12]

शब्दार्थ: **पोख**=पूस; **साह**=श्वास; **पोह**=प्रभावित करना।

भावार्थ: पूस के महीने में सर्दी अपने यौवन पर होती है, लेकिन जिस आत्मारूपी स्त्री को प्रभु प्रियतम का संग प्राप्त

होता है, उसको दुखों की सर्दी नहीं सताती। उसका मन हरि के चरण-कमलों से ऐसे जुड़ा रहता है जैसे उनसे बिंध गया हो और मालिक के दर्शन ही उसकी साँसों का आधार बन जाते हैं। वह सृष्टि के सिरजनहार और प्रतिपालक के सहारे जीती है और उसकी सेवा का फल प्राप्त करती है। माया उसे प्रभावित नहीं कर पाती और वह साधु की संगति में हरि की महिमा गाने में जुटी रहती है। सच्ची और पवित्र प्रीति में मग्न वह अंत में अपने स्रोत प्रभु में जा समाती है। एक बार परमात्मा उसका हाथ थामकर उसे अपना बना ले, तो फिर उसे कभी वियोग नहीं सहना पड़ता। गुरु साहिब कहते हैं कि मैं लाख बार उस अगम और अथाह हरि पर क़ुरबान जाता हूँ। परमेश्वर अपने द्वार पर, अपनी शरण में आए जीवों के प्रति अपने बिरद का पालन करता है। जिसे उस बेपरवाह प्रभु की बख़्शिश प्राप्त हो जाए, उसके लिए पूस का महीना सारे सुखों से परिपूर्ण और रसमय हो जाता है।

माघ मजन संग साधूआ धूड़ी कर इसनान॥
हर का नाम धिआए सुण सभना नो कर दान॥
जनम करम मल उतरै मन ते जाए गुमान॥
काम करोध न मोहीऐ बिनसै लोभ सुआन॥
सचै मारग चलदिआ उसतत करे जहान॥
अठसठ तीरथ सगल पुंन जीअ दइआ परवान॥
जिस नो देवै दइआ कर सोई पुरख सुजान॥
जिना मिलिआ प्रभ आपणा नानक तिन कुरबान॥
माघ सुचे से कांढीअह जिन पूरा गुर मिहरवान॥[13]

शब्दार्थ: कांढीअह=कहलाते हैं।

भावार्थ: माघ के महीने में संतों की संगति उत्तम तीर्थ स्थान है। उनके चरण-कमलों की धूलि से अपने अंतर को पवित्र करना चाहिए। प्रभु के नाम का सिमरन करना, उसे सुनना तथा सबको

ऐसा करने की प्रेरणा देना उत्तम है। हरिनाम का सिमरन करने और उसे सुनने से जन्मों-जन्मों के कर्मों की मैल धुल जाती है तथा मन से अहंकार लुप्त हो जाता है। नाम की साधना करनेवाले काम और क्रोध को वश में कर लेते हैं तथा लोभरूपी कुत्ते का विनाश हो जाता है। इस सच्चे मार्ग पर चलनेवाले जीव की महिमा सारा संसार गाता है। अड़सठ तीर्थों में स्नान, दान और दया आदि के जो भी शुभ कर्म हैं, उन सबका फल प्रभु के नाम का सिमरन करने से सहज ही प्राप्त हो जाता है। परमेश्वर अपनी कृपा से जिसे नाम की दात बख़्श देता है, सही अर्थों में वही सुजान और ज्ञानी है। गुरु साहिब उन पर क़ुरबान जाते हैं जिनका अपने प्रभु से मिलाप हो गया। माघ के महीने में उन्हीं को पवित्र कहा जा सकता है जो गुरु के कृपापात्र बन गए हैं।

फलगुण अनंद उपारजना हर सजण प्रगटे आए॥
संत सहाई राम के कर किरपा दीआ मिलाए॥
सेज सुहावी सरब सुख हुण दुखा नाही जाए॥
इछ पुनी वडभागणी वर पाइआ हर राए॥
मिल सहीआ मंगल गावही गीत गोविंद अलाए॥
हर जेहा अवर न दिसई कोई दूजा लवै न लाए॥
हलत पलत सवारिओन निहचल दितीअन जाए॥
संसार सागर ते रखिअन बहुड़ न जनमै धाए॥
जिहवा एक अनेक गुण तरे नानक चरणी पाए॥
फलगुण नित सलाहीऐ जिस नो तिल न तमाए॥[14]

भावार्थ: जिनके हृदय में प्रभु प्रियतम प्रकट हो गया है, वे अब उसके मिलाप का आनंद पा रहे हैं। संतजन प्रभु से मिलाप के अभिलाषियों की सहायता करते हैं और फाल्गुन में होनेवाला आत्मा और परमात्मा का मिलाप भी उनकी कृपा से ही हुआ है। प्रभु प्रियतम के प्रकट होने पर विरहिणी आत्मा को सभी सुख प्राप्त

हो गए हैं। उसे अपने हृदय की सेज सुंदर और मोहिनी लगती है। अब वियोग के कारण उसे दुःखी होने की कोई गुंजाइश नहीं है। उस सौभाग्यवती की प्रभुरूपी पति को प्राप्त करने की इच्छा पूरी हो गई है और वह अपनी सखियों से मिलकर प्रभु के मंगल गीत गा रही है, प्रियतम की महिमा का गान कर रही है।

हरि अपने जैसा आप ही है। कोई और उसके जैसा नहीं हो सकता। उसने कृपा करके प्रेमी जीवात्मा के लोक और परलोक दोनों सँवार दिए हैं। उसे अपने परमधाम में स्थान देकर उसे भवसागर से उबार लिया है। बार-बार जन्म लेने का उसका चक्कर समाप्त हो गया है।

गुरु साहिब बताते हैं कि हमारी जिह्वा एक है और प्रभु के गुण अनंत हैं। हम उस प्रभु के गुण कैसे बखान कर सकते हैं? जो भी जीव भवसागर से पार उतरा है, उसके चरणों की शरण प्राप्त करके ही उतरा है। फाल्गुन का यही उपदेश है कि उस प्रियतम की सदा महिमा करनी चाहिए जो सर्वसमर्थ दाता है और जिसकी अपनी कोई ग़रज़ नहीं है।

जिन जिन नाम धिआइआ तिन के काज सरे॥
हर गुर पूरा आराधिआ दरगह सच खरे॥
सरब सुखा निध चरण हर भउजल बिखम तरे॥
प्रेम भगति तिन पाईआ बिखिआ नाहे जरे॥[15]

शब्दार्थ: खरे=शुद्ध, स्वीकार हो गए; **बिखम**=मुश्किल।

भावार्थ: जिन्होंने परमात्मा के नाम का सिमरन किया, उनके कार्य सिद्ध हो गए, उनकी कामनाएँ पूरी हो गईं। जब परमेश्वर के नाम का अभ्यास पूरे गुरु के उपदेश के अनुसार किया जाता है तो अभ्यासी विकारों से मुक्त होकर निर्मल हो जाता है और उसे सच्ची दरगाह में स्वीकार कर लिया जाता है।

हरि के चरण सब सुखों का भंडार हैं। जिन्होंने सिमरन के द्वारा उनमें लिव लगाई, वे संसार के दुस्तर सागर से पार हो गए।

वे प्रेम-भक्ति की दात प्राप्त करने में सफल हो गए और विषयों की आग में जलने से बच गए।

कूड़ गए दुबिधा नसी पूरन सच भरे॥
पारब्रहम प्रभ सेवदे मन अंदर एक धरे॥
माह दिवस मूरत भले जिस कउ नदर करे॥
नानक मंगै दरस दान किरपा करहो हरे॥[16]

शब्दार्थ: मूरत=मुहूर्त; **नदर**=कृपादृष्टि।

भावार्थ: उनके जन्मों-जन्मों से इकट्ठे हुए मलिन संस्कार नष्ट हो गए, दुविधा जाती रही। उन्हें एक परमात्मा की शरण मिल गई और उनका संपूर्ण अंतःकरण सचरूपी प्रभु प्रियतम से परिपूर्ण हो गया। अन्य सब प्रकार की टेक छोड़कर, जप, तप, स्नान जैसी सभी बाहरी क्रियाओं की ओर से मुँह मोड़कर केवल एक पारब्रह्म की आराधना करने से ही जीवन सफल हुआ।

जिस किसी पर प्रभु की दयादृष्टि हो जाती है, उसके लिए सभी महीने, दिन और मुहूर्त शुभ हो जाते हैं, उसकी शुभ कर्म करने की प्रवृत्ति बन जाती है। मालिक की रज़ा में रहते हुए उसे किसी ऐसे दुःख का सामना नहीं करना पड़ता जो उसके मन को विचलित कर सके। गुरु साहिब अपने स्वामी को संबोधित करके उसके दर्शनों के दीदार का दान माँगते हैं, क्योंकि उसके दीदार के बाद कुछ और माँगने लायक़ नहीं रह जाता।

बावन अखरी

यह एक सर्वमान्य सत्य है कि प्रभु का नाम अमूल्य रत्न है, अमृत है। निस्संदेह इस नाम के अंतर्मुखी अभ्यास से जीव को भवसागर से छुटकारा मिल जाता है और प्रभु प्रियतम से मिलाप हो जाता है। लेकिन माया के मोह में फँसे लोग प्रभुनाम की क़ीमत कौड़ी भर नहीं आँकते। वे इस बारे में ज़िक्र करने के लिए भी तैयार नहीं होते। ऐसे लोगों तक अपना संदेश पहुँचाने के लिए और उन्हें परमार्थ के मार्ग पर लाने के लिए संत-महात्मा भिन्न-भिन्न विधियाँ अपनाते हैं, अनेक प्रकार की रोचक वाणी की रचना करते हैं। कुछ संतों ने भाषा के वर्णों के आधार पर भी वाणी रची है। जैसे लिपि अरबी हो तो रचना सिहरफ़ी (यानी तीस अक्षरों वाली) होगी, गुरमुखी हो तो पैंतीस अक्षरों वाली। गुरु अर्जुन देव ने देवनागरी लिपि के बावन अक्षरों के आधार पर रची इस वाणी का शीर्षक 'बावन अखरी' रखा है।

कुंट चार दह दिस भ्रमे करम किरत की रेख॥
सूख दूख मुकति जोनि नानक लिखिओ लेख॥
कका कारन करता सोऊ॥ लिखिओ लेख न मेटत कोऊ॥
नही होत कछु दोऊ बारा॥ करनैहार न भूलनहारा॥
काहू पंथ दिखारै आपै॥ काहू उदिआन भ्रमत पछुतापै॥
आपन खेल आप ही कीनो॥ जो जो दीनो सो नानक लीनो॥[1]

भावार्थ: संसार के जीव अपने ही कर्मों के अधीन, दसों दिशाओं में भटकते फिरते हैं। जीव कभी सुख का आनंद लेता है तो कभी दुःख भोगता है; किसी का आवागमन ख़त्म हो जाता है, तो कोई

भिन्न-भिन्न प्रकार की योनियों में से गुज़रता है। यह सब कर्म और कर्मफल के नियम के अनुसार होता है।

'क' अक्षर से शुरू किए गए एक पद में गुरु अर्जुन देव स्पष्ट करते हैं कि परमेश्वर स्वयं कर्ता है, जिस प्रकार के लेख वह किसी के मस्तक पर लिख देता है, उनके अनुसार ही उसे जीवन बिताना पड़ता है। उसके लिखे लेखों को बदलने की सामर्थ्य किसी में नहीं है। उसे किसी बात का फ़ैसला दो बार नहीं करना पड़ता। वह कभी ग़लती नहीं करता, इसलिए उसे अपने किए को सही करने की आवश्यकता नहीं होती। जो कर दिया, सो कर दिया। किसी जीव को वह ख़ुद सही मार्ग दिखा देता है जिससे वह मंज़िल पर पहुँच जाता है, किसी को उसके कर्मों के अनुसार जंगलों के सुनसान में भटकने और पछताने देता है। इस प्रकार का खेल उसने ख़ुद ही रचा है। हर्ष-शोक, लाभ-हानि—जो कुछ उसने किसी जीव के आँचल में डाला है, वही उस जीव को स्वीकार करना पड़ता है, उसकी अपनी दलील या तर्क काम नहीं आता।

ङण घाले सभ दिवस सास नह बढन घटन तिल सार॥
जीवन लोरह भरम मोह नानक तेऊ गवार॥
ङंङा ङ्रासै काल तिह जो साकत प्रभ कीन॥
अनिक जोनि जनमह मरह आतम राम न चीन॥
ङिआन धिआन ताहू कउ आए॥ कर किरपा जिह आप दिवाए॥
ङणती ङणी नही कोऊ छूटै॥ काची गागर सरपर फूटै॥
सो जीवत जिह जीवत जपिआ॥ प्रगट भए नानक नह छपिआ॥[2]

शब्दार्थ: **ङण**=गिनकर; **घाले**=डाले हैं अर्थात् भाग्य में लिखे हैं; **ङ्रासै**=ग्रस लेता है; **न चीन**=नहीं पहचानते; **ङणती ङणी**=सोच-विचार करके।

भावार्थ: जितने दिन, जितने श्वास किसी प्राणी के भाग्य में लिख दिए गए हैं, वे सब हिसाब से दिए गए हैं। उनकी गिनती में कोई कमी या वृद्धि नहीं हो सकती। जो लोग मोह में फँसे निर्धारित अवधि से अधिक जीना चाहते हैं, वे मूर्ख हैं।

जो जीव माया के जाल में फँसे विषय-वासनाओं में लिप्त हैं, उन मनमुखों को काल ग्रस लेता है; अपने स्वामी को न पहचानने वाले वे अनेक योनियों में पैदा होते और मरते रहते हैं। प्रभु का ध्यान, प्रभु का ज्ञान उन्हीं को प्राप्त होता है जिनको वह ख़ुद दया करके इस प्राप्ति के लिए प्रेरित करता है। मनुष्य का शरीर कच्चा मटका है, इसे एक दिन अवश्य टूट जाना है। किसी का अपना संघर्ष, सोच या प्रयत्न उसे अपने भाग्य से नहीं बचा सकता। जिन्होंने अपने जीवनकाल में परमेश्वर का जाप कर लिया है, उनके जीने को ही सही अर्थों में जीना माना जा सकता है। गुरु साहिब बताते हैं कि चाहे ऐसे पुरुष अपने आप को और अपनी साधना को छिपाकर रखते हैं, फिर भी लोगों को उनका पता चल जाता है और वे सम्मान पाते हैं।

चित चितवउ चरणारबिंद ऊध कवल बिगसांत॥
प्रगट भए आपह गोबिंद नानक संत मतांत॥
चचा चरन कमल गुर लागा॥ धन धन उआ दिन संजोग सभागा॥
चार कुंट दह दिस भ्रम आइओ॥ भई क्रिपा तब दरसन पाइओ॥
चार बिचार बिनसिओ सभ दूआ॥ साधसंग मन निरमल हूआ॥
चिंत बिसारी एक द्रिसटेता॥ नानक गिआन अंजन जिह नेत्रा॥[3]

शब्दार्थ: **ऊध**=उलटा; **बिगसांत**=खिल गया; **उआ**=वह; **द्रिसटेता**=नज़र आता है।

भावार्थ: मेरी लिव गुरु के चरण-कमलों में लगी हुई है। मेरा हृदय-कमल जो पहले उलटा था, अब सीधा होकर खिल उठा है और उसमें प्रभु प्रियतम ख़ुद प्रकट हो गए हैं। यह सब संत-सतगुरु से शिक्षा प्राप्त होने और उस पर अमल करने के फलस्वरूप हुआ है।

'च' अक्षर से शुरू किए गए एक पद में गुरु साहिब कहते हैं कि जिस दिन मैं गुरु के चरण-कमलों में लगा, वह संयोग सौभाग्यशाली था।

प्रभु से मिलाप के लिए जब मैं दसों दिशाओं में भटकते-भटकते हार गया, तब मुझ पर प्रभु की दया हुई और मैं उसके दर्शन पाकर निहाल हो गया। इसके फलस्वरूप मैंने कर्मकांड में उलझने के बारे में सोचना भी छोड़ दिया और द्वैत भाव से छुटकारा पा लिया। मैंने साधु की संगति की तो मन की मलिनता दूर हो गई। गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि जिसके आंतरिक नेत्रों में ज्ञान का सुरमा लग जाए, उसे प्रभु का दीदार हो जाता है और उसे कोई चिंता नहीं सताती।

आवन आए स्रिसटि मह बिन बूझे पसु ढोर॥
नानक गुरमुख सो बुझै जा कै भाग मथोर॥[4]

शब्दार्थ: **मथोर**=मस्तक पर।

भावार्थ: कहने को तो हम संसार में मनुष्यरूप में आ गए, परंतु जब तक यह बात हमारी समझ में नहीं आती कि हम किस लिए आए हैं और यहाँ रहकर हमें क्या करना है, तब तक इनसान और बोझ ढोनेवाले जानवर में कोई अंतर नहीं। इस भेद का ज्ञान गुरु की सहायता से उसी जीव को मिलता है जिसके मस्तक पर धुर से लिखा हो।

या जुग मह एकह कउ आइआ॥ जनमत मोहिओ मोहनी माइआ॥
गरभ कुंट मह उरध तप करते॥ सास सास सिमरत प्रभ रहते॥
उरझ परे जो छोड छडाना॥ देवनहार मनहो बिसराना॥
धारहो किरपा जिसह गुसाई॥ इत उत नानक तिस बिसरहो नाही॥[5]

शब्दार्थ: **कुंट**=कुंड; **उरध**=उलटा।

भावार्थ: इस जग में जीव के आने का एकमात्र ध्येय प्रभु से मिलाप करना ही है, लेकिन वह पैदा होते ही ठगिनी माया के चंगुल में फँस गया। जितनी देर वह माँ के पेट में था, मानों उलटा लटककर मालिक को पाने के लिए तप कर रहा था, उसे एक पल के लिए भी मन से नहीं भुलाता था। लेकिन वहाँ से छुटकारा पाते ही उसने

इस दुनिया के प्राणियों और पदार्थों से प्यार करना शुरू कर दिया जो एक दिन उसको छोड़ जाएँगे। जो जीवन में सब कुछ देता है, उस प्रभु का धन्यवाद करने के बजाय जीव ने उसे मन से बिलकुल भुला दिया। वास्तव में हर कोई यही करता है, क्योंकि माया का प्रभाव इतना प्रबल है कि उसके आगे किसी का बस नहीं चलता। गुरु साहिब कहते हैं कि लोक और परलोक में अपने सिरजनहार और प्रतिपालक को वही याद रखता है, हे स्वामी! जिसे तू आप दया करके याद करवाए।

राच रहे बनिता बिनोद कुसम रंग बिख सोर॥
नानक तिह सरनी परउ बिनस जाए मै मोर॥[6]

शब्दार्थ: कुसम रंग=कुसुंभ का कच्चा रंग; **बिख सोर**=कड़वे, खारे।

भावार्थ: गुरु अर्जुन देव देखते हैं कि लोग विषय-वासनाओं के सुख तथा रंग-तमाशों में डूबे हैं जो देखने में मनमोहक लगते हैं। वास्तव में ये कुसुंभ के रंग की तरह क्षणभंगुर हैं और ये ज़हरीले हैं। इसलिए वे लोगों के हित के लिए फ़रमाते हैं कि उस एक प्रभु का सहारा लें ताकि मैं-मेरी से मुक्त हो सकें।

रे मन बिन हर जह रचहो तह तह बंधन पाहे॥
जिह बिधि कतहू न छूटीऐ साकत तेऊ कमाहे॥
हउ हउ करते करम रत ता को भार अफार॥
प्रीत नही जउ नाम सिउ तउ एऊ करम बिकार॥
बाधे जम की जेवरी मीठी माइआ रंग॥
भ्रम के मोहे नह बुझह सो प्रभ सदहू संग॥
लेखै गणत न छूटीऐ काची भीत न सुध॥
जिसह बुझाए नानका तिह गुरमुख निरमल बुध॥[7]

शब्दार्थ: अफार=अधिक; **जेवरी**=रस्सी।

भावार्थ: गुरु अर्जुन देव कहते हैं कि हे मन! जो जीव परमात्मा के सिवाय और किसी भी चीज़ में दिलचस्पी लेता है, वह अपने लिए एक नया बंधन रच लेता है। साकत पुरुष (मनमुख) वही कर्म कमाने में व्यस्त रहता है जो सदा जी का जंजाल बना रहे, जिससे वह कभी भी मुक्ति न पा सके। जो लोग हौंमैं के प्रभाव के अधीन कर्म करने में जुटे रहते हैं, वे इतना कमरतोड़ भार इकट्ठा कर लेते हैं जो उठाया नहीं जा सकता। अगर नाम से विमुख होकर कोई शुभ कर्म भी किए जाते हैं, तो वे भी बंधन का ही कारण बन जाते हैं। माया का मीठा मोह यमदूतों की हथकड़ियों का शिकार बना देता है। ज्ञान-विहीन और भ्रमों के भुलाए जीव यह नहीं समझते कि परमात्मा सदा उनके साथ है, उनकी अपनी काया के अंदर ही रहता है। वे उसे कहीं और ही ढूँढ़ने में लगे रहते हैं—तीर्थों में, जंगलों और पहाड़ों आदि में। कच्ची दीवार को कितना ही धोते रहें, नीचे से मैल ही मैल निकलती है। फोकट क्रियाओं से निर्मलता प्राप्त नहीं होती। कोई यह न समझे कि वह अपने बलबूते पर किए हुए कर्मों की बदौलत छूट जाएगा। ऐसा कभी नहीं होगा। हाँ, जिस किसी पर सिरजनहार स्वयं दया करता है, वह किसी संत-सतगुरु से दीक्षा लेकर निर्मल बुद्धि का स्वामी बन जाता है और उसके लिए नाम जपने और बंधनमुक्त हो जाने का मार्ग खुल जाता है।

लेखै कतह न छूटीऐ खिन खिन भूलनहार॥
बखसनहार बखस लै नानक पार उतार॥[8]

भावार्थ: हे प्रभु! अगर हमारे कर्मों का हिसाब होने लगे तो हम कभी नहीं छूट सकेंगे। हमसे हर क्षण कोई न कोई भूल होती रहती है और चिंतामुक्त होने के लिए इतनी भूलों का मूल्य तो कभी नहीं चुकाया जा सकता। पर तू दयालु है और सब भूलें बख़्शने की

अनंत सामर्थ्य रखता है। इसलिए तुझसे विनती है कि दया करके मुझे क्षमादान दे और भवसागर से पार उतार दे।

लूण हरामी गुनहगार बेगाना अलप मत॥
जीउ पिंड जिन सुख दीए ताहे न जानत तत॥
लाहा माइआ कारने दह दिस ढूढन जाए॥
देवनहार दातार प्रभ निमख न मनह बसाए॥[9]

भावार्थ: मनुष्य तो स्वभाव से ही कृतघ्न (उपकार को भूलनेवाला) है। वह पापों का पुतला, तुच्छ बुद्धि का मालिक अपने सिरजनहार की ओर पीठ किए हुए है। जो कुछ दिखाई देता है, उसी को सत्य समझता है, लेकिन जिसने जीवन दिया है और शरीर के सब सुख दिए हैं, उस रचयिता को नहीं जानता। वह धन कमाने के लिए जगह-जगह भटकता फिरता है, पर जिस दाता के पास दातें हैं और जो बेखटक देता भी है, उसके लिए मनुष्य के हृदय में ज़रा-सी भी जगह नहीं होती।

लालच झूठ बिकार मोह इआ संपै मन माहे॥
लंपट चोर निंदक महा तिनहू संग बिहाए॥
तुध भावै ता बखस लैह खोटे संग खरे॥
नानक भावै पारब्रहम पाहन नीर तरे॥[10]

शब्दार्थ: संपै=संपदा।

भावार्थ: लोभ, कपट, विकार और मोह ने मनुष्य के मन में अपना निवास स्थान बनाया हुआ है, इन दोषों से ग्रस्त जीवों के साथ ही जीव अपना जीवन व्यतीत करता है। लेकिन हे प्रभु! अगर तेरी रज़ा में हो तो शुभ कर्म करनेवालों के साथ-साथ हम बुरे कर्म करनेवालों को भी बख़्श दे। तू तो पत्थरों को भी पानी पर तैरा सकता है।

सलोक सहसक्रिती

कतंच माता कतंच पिता कतंच बनिता बिनोद सुतह॥
कतंच भ्रात मीत हित बंधव कतंच मोह कुटंब्यते॥
कतंच चपल मोहनी रूपं पेखंते तिआगं करोत॥
रहंत संग भगवान सिमरण नानक लबध्यं अचुत तनह॥[1]

शब्दार्थ: कतंच=कहाँ है; **बनिता**=पत्नी; **पेखंते**=देखते-देखते; **अचुत**=अविनाशी (परमात्मा); **तनह**=पुत्र।

भावार्थ: कहाँ है तेरी माता, कहाँ है तेरा पिता और कहाँ हैं तेरे पत्नी और पुत्र जिनके साथ ख़ुशियाँ मनाया करता था? कहाँ हैं तेरे भाई, मित्र, हितैषी, संबंधी और कुटुंब, जिनसे तेरा इतना मोह था? मन को मोह लेनेवाली वह चंचल माया कहाँ है, जो देखते-देखते साथ छोड़कर चली जाती है। केवल परमात्मा का सिमरन ही साथ जाता है और वह उस अविनाशी परमात्मा के पुत्रों यानी संतों से प्राप्त होता है।

मिथ्यंत देहं खीणंत बलनं॥ बरधंत जरूआ हित्यंत माइआ॥
अत्यंत आसा आथित्य भवनं॥ गनंत स्वासा भैयान धरमं॥
पतंत मोह कूप दुरलभ्य देहं तत आस्रयं नानक॥
गोबिंद गोबिंद गोबिंद गोपाल क्रिपा॥[2]

शब्दार्थ: खीणंत=घटता है; **बरधंत**=बढ़ता है; **जरूआ**=बुढ़ापा; **भैयान**=भयानक; **धरमं**=यमराज; **पतंत**=गिरा हुआ; **तत**=उस परमात्मा का।

भावार्थ: हमारा शरीर नाशवान है। इसका बल कम होते-होते ख़त्म हो जाता है। जैसे-जैसे बुढ़ापा बढ़ता जाता है, माया के मोह में वृद्धि होती जाती है। चाहे हमारी आत्मा शरीररूपी मकान में मेहमान मात्र है, तो भी उसकी आशाएँ अनंत हैं। भयानक धर्मराज एक-एक साँस की गिनती करता है। यह दुर्लभ देह मोह के कुँए में गिरी रहती है। गुरु साहिब कहते हैं कि इस हालत में जगत के कर्ता, उस पालनहार प्रभु का ही एक सहारा है। केवल उसी की दया और कृपा के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

काच कोटं रचंत तोयं लेपनं रकत चरमणह॥
नवंत दुआरं भीत रहितं बाए रूपं असथंभनह॥
गोबिंद नामं नह सिमरंत अगिआनी जानंत असथिरं॥
दुरलभ देह उधरंत साध सरण नानक॥
हर हर हर हर हर हरे जपंत॥[3]

शब्दार्थ: तोयं=पानी; **भीत**=दीवार; **बाए**=हवा; **असथंभनह**=स्तंभ।

भावार्थ: मनुष्य का शरीर पानी से बना कच्चा क़िला है जिस पर चमड़े और ख़ून की लिपाई की हुई है। इसके आँखें, कान आदि नौ द्वार हैं जो दीवार से रहित हैं और इसे गिरने से बचाने के लिए हवा यानी साँसों के स्तंभ हैं। यह सब कुछ देखते हुए भी जीव ने इसे पक्का और स्थायी मान रखा है। वह प्रभु के नाम का सिमरन नहीं करता। यह मनुष्य शरीर, जिसमें रहते हुए ही हम आवागमन से बच सकते हैं, बहुत दुर्लभ है। संत-सतगुरु की शरण प्राप्त करके हरि का सिमरन करने से हम भवसागर से पार हो सकते हैं।

सुभंत तुयं अचुत गुणग्यं पूरनं बहुलो क्रिपाला॥
गंभीरं ऊचै सरबग अपारा॥ भ्रितिआ प्रिअं बिस्राम चरणं॥
अनाथ नाथे नानक सरणं॥[4]

शब्दार्थ: सुभंत=शोभा देता है; **तुयं**=तू; **गुणग्यं**=गुणों की परख रखनेवाला; **सरबग**=सर्वज्ञ; **भ्रितिआ**=सेवकों का।

भावार्थ: हे अविनाशी, गुणों के पारखी, सर्वव्यापक, अत्यंत दयालु प्रभु! तेरी शोभा अपरंपार है। तू अथाह है, सबसे ऊँचा है, सर्वज्ञाता है, अनंत है। हे प्रियतम! तू अपने प्रिय सेवकों को अपने चरणों का सहारा देता है। हे अनाथों के नाथ! मैं भी तेरी शरण में आ गया हूँ।

म्रिगी पेखंत बधिक प्रहारेण लख्य आवधह॥
अहो जस्य रखेण गोपालह नानक रोम न छेद्यते॥[5]

शब्दार्थ: लख्य=लक्ष्य साधकर; **आवधह**=शस्त्र से; **जस्य**=जिसकी; **न छेद्यते**=नहीं काट पाता।

भावार्थ: शिकारी एक हिरनी को देखता है और उस पर शस्त्र से वार करता है, लेकिन कितनी विचित्र बात है कि अगर परमात्मा रक्षक हो तो हिरनी का बाल भी बाँका नहीं होता!

बहु जतन करता बलवंत कारी सेवंत सूरा चतुर दिसह॥
बिखम थान बसंत ऊचह नह सिमरंत मरणं कदांचह॥
होवंत आगिआ भगवान पुरखह नानक कीटी सास अकरखते॥[6]

शब्दार्थ: बिखम=कठिन; **कदांचह**=कभी भी; **अकरखते**=निकाल लेती है।

भावार्थ: दूसरी ओर अगर कोई बड़ा साहसी और बलवान हो, उसके चारों ओर सूरमा और चतुर सेवकों का पहरा हो और वह ऐसी जगह रहता हो जहाँ पहुँचना दुर्लभ हो, उसे कभी मौत का ख़याल भी न आता हो, फिर भी सतपुरुष का हुक्म होने पर एक मामूली चींटी भी उसकी जान निकाल लेती है।

नह बिलंब धरमं बिलंब पापं॥ द्रिड़ंत नामं तजंत लोभं॥
सरण संतं किलबिख नासं प्रापतं धरम लख्यिण॥
नानक जिह सुप्रसंन माधवह॥[7]

शब्दार्थ: किलबिख=पाप; **लख्यिण**=लक्षण।

भावार्थ: धर्म कमाने में आलस न करना, पाप करने में हिचकिचाना, हृदय में नाम बसाना, लोभ त्यागना, संतों की शरण में रहकर पापों का नाश करना—ये धर्म के लक्षण केवल उस प्राणी को प्राप्त होते हैं जिस पर परमात्मा बहुत मेहरबान हो।

जनमं त मरणं हरखं त सोगं भोगं त रोगं॥
ऊचं त नीचं नान्हा सो मूचं॥ राजं त मानं अभिमानं त हीनं॥
प्रविरत मारगं वरतंत बिनासन॥
गोबिंद भजन साध संगेण असथिरं नानक भगवंत भजनासनं॥[8]

शब्दार्थ: मूचं=बड़ा; **प्रविरत मारगं**=संसार के कामों में उलझे रहने का मार्ग; **वरतंत**=चलते हुए; **भजनासनं**=भजन ही आधार।

भावार्थ: संसार में जन्म होता है तो मौत भी अवश्य आती है; प्रसन्नता होती है तो दु:ख भी सहने पड़ते हैं; विषय भोगने को मिलते हैं तो रोग भी लग जाते हैं; ऊँचा उठते हैं तो नीचे भी गिरना पड़ता है; छोटे हों तो बड़े भी हो जाते हैं; राज के कारण इज़्ज़त मिलती है तो अहंकार के कारण निरादर भी होता है। दुनिया के धंधों में उलझे रहने का मार्ग विनाश की ओर ले जाता है, जो बरबादी में ख़त्म होता है। सदा रहनेवाली वस्तु तो साधु की संगति में की गई परमात्मा की भक्ति है। इसलिए गुरु साहिब उपदेश देते हैं कि हरि भक्ति को ही जीवन का आधार बनाना चाहिए।

गिरंत गिर पतित पातालं जलंत देदीप्य बैस्वांतरह॥
बहंत अगाह तोयं तरंगं दुखंत ग्रह चिंता जनमं त मरणह॥
अनिक साधनं न सिध्यते नानक
असथंभं असथंभं असथंभं सबद साध स्वजनह॥[9]

शब्दार्थ: अगाह=अथाह; **असथंभं**=सहारा; **स्वजनह**=महापुरुषों का।

भावार्थ: पहाड़ से गिरना, पाताल में जा पहुँचना, आग की लपटों में जलना, बाढ़ में बह जाना और परिवार की चिंता, इन सबसे बड़ा

दु:ख बार-बार के जन्म-मरण का है। इस दु:ख से बचने के लिए किए गए अनेक उपाय सफल नहीं होते, इससे बचने का एकमात्र साधन संत-सतगुरु का शब्द है।

घोर दुख्यं अनिक हत्यं जनम दारिद्रं महा बिख्यादं॥
मिटंत सगल सिमरंत हर नाम नानक
जैसे पावक कासट भसमं करोत॥[10]

शब्दार्थ: बिख्यादं=विपत्ति।

भावार्थ: अपने कर्मों के अनुसार जो भयानक दु:ख और मुसीबतें, ग़रीबी और भूख, झगड़े-झमेले, गहरी उलझनें तथा बार-बार का जन्म और मौत हमें झेलनी पड़ती है, वे सब परमात्मा के नाम के सिमरन से ऐसे मिट जाते हैं, जैसे लकड़ी का ढेर आग में जलकर राख हो जाता है।

गुर मंत्र हीणस्य जो प्राणी ध्रिगंत जनम भ्रसटणह॥
कूकरह सूकरह गरधभह काकह सरपनह तुल खलह॥[11]

भावार्थ: जिस व्यक्ति ने गुरु से मंत्र नहीं लिया, उस का जन्म धिक्कारने योग्य है। वह मूर्ख मानों कुत्तों, सूअरों, गधों, कौओं या साँपों की योनि भोग रहा है।

पाछं करोत अग्रणीवह निरासं आस पूरनह॥
निरधन भयं धनवंतह रोगीअं रोग खंडनह॥
भगत्यं भगति दानं राम नाम गुण कीरतनह॥
पारब्रहम पुरख दातारह नानक गुर सेवा किं न लभ्यते॥[12]

शब्दार्थ: पाछं=पिछड़े हुए; **अग्रणीवह**=मुखिया, मार्गदर्शक; **भयं**=हो जाता है; **किं न**=क्या कुछ नहीं।

भावार्थ: जो तुच्छ और पीछे चलनेवाले होते हैं, प्रभु उन्हें भी नेता और मार्गदर्शक बना देता है, निराश होनेवालों की कामना पूरी कर

देता है। उसकी दया से कंगाल, धनवान हो जाते हैं, रोगियों के रोग नष्ट हो जाते हैं। भक्तों को वह भक्ति का दान बख़्श देता है, प्रभु और नाम की महिमा करने के लिए प्रेरित करता है। गुरु अर्जुन देव बताते हैं कि वह पारब्रह्म दातों का दाता है। गुरु की सेवा करने से क्या नहीं प्राप्त किया जा सकता? वह सर्वसमर्थ परमात्मा सभी इच्छाओं की पूर्ति करता है।

रमणं केवलं कीरतनं सुधरमं देह धारणह॥
अंम्रित नाम नाराइण नानक पीवतं संत न त्रिप्यते॥[13]

शब्दार्थ: **रमणं**=रस पाना; **कीरतनं**=शब्द की ध्वनि।

भावार्थ: मनुष्य देह धारण करने पर सर्वश्रेष्ठ धर्म प्रभु के शब्द की धुन में रम जाना है। संतजन निरंतर परमात्मा के नाम का अमृत पीते हैं, फिर भी उनकी अमृत पीने की चाह कम नहीं होती।

नच दुरलभं धनं रूपं नच दुरलभं स्वरग राजनह॥
नच दुरलभं भोजनं बिंजनं दुरलभं स्वछ अंबरह॥
नच दुरलभं सुत मित्र भ्रात बांधव नच दुरलभं बनिता बिलासह॥
नच दुरलभं बिदिआ प्रबीणं नच दुरलभं चतुर चंचलह॥
दुरलभं एक भगवान नामह नानक लबध्यिं साधसंग क्रिपा प्रभं॥[14]

शब्दार्थ: **नच**=नहीं है; **बिंजनं**=स्वादिष्ट भोजन; **अंबरह**=वस्त्र।

भावार्थ: धन-दौलत का मिलना कठिन नहीं है; न सुंदरता और स्वर्ग के राज का मिलना कठिन है। न ही विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजन, सुंदर कपड़े, स्त्री का सुख, पुत्र, मित्र, भाई तथा संबंधी मिलने कठिन हैं। न विद्या और पढ़ाई में निपुण होना मुश्किल है, न चतुराई और चालाकी सीखना। गुरु साहिब के अनुभव के अनुसार अगर कठिन है तो एक परमात्मा के नाम का प्राप्त होना, क्योंकि वह केवल प्रभु की कृपा से संत की संगति में ही प्राप्त हो सकता है।

दिन-रैन

दिन-रैन शीर्षक के अंतर्गत रचित वाणी में गुरु साहिब ने इनसान को दिन-रात वह कार्य करने के लिए प्रेरित किया है, जो हमारा असली उद्देश्य है।

संत अराधन सद सदा सभना का बखसिंद॥
जीउ पिंड जिन साजिआ कर किरपा दितीन जिंद॥
गुर सबदी आराधीऐ जपीऐ निरमल मंत॥
कीमत कहण न जाईऐ परमेसुर बेअंत॥
जिस मन वसै नराइणो सो कहीऐ भगवंत॥
जीअ की लोचा पूरीऐ मिलै सुआमी कंत॥
नानक जीवै जप हरी दोख सभे ही हंत॥
दिन रैण जिस न विसरै सो हरिआ होवै जंत॥[1]

शब्दार्थ: **लोचा**=कामना; **हंत**=नाश।

भावार्थ: संत उस बख़्शनहार परमात्मा का सदा सिमरन करते हैं, जिसने जीवात्मा और शरीर का सृजन किया और अपनी कृपा से जीवन बख़्शा। जीव को गुरु की बताई शब्द की युक्ति के अनुसार उसके दिए पवित्र मंत्र का जाप करते हुए उस प्रभु की आराधना करनी चाहिए। परमात्मा की महिमा बखान नहीं की जा सकती, क्योंकि वह अनंत है, अपार है।

जिसके हृदय में परमात्मा बस जाता है, वह भाग्यवान होता है। जिस आत्मा का पति-प्रियतम से मिलाप हो जाए, उसकी हर

कामना पूर्ण हो जाती है। मैं तो उस हरि का सिमरन करके ही जीता हूँ जिसका सिमरन करने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं। जो प्राणी परमात्मा को रात और दिन अर्थात् किसी भी समय नहीं भूलता, निरंतर याद रखता है, वह सदा आनंदमग्न रहता है। उसका अंत:करण आनंद से भरपूर हो जाता है।

सरब कला प्रभ पूरणो मंञ निमाणी थाउ॥
हर ओट गही मन अंदरे जप जप जीवां नाउ॥
कर किरपा प्रभ आपणी जन धूड़ी संग समाउ॥
जिउ तूं राखह तिउ रहा तेरा दिता पैना खाउ॥
उदम सोई कराए प्रभ मिल साधू गुण गाउ॥
दूजी जाए न सुझई किथै कूकण जाउ॥
अगिआन बिनासन तम हरण ऊचे अगम अमाउ॥
मन विछुड़िआ हर मेलीऐ नानक एह सुआउ॥
सरब कलिआणा तित दिन हर परसी गुर के पाउ॥[2]

शब्दार्थ: मंञ=मैं; **थाउ**=आसरा; **अमाउ**=माप से परे, बेअंत; **सुआउ**=स्वार्थ; **परसी**=छूना।

भावार्थ: हे सर्वशक्तिमान प्रभु! तू मुझ निमानी का सहारा है। मैंने सच्चे दिल से तेरी शरण ली है और तेरे नाम का सिमरन करके जी रही हूँ। तू मुझ पर इतनी दया कर कि मैं संत-सतगुरु की चरण-धूलि में समा जाऊँ। मुझे हिम्मत बख़्श कि जिस हाल में तू रखे, उसी में ख़ुश रहूँ और जो कुछ भी तू पहनने और खाने को दे, उसी से तृप्त रहूँ।

हे प्रभु, मुझे इतना बल और उद्यम बख़्श दे कि मैं साधु (गुरु) की संगति में तेरा गुणगान करती रहूँ। मुझे तेरे सिवाय और कोई सहारा नज़र नहीं आता। मैं किसके पास जाकर पुकार करूँ,

दुहाई दूँ, सहायता माँगूँ? हे अज्ञान को मिटानेवाले, अंतर के अंधकार को दूर करनेवाले, उच्च, अगम, अपार प्रभु! मेरी यही कामना है कि तुझसे बिछुड़ी मेरी आत्मा को तू अपना मिलाप बख़्श। जिस दिन मैं संत-सतगुरु के चरणों का स्पर्श पा लूँगी, उस दिन मैं पूरी तरह सुखी हो जाऊँगी।

डखणे यानी श्लोक

यह वाणी उस भाषा में लिखी गई है जो गुरु नानक साहिब की जन्मभूमि राये भोये की तलवंडी के दक्षिण में अर्थात् मुलतान, मिंटगुमरी (साहीवाल) के इलाक़े में बोली जाती थी। इसमें 'द' के स्थान पर प्राय: 'ड' का प्रयोग किया जाता है, इसलिए इन श्लोकों का शीर्षक 'दखणे' न रखकर 'डखणे' रखा गया है। इनका मुख्य विषय विरह यानी आत्मा की प्रभु से मिलने की तड़प है।

तू चउ सजण मैडिआ डेई सिस उतार॥
नैण महिंजे तरसदे कद पसी दीदार॥
नीह महिंजा तऊ नाल बिआ नेह कूड़ावे डेख॥
कपड़ भोग डरावणे जिचर पिरी न डेख॥[1]

शब्दार्थ: चउ=कह; **मैडिआ**=मेरा; **डेई**=दूँगी; **महिंजा**=मेरा; **पसी**=देखूँगी; **बिआ**=दूसरा; **कूड़ावे**=झूठे।

भावार्थ: मेरे प्रियतम! तू कहकर तो देख, मैं तुझे अपना सिर भेंट कर दूँगी। मेरी आँखें तेरे दर्शन को तरस रही हैं; मुझे तेरा दीदार कब होगा? मेरा प्रेम केवल तुझसे है, क्योंकि और सभी प्रेम खोखले नज़र आते हैं। जब मेरा प्रियतम मेरी आँखों से परे है, तो मुझे सब श्रृंगार, वस्त्र, विषय भोग, रसों और स्वादों से डर लगता है।

उठी झालू कंतड़े हउ पसी तउ दीदार॥
काजल हार तमोल रस बिन पसे हभ रस छार॥ ...

जे तू मित्र असाडड़ा हिक भोरी ना वेछोड़॥
जीउ महिंजा तउ मोहिआ कद पसी जानी तोहे॥
दुरजन तू जल भाहड़ी विछोड़े मर जाहे॥
कंता तू सउ सेजड़ी मैडा हभो दुख उलाहे॥[2]

शब्दार्थ: झालू=प्रात:काल; **कंतड़े**=प्रियतम; **असाडड़ा**=मेरा; **भोरी**=थोड़ा-सा; **भाहड़ी**=आग; **सेजड़ी**=सेज; **हभो**=संपूर्ण; **उलाहे**=हटा दे।

भावार्थ: मेरे प्रियतम! तेरा मुख देखने के लिए मैं सुबह-सवेरे जाग उठी हूँ। तेरा दीदार किए बिना काजल, हार-श्रृंगार, पान के बीड़े और अन्य हर प्रकार के रस राख के समान लगते हैं। अगर तू मेरा मित्र है तो मुझे एक क्षण के लिए भी अपने से जुदा मत कर। मेरे दिलबर! तूने मेरा जी मोह लिया है, पर मैं तुझे कब देख पाऊँगी? ऐ दुष्ट विछोड़े! तू आग में जल जा; तुझे मौत आ जाए। मेरे प्रियतम! तू मेरे हृदय की सेज पर आकर सो जा ताकि मेरी विरह की पीड़ा दूर हो जाए।

आगे के श्लोक में गुरु साहिब स्पष्ट करते हैं कि दुर्जन कौन है, वियोग का मरना क्या है और सज्जन से क्या तात्पर्य है।

दुरजन दूजा भाउ है वेछोड़ा हउमै रोग॥
सजण सचा पातसाह जिस मिल कीचै भोग॥ ...
जे तू वतह अंङणे हभ धरत सुहावी होए॥
हिकस कंतै बाहरी मैडी वात न पुछै कोए॥
हभे टोल सुहावणे सहु बैठा अंङण मल॥
पही न वंञै बिरथड़ा जो घर आवै चल॥[3]

शब्दार्थ: कीचै=किया जाता है; **वतह**=आएँ; **अंङणे**=आँगन में, **वात**=बात; **टोल**=सजावट का सामान; **पही**=राही; **वंञै**=जाता है; **बिरथड़ा**=निराश, नाकाम।

भावार्थ: जो अपने प्रियतम को छोड़ किसी दूसरे से प्यार करते हैं; वे दुर्जन हैं। प्रियतम से बिछुड़े रहने का कारण अहं (हौंमैं) का रोग है। वह अविनाशी प्रभु आत्मा का सच्चा मित्र है। उसके मिलाप से ही सच्चा और स्थायी आनंद प्राप्त हो सकता है। हे प्रियतम! जब तू मेरे दिल के आँगन में प्रवेश करता है अर्थात् उसमें प्रकट हो जाता है, तो केवल मेरी काया ही नहीं, सारी धरती सुहावनी हो उठती है; लेकिन जब मुझे तेरे संग का अनुभव नहीं होता, तो मेरी कोई हस्ती नहीं रहती, मैं अपने आप को खोखली महसूस करती हूँ, मुझे कोई पहचानता तक नहीं। जिस हृदय में प्रभुरूपी प्रियतम ने आसन जमा लिया हो, उसके वस्त्र, आभूषण और सजावट की सब वस्तुएँ भी उसे चार चाँद लगा देती हैं। प्रेम से प्रेरित होकर उस मालिक के धाम में आया पथिक (जीवात्मा) ख़ाली हाथ नहीं लौटता, बल्कि उसके अमूल्य प्रसाद का पात्र बन जाता है।

सेज विछाई कंत कू कीआ हभ सीगार॥
इती मंझ न समावई जे गल पहिरा हार॥ ...
जा मू पसी हठ मै पिरी महिजै नाल॥
हभे डुख उलाहिअम नानक नदर निहाल॥
नानक बैठा भखे वाउ लंमे सेवह दर खड़ा॥
पिरीए तू जाण महिजा साउ जोई साई मुह खड़ा॥
किआ गालाइओ भूछ पर वेल न जोहे कंत तू॥
नानक फुला संदी वाड़ खिड़िआ हभ संसार जिउ॥[4]

भावार्थ: मैंने अपने कंत से मिलाप के लिए हृदय की सेज तैयार की है और अपने आप को सँवारा और सजाया है। उसको अच्छी लगने के लिए मैंने सब प्रयत्न किए हैं। मैं इतनी निकटता चाहती हूँ कि मुझे गले में पहने हार जितनी दूरी भी सहन नहीं होती।

जब मैंने अपने हृदय के अंदर झाँका, तो देखा कि मेरा प्रियतम तो मेरे संग है। उसकी दया-मेहर की दृष्टि ने मेरे सभी दुःख और संताप दूर कर दिए हैं।

मैं बड़ी देर से तेरे द्वार पर खड़ी बेचैनी से इंतज़ार कर रही हूँ। मेरे प्रियतम! मेरे इस तरह खड़े होने का प्रयोजन अपने स्वामी के मुख का दीदार करना है।

ऐ नादान! तुझे पराई स्त्री की ओर नहीं देखना चाहिए, क्योंकि तू स्वयं भी तो किसी स्त्री का कंत है और अगर तू क़ुदरत की सुंदरता देखना ही चाहता है तो यह सारा संसार फुलवाड़ी की तरह खिला हुआ है।

कुरीए कुरीए वैदिआ तल गाड़ा महरेर॥
वेखे छिटड़ थीवदो जाम खिसंदो पेर॥
सच जाणै कच वैदिओ तू आघू आघे सलवे॥
नानक आतसड़ी मंझ नैणू बिआ ढल पबण जिउ जुंमिओ॥
भोरे भोरे रूहड़े सेवेदे आलक॥
मुदत पई चिराणीआ फिर कडू आवै रुत॥[5]

शब्दार्थ: **कुरीए कुरीए**=नदी के किनारे-किनारे; **वैदिआ**=जाते-जाते; **गाड़ा महरेर**=बहुत-सी मिट्टी बह चुकी है; **छिटड़ थीवदो**=कीचड़ से लथपथ हो जाएगा; **जाम**=जब; **कच**=नाशवान; **आघू...सलवे**=आगे-आगे जाता है; **आतसड़ी**=आग; **नैणू**=मक्खन; **पबण**=चौपत्ती (नीलोफ़र=नीला कमल); **जुंमिओ**=नष्ट हो जाती है; **भोरे भोरे**=भोली, भूलनेवाली; **रूहड़े**=ऐ आत्मा; **सेवेदे**=सिमरन करने में; **आलक**=आलस्य; **मुदत... चिराणीआ**=बहुत देर हो गई; **कडू**=कब।

भावार्थ: ऐ नदी के किनारे-किनारे जा रहे राही! तेरे पाँवों के नीचे से विकारों के कारण बहुत-सी मिट्टी बह गई है। होशियार रहना। अगर तू थोड़ा-सा भी फिसलेगा, कीचड़ से लथपथ हो जाएगा। तू नश्वर वस्तुओं को स्थायी जानकर उनकी ओर खिंचा चला जाता है,

उन्हें और अधिक बटोरता है। लेकिन जैसे आग में गिरकर मक्खन और तालाब सूख जाने पर कमल नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार ये माया के पदार्थ भी नष्ट हो जाते हैं।

हे मेरी भ्रमों में भूली आत्मा! तूने प्रभु के सिमरन में बहुत आलस्य किया है। तेरी आयु का बहुत-सा समय व्यर्थ बीत गया है। यह मौसम फिर कब आएगा अर्थात् क्या पता यह मनुष्य शरीर तुझे फिर कब मिलेगा?

गुरु की रहमत

गुर मिल लधा जी राम पिआरा राम॥
इह तन मन दितड़ा वारो वारा राम॥
तन मन दिता भवजल जिता चूकी कांण जमाणी॥
असथिर थीआ अंम्रित पीआ रहिआ आवण जाणी॥
सो घर लधा सहज समधा हर का नाम अधारा॥
कहो नानक सुख माणे रलीआं गुर पूरे कंउ नमसकारा॥[1]

शब्दार्थ: **लधा**=पाया; **वारो वारा**=क़ुरबान कर दिया; **चूकी**=ख़त्म हो गई; **कांण**=अधीनता; **जमाणी**=यमराज की; **सहज समधा**=सहज अवस्था में टिका रहनेवाला।

भावार्थ: प्रभुप्रेम में सराबोर गुरु अर्जुन देव जी अपने सतगुरु के प्रति आभार प्रकट करते हुए उन्हें प्रणाम करते हैं, क्योंकि उनकी दया से ही परमात्मा से मिलाप हुआ। आपको गुरु मिला और आपने अपना तन, मन, सब कुछ उसको भेंट कर दिया। इस समर्पण के फलस्वरूप जगत पर जीत प्राप्त हो गई और मौत का भय समाप्त हो गया, यमदूतों की ओर से आप बेफ़िक्र हो गए। नाम का अमृत पीने को मिला। उसने जन्म-मरण से मुक्त कर दिया, उसकी कृपा से अमर जीवन पा लिया। हरिनाम की टेक लेने से अब स्थायी सहज अवस्था प्राप्त कर ली है और हर दृष्टि से सुखी हैं, ख़ुशियाँ प्राप्त कर रहे हैं।

सुण सजण जी मैडड़े मीता राम॥ गुर मंत्र सबद सच दीता राम॥
सच सबद धिआइआ मंगल गाइआ चूके मनहो अदेसा॥
सो प्रभ पाइआ कतह न जाइआ सदा सदा संग बैसा॥
प्रभ जी भाणा सचा माणा प्रभ हर धन सहजे दीता॥
कहो नानक तिस जन बलिहारी तेरा दान सभनी है लीता॥[2]

शब्दार्थ: मैडड़े=मेरे; **अदेसा**=फ़िक्र; **बैसा**=बैठा।

भावार्थ: इस पद में गुरु साहिब अपने सज्जन मित्र को प्रभु प्रियतम से मिलाप के बारे में संबोधित कर रहे हैं। इस प्रकार की बातें अकसर किसी प्यारे मित्र से की जाती हैं। आप अपनी ख़ुशी किसके साथ बाँट रहे हैं, इसका अनुमान लगाना शायद कठिन नहीं। वह कोई और नहीं, उनका अपना निर्मल मन है। (अपनी वाणी में कई जगह गुरु अर्जुन देव ने मन को मित्र कहकर संबोधित किया है, जैसे: *मन पिआरिआ जीउ मित्रा गोबिंद नाम समाले॥ मन पिआरिआ जी मित्रा हर निबहै तेरै नाले॥*[3])

सतगुरु ने क्या करामात दिखाई जिससे वह अगम, अगोचर प्रियतम मिल गया? यही बताते हुए आप कहते हैं कि उसने मुझे सच्चे अनाहत शब्द से जुड़ने का उपाय बता दिया। गुरु की दीक्षा के अनुसार जब मैंने उस सच्चे शब्द का अभ्यास किया, पूरी एकाग्रता से उस शब्द की धुन से जुड़े रहकर प्रियतम का गुणगान किया, तो मन के सारे संशय दूर हो गए। मैं सोचता था कि वह इंद्रियों की पहुँच से परे है; वह हमारी आँखों को नज़र नहीं आता और न ही उसे छुआ जा सकता है। वह तो बहती हवा जैसा भी महसूस नहीं होता। वही प्रभु मुझे आ मिला, ऐसा मिला है कि अब मुझे छोड़कर कहीं नहीं जाएगा, सदा मेरे अंग-संग रहेगा। प्रभु को भा जाना, यही सच्ची बड़ाई है। उसने सहज ही अपने प्रेम की दौलत मुझे बख़्श दी है। गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि मैं उस सतगुरु

पर बलिहारी जाता हूँ जिसने प्रभु-प्रियतम से मिला देनेवाले नाम की दात अपने सब सेवकों को बख़्शी है।

तउ भाणा तां त्रिपत अघाए राम॥
मन थीआ ठंढा सभ त्रिसन बुझाए राम॥
मन थीआ ठंढा चूकी डंझा पाइआ बहुत खजाना॥
सिख सेवक सभ भुंचण लगे हंउ सतगुर कै कुरबाना॥
निरभउ भए खसम रंग राते जम की त्रास बुझाए॥
नानक दास सदा संग सेवक तेरी भगति करंउ लिव लाए॥[4]

शब्दार्थ: त्रिपत अघाए=पूरी तरह तृप्त हो गए; **डंझा**=सख़्त प्यास; **भुंचण**=खाने।

भावार्थ: हे प्रभु! तेरी ऐसी रज़ा हुई तो हम पूरी तरह तृप्त हो गए। मन की केवल एक ही तृष्णा नहीं थी, बल्कि न जाने कितनी और भी तीव्र और प्रचंड तृष्णाएँ थीं। जब वे सब शांत हो गईं तो मन को चैन मिल गया। भविष्य में तृष्णाओं के ताप में जलने की संभावना भी ख़त्म हो गई। सतगुरु से नामरूपी अमृत का इतना बड़ा भंडार मिल गया कि सभी शिष्य और सेवक उसका आनंद लेते हुए कृतार्थ हो गए हैं। इस उपकार के लिए मैं उस सतगुरु दाता पर बलिहारी जाता हूँ। सब प्रभु प्रियतम की प्रीति में रँगे गए हैं, उनके कर्मों की काली रेखाएँ मिट गई हैं। उन्हें धर्मराज के दूतों का भय नहीं रहा और वे हर तरह से बेफ़िक्र हो गए हैं। गुरु साहिब कहते हैं कि मेरी यही कामना है कि मुझे सेवक के रूप में तेरी संगति मिली रहे और मैं एकचित्त होकर तेरी भक्ति में जुटा रहूँ।

पूरी आसा जी मनसा मेरे राम॥
मोहे निरगुण जीउ सभ गुण तेरे राम॥
सभ गुण तेरे ठाकुर मेरे कित मुख तुध सालाही॥

गुण अवगुण मेरा किछु न बीचारिआ बखस लीआ खिन माही॥
नउ निध पाई वजी वाधाई वाजे अनहद तूरे॥
कहो नानक मै वर घर पाइआ मेरे लाथे जी सगल विसूरे॥[5]

शब्दार्थ: **तूरे**=बाजे; **विसूरे**=ग़म और गिले।

भावार्थ: हे मेरे प्रभु! मेरी सब इच्छाएँ, सभी कामनाएँ पूरी हो गई हैं। ऐसी बख़्शिश का अधिकारी बनने के लिए मेरे अंदर तो कोई गुण नहीं, अगर कोई गुण नज़र आता है तो वह तेरी ही रहमत है। तू स्वयं सब गुणों का धनी है। मैं तेरी महिमा का बखान कैसे करूँ? तेरे गुण गाना मेरी सामर्थ्य से बाहर है। हे प्रभु! तूने मेरे गुणों और अवगुणों की ओर ध्यान नहीं दिया; बस, क्षण भर में मुझे बख़्श दिया। हे प्रियतम! मुझे अपनी काया में ही तुझे पा लेने से मानों नौ निधियों के सब सुख मिल गए हैं। इस प्राप्ति के लिए मुझे बधाई के शब्दों की गूँज सुनाई दे रही है। मेरे हृदय में अनहद के बाजे बज रहे हैं और मेरे सब ग़म और गिले-शिकवे ख़त्म हो गए हैं।

सर्वसमर्थ

करण कारण प्रभ एक है दूसर नाही कोए॥
नानक तिस बलिहारणै जल थल महीअल सोए॥[1]

शब्दार्थ: **महीअल**=पृथ्वीतल से ऊपर अर्थात् आकाश में।

भावार्थ: सब कुछ करनेवाला और करवानेवाला एक परमात्मा है। उसकी रचना में किसी और का हाथ नहीं है। गुरु साहिब कहते हैं कि मैं उस पर क़ुरबान जाता हूँ जो जल में, थल में और आकाश में सब जगह व्याप्त है, समाया हुआ है।

करन करावन करनै जोग॥ जो तिस भावै सोई होग॥
खिन मह थाप उथापनहारा॥ अंत नही किछ पारावारा॥
हुकमे धार अधर रहावै॥ हुकमे उपजै हुकम समावै॥
हुकमे ऊच नीच बिउहार॥ हुकमे अनिक रंग परकार॥
कर कर देखै अपनी वडिआई॥ नानक सभ मह रहिआ समाई॥[2]

शब्दार्थ: **थाप उथापनहारा**=बनाकर मिटा देनेवाला; **धार**=बनाकर; **अधर**=आसरे के बिना।

भावार्थ: शुरू से लेकर आज तक जो कुछ किया गया है, वह उसी का किया और करवाया है और आगे भी जो कुछ किया जाएगा, उसे करने या करवाने की सामर्थ्य भी उसी में है। होता वही है जो उसे भाता है। कुछ भी बनाने और मिटाने में उसे क्षण भर भी नहीं लगता। उसकी शक्ति असीम है। उसने सृष्टि अपने हुक्म यानी शब्द द्वारा रचकर बिना किसी सहारे के टिकाकर रखी है।

यह उसके हुक्म यानी शब्द से ही पैदा होती है और फिर हुक्म में ही समा जाती है। ऊँचा या नीचा सब आचार-व्यवहार उसके हुक्म के अनुसार होता है। जो अनेक प्रकार के चमत्कार वह दिखाता है, वह स्वयं उनमें शामिल होता है और स्वयं ही इस महानता का नज़ारा देखता है। वह सब में समाया हुआ है।

प्रभ भावै मानुख गति पावै॥ प्रभ भावै ता पाथर तरावै॥
प्रभ भावै बिन सास ते राखै॥ प्रभ भावै ता हर गुण भाखै॥
प्रभ भावै ता पतित उधारै॥ आप करै आपन बीचारै॥
दुहा सिरिआ का आप सुआमी॥ खेलै बिगसै अंतरजामी॥
जो भावै सो कार करावै॥ नानक द्रिसटी अवर न आवै॥[3]

शब्दार्थ: भाखै=बोलता है; **दुहा सिरिआ**=लोक और परलोक।

भावार्थ: सारी मनुष्य जाति जन्म-मरण के चक्र में फँसी हुई है। उससे बाहर निकलना उसके अपने वश में नहीं। पर अगर प्रभु को भाए तो कोई भी व्यक्ति ऊँची आत्मिक अवस्था प्राप्त करके आवागमन के बंधन से मुक्त हो सकता है। उसे भाता हो तो वह पत्थरदिल जीवों को भी पार लगा सकता है, भले ही उन्हें यह सूझ भी न हो कि वे कर्मों के क़ैदी हैं तथा छूटने के लिए क्या उपाय ज़रूरी हैं और वे उपाय उनकी शक्ति में हैं भी या नहीं। प्रभु उस जीव को भी मरने से बचा सकता है जिसके सभी साँस ख़त्म हो चुके हों। कितने ही ऐसे लोग हैं जो हरि के गुणों की बात तो दूर, उसके अस्तित्व के जानकार भी नहीं और उसकी हस्ती से ही इनकार करते हैं। पर अगर वह चाहे तो ऐसे मनमुख भी उसकी महिमा करने लग जाएँ। साधारण तौर पर जब कोई आत्मा किसी हद तक पापों से मुक्त होकर निर्मल हो जाती है, तभी परिस्थितियाँ उसके पार उतरने में सहायक होती हैं। लेकिन परमात्मा की इच्छा हो तो वह पापों के कुएँ में गिरी आत्माओं को भी उबार लेता है। इस प्रकार का महान उपकार करने के लिए उसे किसी दूसरे से

सलाह नहीं लेनी पड़ती। लोक और परलोक दोनों का मालिक वह स्वयं है। जैसा भी जीवन का खेल खेला जा रहा है, वह आप ही खेल रहा है और इसे देखकर प्रसन्न भी हो रहा है। अगर इस खेल में कोई और खिलाड़ी भाग लेते प्रतीत होते हैं, तो वे भी वैसे ही करते हैं, जैसे प्रभु चाहता है। उनके अंदर भी वही बसता है और उनके दिल की सब बात जानता है। गुरु साहिब बताते हैं कि उन्हें और कोई कर्ता या करानेवाला नज़र नहीं आता।

गुरु की महिमा

गुर गोपाल गुर गोविंदा॥ गुर दइआल सदा बखसिंदा॥
गुर सासत सिम्रिति खट करमा गुर पवित्र असथाना हे॥
गुर सिमरत सभ किलविख नासह॥
गुर सिमरत जम संग न फासह॥
गुर सिमरत मन निरमल होवै गुर काटे अपमाना हे॥[1]

शब्दार्थ: किलविख=पाप।

भावार्थ: गुरु सृष्टि के प्रतिपालक प्रभु का ही रूप है, सर्वज्ञाता प्रभु का स्वरूप है। गुरु सदा दयावान है और गुनाह बख़्शता है। शिष्य के लिए गुरु ही शास्त्र, स्मृतियाँ और धर्मग्रंथ है। उसकी सेवा करना ही शुभ माने जानेवाले छः कर्म करना है। गुरु ही पवित्र स्थान अर्थात् तीर्थ है। उसकी शरण में जाने पर इधर-उधर भटकने की आवश्यकता नहीं रहती। गुरु का सिमरन करने से सेवक के सब पाप नष्ट हो जाते हैं। उसका सिमरन करनेवाला यमदूतों के वश में नहीं पड़ता। उसके सिमरन से मन निर्मल हो जाता है और इस प्रकार गुरु उसे धर्मराज के हाथों होनेवाले अपमान से बचा लेता है।

गुर का सेवक नरक न जाए॥ गुर का सेवक पारब्रहम धिआए॥
गुर का सेवक साधसंग पाए गुर करदा नित जीअ दाना हे॥
गुर दुआरै हर कीरतन सुणीऐ॥ सतगुर भेट हर जस मुख भणीऐ॥
कल कलेस मिटाए सतगुर हर दरगह देवै मानां हे॥[2]

शब्दार्थ: जीअ दाना=जीवन-दान; **भणीऐ**=उच्चारण किया जाता है; **मानां**=आदर।

भावार्थ: गुरु का सिमरन करने से सेवक का मन निर्मल हो जाता है, पाप कट जाते हैं, जिसके कारण वह नरक में नहीं जाता। वह पारब्रह्म की भक्ति में लीन रहता है। उसे गुरमुखों की संगति प्रिय होती है और वह नित्य अपने गुरु से जीवन दान लेता है अर्थात् उसकी संगति में सेवकों को रूहानी लाभ प्राप्त होता है। गुरु के द्वार पर सेवक को हरिकीर्तन (शब्दधुन) सुनने को मिलता है। सतगुरु की संगति में वह हरि का यश और महिमा करता है। सतगुरु की दया से सेवक की सब समस्याएँ और कष्ट दूर हो जाते हैं और वह हरि की दरगाह में सम्मान पाता है।

मनुष्य बेचारा

इस का बल नाही इस हाथ॥ करन करावन सरब को नाथ॥
आगिआकारी बपुरा जीउ॥ जो तिस भावै सोई फुन थीउ॥
कबहू ऊच नीच मह बसै॥ कबहू सोग हरख रंग हसै॥
कबहू निंद चिंद बिउहार॥ कबहू ऊभ अकास पइआल॥
कबहू बेता ब्रहम बीचार॥ नानक आप मिलावणहार॥[1]

शब्दार्थ: **फुन**=पुन: फिर; **थीउ**=हो जाता है; **ऊभ**=ऊँचा।

भावार्थ: मनुष्य का बल अथवा कुछ कर सकने की शक्ति उसके अपने हाथ में नहीं है। वह जैसे चाहे उसका उपयोग वैसे नहीं कर सकता। करने-करवानेवाला वह स्वयं परमेश्वर ही है। बेचारे मनुष्य को तो हुक्म का पालन ही करना है। वह मालिक जो कुछ चाहता है, मनुष्य से बिलकुल वही हो जाता है। उसके मन की स्थिति हमेशा एक जैसी नहीं रहती। कभी हौसला बुलंद होता है, तो कभी पस्त। कभी ग़म में डूबा होता है, कभी प्रसन्नचित्त होकर हँसता है और कभी औरों के अवगुण ढूँढ़ने और उनकी निंदा करने लगता है। एक क्षण उसकी कल्पना आकाश में भ्रमण करती है, दूसरे क्षण पाताल में। किसी समय यह सूझ-बूझ पाकर अपने सिरजनहार के बारे में भी विचार करता है, लेकिन उससे इसका मिलाप तभी होता है जब वह ख़ुद इस पर दया करता है।

कबहू निरत करै बहु भात॥ कबहू सोए रहै दिन रात॥
कबहू महा क्रोध बिकराल॥ कबहूं सरब की होत रवाल॥

कबहू होए बहै बड राजा॥ कबहू भेखारी नीच का साजा॥
कबहू अपकीरत मह आवै॥ कबहू भला भला कहावै॥
जिउ प्रभ राखै तिव ही रहै॥ गुर प्रसाद नानक सच कहै॥[2]

शब्दार्थ: **रवाल**=धूलि; **साजा**=वेष।

भावार्थ: सरसरी तौर पर देखा जाए, तो लगता है कि मनुष्य पशुओं की भाँति किसी दूसरे के अधीन नहीं है, वह अपना मनचाहा करता है। पर हक़ीक़त में तीन गुण और पाँच विकार बारी-बारी से जिस प्रकार उसे नचाते हैं, वह बेबस उसी प्रकार नाचता है। कभी उसे ऐसा आलस्य होता है कि वह अपना सारा समय सोकर व्यर्थ गुज़ार देता है। जब अंधा क्रोध इसके सिर पर सवार होता है, तो उससे डर लगने लगता है। इसके विपरीत कभी वह इतना नम्र हो जाता है जैसे हर किसी के पाँवों की धूलि हो। कभी वह इतना बड़ा बनकर दिखाता है, जैसे वह राजा हो और कभी इतना दीन हो जाता है जैसे भिखारी हो। कभी उसके चरित्र में ऐसी गिरावट आती है कि उसे फटकारें पड़ती हैं और कभी वह इतने शुभ गुण धारण कर लेता है कि उसकी नेकी के चर्चे चारों तरफ़ होते हैं। वास्तव में उसके अपने वश में कुछ नहीं। वह उसी तरह रहता है जैसा प्रभु उसे रखता है। गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि मैं गुरु की दया से ही यह यथार्थ जान सका हूँ और इसका वर्णन कर रहा हूँ।

कबहू होए पंडित करे बख्यान॥ कबहू मोन धारी लावै धिआन॥
कबहू तट तीरथ इसनान॥ कबहू सिध साधिक मुख गिआन॥
कबहू कीट हसति पतंग होए जीआ॥ अनिक जोनि भरमै भरमीआ॥
नाना रूप जिउ स्वागी दिखावै॥ जिउ प्रभ भावै तिवै नचावै॥
जो तिस भावै सोई होए॥ नानक दूजा अवर न कोए॥[3]

शब्दार्थ: **हसति**=हाथी।

भावार्थ: कभी वह श्रोताओं को प्रभावित करने के लिए एक विद्वान के रूप में व्याख्यान देने आरंभ कर देता है और कभी मौन धारण करके ध्यान लगा लेता है। कभी तीर्थों की पवित्र मानी जानेवाली नदियों के किनारे पर स्नान करता है, कभी सिद्ध या साधक बनकर ज्ञान की बातें छेड़ देता है। यह सदा मनुष्य शरीर में ही जन्म नहीं लेता, बल्कि कीड़े, हाथी और पतंगे जैसी योनियों में भी जन्म लेता है। इन योनियों में आत्मिक उन्नति करने की समझ नहीं होती। इसलिए उसकी अनेक योनियों में जन्म लेने की लंबी लड़ी जारी रहती है। जिस प्रकार बहुरूपिया भिन्न-भिन्न प्रकार की शक्लें धारण करता है, उसी प्रकार मनुष्य भी तरह-तरह की खानियों में भटकता हुआ भिन्न-भिन्न रूप ग्रहण करता है। अंतर केवल इतना ही है कि बहुरूपिया अपनी मरज़ी के अनुसार तरह-तरह की भूमिकाएँ निभाता है, परंतु जीव को वही बनना पड़ता है जो परमात्मा को भाता है। सब कुछ सिरजनहार की रज़ा से ही होता है, इस व्यवस्था में किसी और का कोई दख़ल नहीं होता।

कबहू साधसंगत इह पावै॥ उस असथान ते बहुर न आवै॥
अंतर होए गिआन परगास॥ उस असथान का नही बिनास॥
मन तन नाम रते इक रंग॥ सदा बसह पारब्रहम कै संग॥
जिउ जल मह जल आए खटाना॥ तिउ जोती संग जोत समाना॥
मिट गए गवन पाए बिस्राम॥ नानक प्रभ कै सद कुरबान॥[4]

शब्दार्थ: खटाना=मिल जाता है।

भावार्थ: जब मनुष्य को संत की संगति प्राप्त हो जाती है, तो वह अंतर्मुख अभ्यास करके ऐसी अवस्था पा लेता है जो अविनाशी है, फिर वह वहाँ से लौटना नहीं चाहता। उसका हृदय ज्ञान से जगमगा उठता है और वह परमपद पा लेता है। मनुष्य का मन और तन प्रभु के नाम और उसके प्रेम में सराबोर हो जाते हैं और परमेश्वर सदा उसके अंग-संग रहता है। जिस प्रकार नदी का पानी समुद्र में मिलकर उससे

अलग नहीं होता, उसी प्रकार मनुष्य की ज्योति (आत्मा) परमज्योति अर्थात् परमात्मा में समा जाने पर उससे अलग नहीं होती। मनुष्य का संसार में आना-जाना ख़त्म हो जाता है और उसे सदा रहनेवाला सुख मिल जाता है। गुरु साहिब कहते हैं कि मैं प्रभु पर हर पल क़ुरबान जाता हूँ जिसकी दया से मनुष्य भवसागर के पार उतर जाता है।

कहो मानुख ते किआ होए आवै॥ जो तिस भावै सोई करावै॥
इस कै हाथ होए ता सभ किछ लेइ॥ जो तिस भावै सोई करेइ॥
अनजानत बिखिआ मह रचै॥ जे जानत आपन आप बचै॥
भरमे भूला दह दिस धावै॥ निमख माहे चार कुंट फिर आवै॥
कर किरपा जिस अपनी भगति देइ॥ नानक ते जन नाम मिलेइ॥[5]

भावार्थ: आपके वचन सुनने पर किसी के मन में यह शंका उठ सकती है कि मनुष्य की कर्मेंद्रियाँ तो सारा समय किसी न किसी काम में लगी रहती हैं, फिर उसके कर्मों को अनदेखा करके परमात्मा को ही सब कुछ करनेवाला कैसे माना जा सकता है? इस शंका का समाधान करने के लिए गुरु साहिब कहते हैं कि आप ही बताएँ, मनुष्य स्वयं कर ही क्या सकता है? हर कोई केवल वही कर सकता है जो परमात्मा उससे करवाना चाहता है। जीव के मन में कितनी कामनाएँ उठती हैं और उनकी पूर्ति के लिए वह भरसक संघर्ष करता रहता है। अगर उसका बस चलता हो, तो वह अपने बल से सब कुछ प्राप्त कर लेता। अगर प्रभु की रज़ा से उसकी इच्छा पूरी नहीं होनी, तो वह कोशिश ही इस तरह करता है कि वह सफल नहीं होता। अगर प्रभु की मौज उसे तृप्त करने की हो तो उसका प्रयत्न सहज ही सफल हो जाता है। कई बार तो जो कुछ वह चाहता है, बिना हाथ-पैर हिलाए उसे मिल जाता है।

मनुष्य को इतनी सूझ-बूझ नहीं है कि इंद्रियों के रसों की ओर आकर्षित होना उसके लिए हानिकारक है। इसलिए वह उनका सुख प्राप्त करने के लिए कर्म करता है और जब उन कर्मों के परिणाम

भुगतने पड़ते हैं, तो रोता और पछताता है। अगर वह इस अज्ञानता का शिकार न हो, तो विषय-भोगों के मार्ग पर न चले। मन और माया द्वारा गुमराह मनुष्य जगह-जगह, सभी दिशाओं में भटकता फिरता है। उसका मन पलक झपकते ही चारों तरफ़ घूम आता है। गुरु साहिब बताते हैं कि जिस प्राणी को परमात्मा अपनी भक्ति की दात बख़्शता है, उसे न विषय सताते हैं और न वह माया का दास बनकर जगह-जगह व्यर्थ भटकता है। वह नाम की साधना करता है और परमात्मा से जा मिलता है, अपने स्रोत में समा जाता है।

खिन मह नीच कीट कउ राज॥ पारब्रहम गरीब निवाज॥
जा का द्रिसटि कछू न आवै॥ तिस ततकाल दह दिस प्रगटावै॥
जा कउ अपुनी करै बखसीस॥ ता का लेखा न गनै जगदीस॥
जीउ पिंड सभ तिस की रास॥ घट घट पूरन ब्रहम प्रगास॥
अपनी बणत आप बनाई॥ नानक जीवै देख बडाई॥[6]

शब्दार्थ: प्रगटावै=प्रसिद्ध कर देता है।

भावार्थ: प्रभु ग़रीबनिवाज़ है क्योंकि उसकी रज़ा हो तो वह पल भर में कीट के समान तुच्छ मनुष्य को राजा बना देता है। उसकी रज़ा हो तो नज़रों में न आनेवाले एक मामूली इनसान का यश दसों दिशाओं में तत्काल ही फैल जाता है। प्रभु जिस पर अपनी बख़्शिश करता है, उसके कर्मों का लेखा नहीं देखता। यह जीवात्मा और काया उसी प्रभु की दी हुई पूँजी है, घट-घट में उसी का प्रकाश समाया हुआ है। इस सृष्टि की रचना प्रभु ने आप ही की है और वह अपनी इस महान लीला को देखकर प्रसन्न हो रहा है।

एक ही टेक

मै बंदा बै खरीद सच साहिब मेरा॥
जीउ पिंड सभ तिस दा सभ किछ है तेरा॥
माण निमाणे तूं धणी तेरा भरवासा॥
बिन साचे अन टेक है सो जाणहो काचा॥[1]

भावार्थ: हे मेरे सच्चे मालिक! मैं तेरा ख़रीदा हुआ ग़ुलाम हूँ। जो कुछ मेरा है, वास्तव में तेरा है, ठीक वैसे ही जैसे प्राण, शरीर और अन्य जो कुछ भी ग़ुलामों का होता है, वह सब उनके स्वामी का ही हुआ करता है। तू मुझ मानहीन का मान है। मेरे मालिक! मैं पूरी तरह केवल तुझ पर ही निर्भर हूँ। जो लोग तुझ सच्चे के अतिरिक्त किसी और की ओट लेते हैं, वे कच्चे हैं; उनकी प्रीति में कमी है, वह अधूरी है।

तेरा हुकम अपार है कोई अंत न पाए॥
जिस गुर पूरा भेटसी सो चलै रजाए॥[2]

भावार्थ: प्रभु का हुक्म सर्वत्र चलता है। वह अपार है, उसकी कोई सीमा नहीं है, कोई उसके अंत तक नहीं पहुँच सकता। इसलिए जो कोई मनमानी करता है, अनजाने में करता है। जिसे पूरे गुरु का मार्गदर्शन प्राप्त हो जाए, वह सदा उसके हुक्म में रहता है।

चतुराई सिआणपा कितै काम न आईऐ॥
तुठा साहिब जो देवै सोई सुख पाईऐ॥[3]

भावार्थ: मनुष्य की अपनी चतुराइयाँ, चालाकियाँ कोई कार्य नहीं सँवारतीं, वे सब व्यर्थ ही जाती हैं। इसलिए परमेश्वर दयाल होकर जो कुछ बख़्शे, उसी में संतुष्ट रहना चाहिए।

जे लख करम कमाईअह किछ पवै न बंधा॥
जन नानक कीता नाम धर होर छोडिआ धंधा॥[4]

भावार्थ: अगर कोशिश करके लाखों उपाय भी कर लिए जाएँ, तो भी तृष्णा का वेग कम नहीं होता। इसलिए हमने तो नाम को ही अपना एकमात्र आधार बना लिया है तथा मन के सुझाए और सब धंधे छोड़ दिए हैं।

तूं मेरा सखा तूंही मेरा मीत॥ तूं मेरा प्रीतम तुम संग हीत॥
तूं मेरी पत तूहै मेरा गहणा॥ तुझ बिन निमख न जाई रहणा॥
तूं मेरे लालन तूं मेरे प्रान॥ तूं मेरे साहिब तूं मेरे खान॥[5]

शब्दार्थ: खान=सरताज।

भावार्थ: हे प्रभु! मेरा साथी और मित्र तू ही है। तू ही मेरा प्यारा है, तेरी संगति में ही मेरी भलाई है। तेरे कारण ही मेरी इज़्ज़त है, तू ही मेरा आभूषण है। तेरे बिना मैं पल भर भी नहीं जी सकता। तू ही मुझ से लाड़ करनेवाला है, तू ही मेरी जान है। मेरा मालिक तू है, मेरा सरताज तू है।

जिउ तुम राखहो तिव ही रहना॥ जो तुम कहहो सोई मोहे करना॥
जह पेखउ तहा तुम बसना॥ निरभउ नाम जपउ तेरा रसना॥[6]

भावार्थ: तू जैसे रखना चाहे, मुझे उसी तरह रहना है; जो भी करने का तेरा हुक्म हो, वही मुझे करना है। जिधर भी मैं देखता हूँ, वहाँ तू ही बसता नज़र आता है। मैं तेरे नाम का जाप करने से निर्भय हो गया हूँ।

तूं मेरी नव निध तूं भंडार॥ रंग रसा तूं मनह अधार॥
तूं मेरी सोभा तुम संग रचीआ॥ तूं मेरी ओट तूं है मेरा तकीआ॥[7]

शब्दार्थ: रचीआ=मिला हुआ; **तकीआ**=टेक, सहारा।

भावार्थ: तू मेरे लिए नौ प्रकार की निधियों का भंडार है। तू ही मुझे अपने प्रेम का आनंद देता है, तू ही मेरे मन का सहारा है। मेरी शोभा का स्रोत तू है। मैं तुझ में ही मिल गया हूँ। मेरी ओट, मेरी टेक एक तू ही है।

मन तन अंतर तुही धिआइआ॥ मरम तुमारा गुर ते पाइआ॥
सतगुर ते द्रिड़िआ इक एकै॥ नानक दास हर हर हर टेकै॥[8]

भावार्थ: मैंने तुझे ही अपने मन और तन में बसाया है और तेरा ही ध्यान किया है। तेरा भेद पा लेना मेरी अपनी खोज का फल नहीं, गुरु की बख़्शिश है। सतगुरु की कृपा से मेरी यह निश्चित धारणा बन गई है कि परमात्मा एक ही है और इस दास को उस एक हरि की ही टेक है।

प्रभु की कृपा से

तउ किरपा ते मारग पाईऐ॥ प्रभ किरपा ते नाम धिआईऐ॥
प्रभ किरपा ते बंधन छुटै॥ तउ किरपा ते हउमै तुटै॥
तुम लावहो तउ लागह सेव॥ हम ते कछू न होवै देव॥[1]

भावार्थ: हे प्रभु! जब तेरी दया हो, तभी तेरी प्राप्ति के रास्ते का ज्ञान होता है। जब तू कृपालु हो, तभी नाम का सिमरन किया जा सकता है। तू मेहरबान हो जाए, तो जीव माया के तरह-तरह के जंजालों से छूट जाता है। तेरी दया-मेहर से ही हौंमैं की दीवार टूटती है। तेरी सेवा में कोई तभी लगता है जब तू ख़ुद लगाए। हम बेचारे जीव अपने आप कुछ करने के योग्य नहीं हैं।

तुध भावै ता गावा बाणी॥ तुध भावै ता सच वखाणी॥
तुध भावै ता सतगुर मइआ॥ सरब सुखा प्रभ तेरी दइआ॥[2]

शब्दार्थ: वखाणी=प्रशंसा या गुण-गान करना; **मइआ**=दया।

भावार्थ: अगर तुझे भाता है, तभी मैं शब्द का अभ्यास कर सकता हूँ। अगर तुझे भाता है, तभी ज़बान से सत्य का यानी तेरे नाम का उच्चारण होता है। सतगुरु की दया भी तभी होती है, अगर तुझे भाए। तेरी कृपा से ही मनुष्य को सब प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं।

जो तुध भावै सो निरमल करमा॥ जो तुध भावै सो सच धरमा॥
सरब निधान गुण तुम ही पास॥ तूं साहिब सेवक अरदास॥

मन तन निरमल होए हर रंग॥ सरब सुखा पावउ सतसंग॥
नाम तेरै रहै मन राता॥ इह कलिआण नानक कर जाता॥[3]

भावार्थ: जो तुझे भाता है, वही कर्म निर्मल है, वही धर्म सच्चा है। सारे गुणों का भंडार तेरे अपने पास है। तू मालिक है, सेवक को कुछ भी पाने के लिए तुझसे अर्ज़ या विनती करनी होती है। मेरी विनती यह है कि मेरा तन और मन प्रभु की प्रीति में रँगकर पवित्र हो जाएँ। मुझे सब सुख देनेवाला सच्चा सत्संग प्राप्त हो जाए। मेरा मन तेरे नाम के सिमरन में लीन रहे। मुझे अपना कल्याण इस विनती के पूरी होने में ही नज़र आता है।

नाम का दाता

मन मंदर तन साजी बार॥ इस ही मधे बसत अपार॥
इस ही भीतर सुनीअत साहु॥ कवन बापारी जा का ऊहा विसाह॥
नाम रतन को को बिउहारी॥ अंम्रित भोजन करे आहारी॥[1]

शब्दार्थ: **बार**=बाड़; **विसाह**=विश्वास।

भावार्थ: मनुष्य का हृदय एक मकान है और उसके चारों तरफ़ शरीर की बाड़ लगाई गई है। इस मकान के अंदर एक दुर्लभ, अनमोल चीज़ रखी हुई है और कहते हैं कि उस चीज़ का मालिक भी मकान के अंदर ही रहता है। ज़रूरत यह जानने की है कि वह व्यापारी कौन है जो उस वस्तु के मालिक का विश्वासपात्र है। वह वस्तु प्रभु का अनमोल नाम है और उसका व्यापार कोई विरला व्यापारी ही करता है, जिसने उसके अमृत के पान को ही अपने जीवन का आधार बना लिया हो।

मन तन अरपी सेव करीजै॥ कवन सो जुगति जित कर भीजै॥
पाए लगउ तज मेरा तेरै॥ कवन सो जन जो सउदा जोरै॥[2]

शब्दार्थ: **भीजै**=प्रसन्न होना; **जोरै**=करवा दो।

भावार्थ: वह प्रियजन कौन है जो उस रत्न का सौदा करवा दे? वह कौन-सी युक्ति है जिसके द्वारा उसे रिझाया जा सकता है? मैं 'मेरा-तेरा' के भाव को मिटाकर उसके पाँव पड़ जाऊँगा। अपना तन और मन भेंट करके उसकी सेवा में जुट जाऊँगा।

महल साह का किन बिधि पावै॥ कवन सो बिधि जित भीतर बुलावै॥
तूं वड साहु जा के कोट वणजारे॥ कवन सो दाता ले संचारे॥[3]

शब्दार्थ: **संचारे**=पहुँचा दे।

भावार्थ: मालिक के महल तक कैसे पहुँचा जाता है? कौन-सा साधन प्रयोग किया जाए जिससे वह महल के अंदर बुला ले?

हे प्रभु! यह बात तो समझ में आती है कि वास्तव में तू बहुत बड़े भंडार का मालिक है जिसका व्यापार करोड़ों लोग करना चाहते हैं। पर वह दाता कौन है जो नामरूपी रत्न तुझसे लेकर मुझे बख़्श दे?

खोजत खोजत निज घर पाइआ॥ अमोल रतन साच दिखलाइआ॥
कर किरपा जब मेले साह॥ कहो नानक गुर कै वेसाह॥[4]

शब्दार्थ: **अमोल रतन**=नाम; **साह**=परमात्मा ने; **वेसाह**=एतबार के कारण।

भावार्थ: आप कहते हैं कि उस अनमोल वस्तु को पाने के लिए की गई कोशिश सफल हो गई है। मनचाही वस्तु, नामरूपी रत्न मिल गया है और अपने असली घर (सचखंड) में न केवल प्रवेश प्राप्त हो गया, बल्कि शाह से मिलाप भी हो गया है। मालिक ने मिलाप की कृपा अपने विश्वासपात्र गुरु के माध्यम से की।

सेवा

हर सिउ जुरै त सभ को मीत॥ हर सिउ जुरै त निहचल चीत॥
हर सिउ जुरै न विआपै काढ़ा॥ हर सिउ जुरै त होए निसतारा॥
रे मन मेरे तूं हर सिउ जोर॥ काज तुहारै नाही होर॥
वडे वडे जो दुनीआदार॥ काहू काज नाही गावार॥
हर का दास नीच कुल सुणह॥ तिस कै संग खिन मह उधरह॥[1]

शब्दार्थ: **काढ़ा**=फ़िक्र, पछतावा।

भावार्थ: अगर कोई सिरजनहार से प्रीति कर लेता है तो उसे हर कोई अपना मित्र दिखाई देता है, क्योंकि हर जीव प्रभु की संतान है, इसलिए सभी जीवों के प्रति अपनत्व की भावना का जागना स्वाभाविक है। प्रभु से जुड़ जाने से मन डोलता नहीं। जब सर्वशक्तिमान प्रभु को अपना आधार बना लिया, तो चिंता या दुविधा में पड़ने की कोई गुंजाइश नहीं रहती। उस सर्वसमर्थ के साथ जुड़ जाने पर कोई फ़िक्र, कोई चिंता नहीं सताती। फिर हम अनेक समस्याओं और कष्टों के इस संसार सागर को पार कर जाते हैं।

अपने मन को संबोधित करके गुरु साहिब हमें समझाते हैं कि केवल हरि के बन जाओ, क्योंकि यही एक सच्चा और स्थिर रिश्ता है। तुम्हारे काज कोई और नहीं सँवार सकता। जो लोग इस दुनिया में बहुत दौलत या हुकूमत हथिया कर बैठे हैं, उनसे किसी लाभ या सहायता की आशा रखना मूर्खता है। इसके विपरीत जो कोई गुरु की सेवा में लगा हो, लोग चाहे उसको निम्न कुल का बताते हों, उसकी एक पल की संगति से हम पार उतर जाते हैं।

कोट मजन जा कै सुण नाम॥ कोट पूजा जा कै है धिआन॥
कोट पुंन सुण हर की बाणी॥ कोट फला गुर ते बिधि जाणी॥
मन अपुने मह फिर फिर चेत॥ बिनस जाहे माइआ के हेत॥
हर अबिनासी तुमरै संग॥ मन मेरे रच राम कै रंग॥[2]

शब्दार्थ: **हेत**=मोह।

भावार्थ: जिस प्रभु का नाम यानी शब्द सुनने से तीर्थों पर करोड़ों स्नान करने का, जिससे लगन लगाने से करोड़ों पूजा और करोड़ों पुण्यों का फल प्राप्त किया जा सकता है, उस परमेश्वर से मिलाप करने के लिए गुरु से इसकी युक्ति सीखनी पड़ती है और उस युक्ति से करोड़ों शुभ फलों का अधिकारी बना जा सकता है। नाम, ध्यान और शब्द के अभ्यास के रूप में प्रभु की प्रेमपूर्ण भक्ति करने पर अनेक शुभ फल प्राप्त होते हैं, जिनका भेद गुरु देता है। गुरु अर्जुन देव हमें उस परमेश्वर को मन ही मन निरंतर याद करने और उसकी प्रीति में रँग जाने की ताकीद करते हैं। वे समझाते हैं कि ऐसा करने से माया के मोह के बंधन टूट जाएँगे और अविनाशी प्रभु अंग-संग रहने लगेगा। इसलिए हे मेरे मन! उस एक प्रभु के रंग में रँग जा।

जा कै काम उतरै सभ भूख॥ जा कै काम न जोहहे दूत॥
जा कै काम तेरा वड गमर॥ जा कै काम होवह तूं अमर॥
जा के चाकर कउ नही डान॥ जा के चाकर कउ नही बान॥
जा कै दफतर पुछै न लेखा॥ ता की चाकरी करहो बिसेखा॥[3]

शब्दार्थ: **काम**=कामना; **जोहहे**=देखना; **गमर**=इज़्ज़त; **डान**=सज़ा; **बान**=रुकावट; **बिसेखा**=विशेष रूप से।

भावार्थ: हे मेरे मन! तू अपने पूरे यत्न और प्रेम से उस मालिक की सेवा कर जिसके मिलाप की कामना करने से हर प्रकार की सांसारिक तृष्णा शांत हो जाती है और धर्मराज के दूत आँख उठाकर

भी नहीं देखते। उस प्रभु से मिलने की चाह रखने पर तेरी इज़्ज़त और प्रताप में वृद्धि होगी और तू अमर हो जाएगा। उस मालिक के सेवक को कोई सज़ा नहीं भुगतनी पड़ती। रूहानियत के मार्ग में उसे किसी रुकावट का सामना नहीं करना पड़ता और धर्मराज की अदालत में कोई उसके कर्मों का हिसाब-किताब नहीं करता।

जा कै ऊन नाही काहू बात॥ एकह आप अनेकह भात॥
जा की द्रिसटि होए सदा निहाल॥ मन मेरे कर ता की घाल॥
ना को चतुर नाही को मूड़ा॥ ना को हीण नाही को सूरा॥
जित को लाइआ तित ही लागा॥ सो सेवक नानक जिस भागा॥[4]

शब्दार्थ: ऊन=कमी।

भावार्थ: मेरे मन! तू उस मालिक की सेवा कर जिसके घर में किसी प्रकार की कोई कमी नहीं, जिसने एक होते हुए भी अनेक रूप धारण कर रखे हैं और जिसकी कृपादृष्टि तुझे स्थायी आनंद प्रदान करेगी।

सत्य यह है कि न कोई चतुर है और न कोई मूर्ख है। न कोई निर्बल है और न कोई सूरमा है। हर कोई वही कर रहा है जो करने के लिए उसे लगाया गया है। गुरु साहिब स्पष्ट करते हैं कि अनंत फल देनेवाली प्रभु की सेवा वही कर पाता है जिसे वह स्वयं यह सौभाग्य बख़्शता है।

मालिक की मेहर और बख़्शिश

चतुर दिसा कीनो बल अपना सिर ऊपर कर धारिओ॥
क्रिपा कटाख्य अवलोकन कीनो दास का दूख बिदारिओ॥[1]

शब्दार्थ: क्रिपा कटाख्य=दयादृष्टि; **बिदारिओ**=नष्ट कर दिया।

भावार्थ: प्रभु ने अपने इस दास के चारों ओर अपनी शक्ति की दीवार खड़ी कर दी है, सिर पर हाथ रखा और अपनी दयादृष्टि से बख़्श दिया है। इस तरह मेरा सब दु:ख दूर हो गया है।

हर जन राखे गुर गोविंद॥
कंठ लाए अवगुण सभ मेटे दइआल पुरख बखसंद॥[2]

भावार्थ: गुरु जो प्रभु का ही प्रकट रूप है, उसने इस दास की रक्षा की। उस दया की मूर्ति और बख़्शनहार ने मेरी सब कमियाँ अनदेखी करके मुझे गले लगा लिया।

जो मागह ठाकुर अपुने ते सोई सोई देवै॥
नानक दास मुख ते जो बोलै ईहा ऊहा सच होवै॥[3]

शब्दार्थ: ईहा ऊहा=लोक और परलोक दोनों में।

भावार्थ: यह मालिक का बड़प्पन है कि मैं जो कुछ उससे माँगता हूँ, वह दे देता है। उसका यह दास जो भी मुख से निकालता है, इस लोक और परलोक दोनों में पूरा हो जाता है।

अउखी घड़ी न देखण देई अपना बिरद समाले॥
हाथ देइ राखै अपने कउ सास सास प्रतिपाले॥[4]

भावार्थ: हर प्राणी के कर्मों के अनुसार उसके प्रारब्ध में दुखों का समय आता है। पर वह मालिक जिस किसी को अपना लेता है, उसे अपना हाथ देकर, सहारा देकर दुःख से बचा लेता है। इस प्रकार वह अपने दयालु और बख़्शिंद होने के बिरद का पालन करता है। वह जीव के अवगुणों की ओर ध्यान नहीं देता और हर क्षण सँभाल करता है।

प्रभ सिउ लाग रहिओ मेरा चीत॥
आद अंत प्रभ सदा सहाई धंन हमारा मीत॥[5]

भावार्थ: मेरी लिव प्रभु से जुड़ी हुई है। मैं अपने उस मित्र को धन्य मानता हूँ जो सदा से मेरा सहायक रहा है और अंत तक रहेगा। सांसारिक जीवों की तरह वह किसी भी हालत में पीठ नहीं फेरता।

मन बिलास भए साहिब के अचरज देख बडाई॥
हर सिमर सिमर आनद कर नानक प्रभ पूरन पैज रखाई॥[6]

भावार्थ: उसकी आश्चर्यजनक शोभा देखकर मेरा हृदय-कमल ख़ुशी से खिल उठा और मैं उसका होकर रह गया। उस परमेश्वर ने मेरी पूरी तरह लाज रखी है और मैं प्रभु के सिमरन से आनंद ले रहा हूँ।

एक नाम

प्रान सुखदाता जीअ सुखदाता तुम काहे बिसारिओ अगिआनथ॥
होछा मद चाख होए तुम बावर दुलभ जनम अकारथ॥
रे नर ऐसी करह इआनथ॥
तज सारंगधर भ्रम तू भूला मोह लपटिओ दासी संग सानथ॥[1]

शब्दार्थ: अगिआनथ=ज्ञान से हीन; **इआनथ**=नासमझी; **सारंगधर**=परमात्मा; **सानथ**=संबंध।

भावार्थ: अरे नासमझ ! प्राणों और आत्मा को सुख देनेवाले अपने प्रभु को तूने क्यों भुला दिया है? तू सांसारिक रसों का नशा पीकर, अपने अमूल्य जन्म को व्यर्थ गँवा रहा है। तू यह क्या मूर्खता कर रहा है कि भ्रमों में खोया हुआ अपने रचयिता परमपिता परमात्मा को तजकर उसकी दासी माया के मोह में मस्त है, उससे संबंध जोड़ रखा है?

धरणीधर तिआग नीच कुल सेवह हउ हउ करत बिहावथ॥
फोकट करम करह अगिआनी मनमुख अंध कहावथ॥
सत होता असत कर मानिआ जो बिनसत सो निहचल जानथ॥
पर की कउ अपनी कर पकरी ऐसे भूल भुलानथ॥[2]

शब्दार्थ: बिहावथ=गुज़रती है; **भुलानथ**=ग़लती करता है।

भावार्थ: तू पृथ्वी के आधार (परमेश्वर) से संबंध तोड़कर माया की सेवा में जुट गया और अहं के वश अपना समय बिता रहा है। अज्ञानवश तू जो कर्म कर रहा है, उनमें कोई अच्छाई नहीं;

वे व्यर्थ हैं। इसी लिए तू अंधा और मन मरज़ी करनेवाला कहलाता है। जो सच्चा और स्थायी है, उस परमेश्वर के अस्तित्व को तू स्वीकार नहीं करता और रचना, जो मायामयी और नाशवान है, उसे तू ठोस यथार्थ मानता है। जो कुछ पराया है, उसे अपना समझकर अपना बनाने की कोशिश सरासर भूल है।

खत्री ब्राहमण सूद वैस सभ एकै नाम तरानथ॥
गुर नानक उपदेस कहत है जो सुनै सो पार परानथ॥[3]

शब्दार्थ: तरानथ=तरते हैं; पार परानथ=पार पहुँच जाते हैं।

भावार्थ: क्षत्रिय, ब्राह्मण, शूद्र या वैश्य—कोई किसी भी जाति या वर्ग का हो, सभी एकमात्र नाम के सहारे ही भवसागर के पार होते हैं। गुरु साहिब का कथन है कि जो कोई उस प्रभु के नाम (अनहद शब्द) को सुनता है, उसका बेड़ा पार हो जाता है।

हरिरस का अमृत

आन रसा जेते तै चाखे॥ निमख न त्रिसना तेरी लाथे॥
हर रस का तूं चाखह साद॥ चाखत होए रहहे बिसमाद॥
अंम्रित रसना पीउ पिआरी॥ इह रस राती होए त्रिपतारी॥[1]

भावार्थ: प्यारी रसना! जितने भी अन्य रस तू चखकर देख चुकी है, उनसे तेरी तृष्णा नाममात्र के लिए भी कम नहीं हुई। तूने कितने ही रस बार-बार चखकर, बदल-बदलकर देख लिए, लेकिन तेरी तृष्णा ज्यों की त्यों बनी रही। अगर तू एक बार हरिरस पीकर देख ले, तो उसके रस की मस्ती में तू इतनी डूब जाएगी कि फिर सदा के लिए तृप्त होकर तृष्णा से ही मुक्त हो जाएगी।

हे जिहवे तूं राम गुण गाउ॥ निमख निमख हर हर हर धिआउ॥
आन न सुनीऐ कतहूं जाईऐ॥ साधसंगत वडभागी पाईऐ॥
आठ पहर जिहवे आराध॥ पारब्रहम ठाकुर आगाध॥
ईहा ऊहा सदा सुहेली॥ हर गुण गावत रसन अमोली॥[2]

भावार्थ: हे जिह्वा! तू हरि के गुण गा। तेरा हर क्षण प्रभु के सिमरन में व्यतीत हो। कानों को भी नाम और हरि की महिमा के सिवाय और कुछ नहीं सुनना और संत की संगति छोड़कर और कहीं नहीं जाना, क्योंकि यह संगति बड़े उच्च भाग्य से प्राप्त होती है। हे जिह्वा! क्या दिन, क्या रात, आठों पहर उस प्रभु का सिमरन जारी रखना। वही हमारा मालिक है और उसकी महिमा बेअंत है। ऐसा करने से तू लोक और परलोक दोनों में सुख पाएगी। जो जिह्वा प्रभु

के गुण गाती है, उसका मूल्य नहीं आँका जा सकता; वह अनमोल हो जाती है।

बनसपति मउली फल फुल पेडे॥ इह रस राती बहुर न छोडे॥
आन न रस कस लवै न लाई॥ कहो नानक गुर भए है सहाई॥[3]

शब्दार्थ: **मउली**=प्रफुल्लित हुई, खिल उठी; **रस कस**=भाँति-भाँति के स्वाद।

भावार्थ: हरि का सिमरन और गुणगान करती मेरी जिह्वा ऐसे खिल उठी है, जैसे वनस्पति खिल उठती है और पौधों में फूल और फल आ जाते हैं। उस रस से इसे इतना आनंद मिलने लगा है कि अब उसे कभी नहीं छोड़ेगी और किसी अन्य रस या स्वाद की तरफ़ आकृष्ट नहीं होगी। गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि इस रसना को हरि के नाम की बख़्शिश गुरु की दया से ही प्राप्त हुई।

सहज अवस्था

सहज अवस्था वह अवस्था है जिसकी प्राप्ति की इच्छा सबसे ऊँचा ध्येय रखनेवाली जीवात्मा ही कर सकती है। इसकी प्राप्ति को साकार करने के लिए जहाँ जीव को श्रेष्ठ करनी और निर्मल रहनी की आवश्यकता है, वहाँ दूसरी ओर प्रभु की अपार कृपा भी आवश्यक है। मन को इंद्रियों के छल और विकारों के आघात से मुक्ति, द्वैत और तेरी-मेरी के विचार का अंत, न ख़ुशी की इच्छा न ग़म का डर, संत की संगति, हृदय में ज्ञान का प्रकाश, अनहद शब्द की कभी न बंद होनेवाली अमृतमयी ध्वनि में लवलीन रहना और अंत में अविनाशी प्रियतम से अपने ही अंदर साक्षात्कार—यह है सहज अवस्था। ऐसे अपूर्व प्रसाद का मूल्य कौन आँक सकता है? नीचे दी जा रही अष्टपदी में गुरु अर्जुन देव आत्मा की इसी अनुपम अवस्था पर प्रकाश डालते हैं।

गुर का सबद रिद अंतर धारै॥ पंच जना सिउ संग निवारै॥
दस इंद्री कर राखै वास॥ ता कै आतमै होए परगास॥
ऐसी द्रिड़ता ता कै होए॥ जा कउ दइआ मइआ प्रभ सोए॥[1]

शब्दार्थ: **पंच जना**=पाँच विकार; **वास**=वश में।

भावार्थ: जो साधक गुरु के शब्द को अपने हृदय में बसा लेता है, वह पाँच विकारों से कोई नाता नहीं रखता, अपनी सभी ज्ञानेंद्रियों और कर्मेंद्रियों को वश में कर लेता है, उसके अंदर ज्ञान की ज्योति प्रकाशित हो जाती है। इस तरह की ऊँची रहनी और करनी उसी की हो सकती है जिस पर परमेश्वर की अपार दया हो।

साजन दुसट जा कै एक समानै॥ जेता बोलण तेता गिआनै॥
जेता सुनणा तेता नाम॥ जेता पेखन तेता धिआन॥[2]

भावार्थ: उसके लिए सज्जन और दुर्जन एक समान हैं। किसी को सज्जन समझकर वह उससे प्रेम नहीं करता, न किसी को दुष्ट जानकर उससे वैर करता है। वह जो कुछ बोलता है वही ज्ञान है। वह सदा प्रभु यानी शब्दधुन में लीन रहता है, उसकी दृष्टि सदा अंतर्मुख होती है और प्रभु के ध्यान में लगी रहती है।

सहजे जागण सहजे सोए॥ सहजे होता जाए सो होए॥
सहज बैराग सहजे ही हसना॥ सहजे चूप सहजे ही जपना॥[3]

भावार्थ: वह चाहे जागता हो या सो रहा हो, उसकी सहज अवस्था भंग नहीं होती। जो कुछ भी होता है, उसे वह मालिक की रज़ा मानता है। इसलिए उसके साथ चाहे कुछ भी हो, उसकी सहज अवस्था प्रभावित नहीं होती। जब वह मौन रहता है या बोलता है, तब भी वह सहज अवस्था में ही होता है। उसकी उदासी या ख़ुशी भी उसकी सहज अवस्था को प्रभावित नहीं करती।

सहजे भोजन सहजे भाउ॥ सहजे मिटिओ सगल दुराउ॥
सहजे होआ साधू संग॥ सहज मिलिओ पारब्रहम निसंग॥[4]

भावार्थ: उसका भोजन शरीर की क़ुदरती ज़रूरतें पूरी करने के लिए होता है, न कि जिह्वा के रस के लिए। उसका ऊँचा तथा पवित्र प्रेम मोह का रूप धारण नहीं करता। उसके मन से छल-कपट पूरी तरह मिट जाता है।

ऐसी अवस्था उसे प्रभु की दया-मेहर से सहज ही मिल जाती है। गुरु की संगति भी उसे अपने आप बिना यत्न के मिल जाती है और निर्लेप प्रभु का हरदम संग सहज ही प्राप्त हो जाता है।

सहजे ग्रिह मह सहज उदासी॥ सहजे दुबिधा तन की नासी॥
जा कै सहज मन भइआ अनंद॥ ता कउ भेटिआ परमानंद॥[5]

भावार्थ: अगर वह गृहस्थ का जीवन बिताता है, तो वह उसमें ग़लतान नहीं हो जाता। उसका संसार से उदासीन होना कमल का जल से अछूते होने की तरह होता है। दुविधा, द्वैत या मेरी-तेरी की भावना का उसके साथ कोई नाता नहीं रहता। सहज अवस्था में स्थित व्यक्ति गहरे आनंद में मग्न रहता है। जिसे वह आनंद मिल गया, समझो कि उसने परमानंद स्वरूप परमेश्वर को पा लिया।

सहजे अंम्रित पीओ नाम॥ सहजे कीनो जीअ को दान॥
सहज कथा मह आतम रसिआ॥ ता कै संग अबिनासी वसिआ॥[6]

शब्दार्थ: सहज कथा=अनहद शब्द; **रसिआ**=रस में मग्न।

भावार्थ: सहज अवस्था में वह प्रभु के अमृत नाम यानी शब्द का रस पीता है। वह औरों को प्रभु नाम के सिमरन का उपदेश देता है। उसकी आत्मा सहज कथा अर्थात् अनहद शब्द की ध्वनि के रस में एक हो चुकी होती है, हर समय प्रभु ख़ुद उसके हृदय में होता है।

सहजे आसण असथिर भाइआ॥ सहजे अनहत सबद वजाइआ॥
सहजे रुण झुणकार सुहाइआ॥ ता कै घर पारब्रहम समाइंआ॥[7]

शब्दार्थ: असथिर=अडोल, स्थिर; **रुण झुणकार**=शब्दधुन।

भावार्थ: उसकी आत्मा की सहज अवस्था स्थायी होती है और वह उसे बहुत प्रिय भी लगती है। अनहद शब्द का ईश्वरीय संगीत उसे सहज रूप से सुनाई देता है और उस शब्द की मधुर झंकार एक अलौकिक वातावरण बनाए रखती है। परमात्मा उसके हृदय में सदा प्रकट रहता है।

सहजे जा कउ परिओ करमा॥ सहजे गुर भेटिओ सच धरमा॥
जा कै सहज भइआ सो जाणै॥ नानक दास ता कै कुरबाणै॥[8]

भावार्थ: जिसके भाग्य में प्रभु की दया से ऐसा लेख लिखा होता है, उसे ऐसा परोपकारी सच्चा गुरु बिना यत्न किए मिल जाता है। सहज अवस्था का महत्त्व क्या है—यह वही जान सकता है जिसे यह अवस्था प्राप्त हो जाए। हम उस भाग्यवान पर बलिहारी जाते हैं।

झूठे सहारे

जो पाथर कउ कहते देव॥ ता की बिरथा होवै सेव॥
जो पाथर की पांई पाए॥ तिस की घाल अजांई जाए॥
ठाकुर हमरा सद बोलंता॥ सरब जीआ कउ प्रभ दान देता॥[1]

शब्दार्थ: घाल=मेहनत; अजांई=व्यर्थ।

भावार्थ: जो पत्थर की मूर्ति को परमात्मा मानते हैं, उनकी सेवा या भक्ति व्यर्थ चली जाती है। इसी प्रकार जो पत्थर को माथा टेककर उसकी पूजा करते हैं, उनका परिश्रम भी व्यर्थ जाता है। हमारा प्रभु परमेश्वर पत्थर की तरह गूँगा नहीं, वह तो अनहद शब्द के रूप में निरंतर बोलता है। उस परमात्मा से की गई विनती व्यर्थ नहीं जाती, कोई जीव उसकी दया से वंचित नहीं रहता।

अंतर देउ न जानै अंध॥ भ्रम का मोहिआ पावै फंध॥
न पाथर बोलै ना किछ देइ॥ फोकट करम निहफल है सेव॥
जे मिरतक कउ चंदन चड़ावै॥ उस ते कहहो कवन फल पावै॥
जे मिरतक कउ बिसटा माहे रुलाई॥
तां मिरतक का किआ घट जाई॥[2]

भावार्थ: इस प्रकार मूर्ति पूजनेवाले को शरीर के अंदर बस रहे परमात्मा का एहसास नहीं होता। एक बेबुनियाद विश्वास के कारण भ्रम में पड़ा वह अपने लिए बंधन पैदा कर लेता है। पत्थर न तो बोल सकता है और न ही कुछ दे सकता है। इसलिए उसकी मेहनत

और सेवा निष्फल जाती है। जो चंदन को घिसकर किसी बेजान शरीर पर उसका लेप करता है, उससे पूछो कि वह क्या फल पाने की आशा करता है? अगर मुरदे को गंदगी में फेंक दिया जाए तो उसका कुछ नहीं बिगड़ता।

कहत कबीर हउ कहउ पुकार॥ समझ देख साकत गावार॥
दूजै भाए बहुत घर गाले॥ राम भगत है सदा सुखाले॥[3]

भावार्थ: अरे मूर्ख! माया के पुजारी! मैं पुकार-पुकारकर तुझे जताने का प्रयत्न कर रहा हूँ; कुछ समझ और देख। परमात्मा की ओर से विमुख होकर अन्य पदार्थों से प्रेम करनेवाले अनेकों के घर तबाह हो चुके हैं। सुखमय जीवन वही बिताता है जो परमात्मा की भक्ति में मग्न हो जाता है।

बहुत दरब कर मन न अघाना॥ अनिक रूप देख नह पतीआना॥
पुत्र कलत्र उरझिओ जान मेरी॥ ओह बिनसै ओए भसमै ढेरी॥
बिन हर भजन देखउ बिललाते॥
ध्रिग तन ध्रिग धन माइआ संग राते॥[4]

शब्दार्थ: **दरब**=धन-दौलत।

भावार्थ: मनुष्य चाहे कितनी ही धन-दौलत इकट्ठी कर ले, उसका मन नहीं भरता; जितना उसके पास है, उससे और ज़्यादा की कामना करता रहता है। इसी प्रकार अनगिनत सुंदर शक्लें देखकर भी उसकी रूप की भूख शांत नहीं होती। मनुष्य पुत्र, स्त्री आदि को अपना समझकर उनके मोहजाल में फँस जाता है। कड़ी मेहनत या हेराफेरी से जो भी धन कमाया जाता है, वह भी साथ नहीं जाता, अपने रिश्तेदार भी अंत समय साथ नहीं निभाते, सब मौत का ग्रास होकर मिट्टी में जा मिलते हैं।

सच तो यह है कि अगर धन का सुख भी मिल जाए और परिवार का प्यार भी, परंतु प्रभुभक्ति की ओर ध्यान न दिया जाए, तो आख़िर रोना ही पड़ता है। शरीर और धन-संपत्ति यानी माया में ग्रस्त लोगों का जीवन धिक्कार है। ऐसे जीवन की निरर्थकता स्पष्ट करते हुए गुरु साहिब उदाहरण देते हैं:

जिउ बिगारी कै सिर दीजह दाम॥ ओइ खसमै कै ग्रिह उन दूख सहाम॥
जिउ सुपनै होए बैसत राजा॥ नेत्र पसारै ता निरारथ काजा॥[5]

शब्दार्थ: **बिगारी**=फोकट के काम करना; **सहाम**=सहन करना।

भावार्थ: बेगारी के सिर पर चाहे कितना ही धन लाद दिया जाए, वह आख़िर उसके मालिक के ही घर पहुँचता है। ढोनेवाला तो केवल मेहनत करता और खीझता है। किसी को सपने में राजगद्दी पर बैठने का अवसर मिल जाए तो जब उसकी आँख खुलती है, उसके किए हुए सब कार्य (महल, क़िले बनवाना, दूर-दूर तक इलाक़ा जीतना) व्यर्थ सिद्ध होते हैं।

जिउ राखा खेत ऊपर पराए॥ खेत खसम का राखा उठ जाए॥
उस खेत कारण राखा कड़ै॥ तिस कै पालै कछू न पड़ै॥[6]

शब्दार्थ: **कड़ै**=दुःख भोगता है।

भावार्थ: कोई व्यक्ति किसी पराए खेत की रखवाली करने के लिए बिठा दिया जाए, तब भी फसल का मूल्य खेत का मालिक ही प्राप्त करता है, रखवाली करनेवाला तो कई रात जाग-जागकर और फसल चोरी करने आए बदमाशों के हाथों चोटें खाकर भी कंगाल ही रह जाता है। उसके पल्ले कुछ नहीं पड़ता।

जिस का राज तिसै का सुपना॥ जिन माइआ दीनी तिन लाई त्रिसना॥
आप बिनाहे आप करे रास॥ नानक प्रभ आगै अरदास॥[7]

शब्दार्थ: बिनाहे=बरबाद करता है; **करे रास**=बनाता, सँवारता है।

भावार्थ: जिस प्रभु ने राज्य बख़्शा था, उसे सपने में बदल देनेवाला भी वही था। जिसने धन दिया था, उसी ने संतोष के स्थान पर और अधिक कमाने की तृष्णा भी साथ दे दी। वह ख़ुद बनानेवाला है और ख़ुद ही मिटानेवाला। गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि हम जीवों को तो उस सर्वसमर्थ के सम्मुख विनती ही करनी चाहिए।

आपन तन नही जा को गरबा॥ राज मिलख नही आपन दरबा॥
आपन नही का कउ लपटाइओ॥ आपन नाम सतगुर ते पाइओ॥[8]

शब्दार्थ: गरबा=अहंकार; **मिलख**=संपदा, जायदाद; **दरबा**=धन-दौलत।

भावार्थ: जिस शरीर पर तुझे इतना मान है, वह तेरा अपना नहीं है। उसकी रचना तूने ख़ुद नहीं की और वह तेरे साथ नहीं जाएगा। इसी प्रकार हुकूमत, जायदाद, धन-दौलत, जो कभी किसी के नहीं बने, तुझसे भी छिन जाएँगे। फिर उनसे इतना मोह किसलिए? उनकी चिंता में क्यों मरना? केवल एक नाम को ही अपना कहा जा सकता है, उस परमात्मा के नाम को जिसकी बख़्शिश सतगुरु द्वारा होती है।

सुत बनिता आपन नही भाई॥ इसट मीत आप बाप न माई॥
सुइना रूपा फुन नही दाम॥ हैवर गैवर आपन नही काम॥[9]

शब्दार्थ: सुत=पुत्र; **बनिता**=पत्नी; **इसट मीत**=प्रिय मित्र; **रूपा**=चाँदी; **दाम**=नक़द धन; **हैवर गैवर**=बढ़िया घोड़े, हाथी आदि सवारियाँ।

भावार्थ: यह सही है कि पुत्र, स्त्री, भाई, प्रिय मित्र, माता-पिता आदि से हमारा जन्म से रिश्ता है, लेकिन इनका अपनापन भी झूठा है। सोना-चाँदी, रुपये-पैसे आदि भी हमारे नहीं हैं। हाथी, घोड़े जैसी शानदार सवारियाँ भी संसार से जाते समय हमारे काम नहीं आएँगी।

कहो नानक जो गुर बखस मिलाइआ॥
तिस का सभ किछ जिस का हर राइआ॥[10]

शब्दार्थ: राइआ=राजा।

भावार्थ: हाँ, जिसको गुरु दया करके प्रभु से मिला देता है और प्रभु जिसका अपना बन जाता है, उसका सब कुछ अपना हो जाता है। जिसने हरि को अपना लिया, उसने सब कुछ पा लिया।

विषय-विकार

नैनहो नीद पर द्रिसटि विकार॥ स्रवण सोए सुण निंद वीचार॥
रसना सोई लोभ मीठै साद॥ मन सोइआ माइआ बिसमाद॥
इस ग्रिह मह कोई जागत रहै॥ साबत वसतु ओह अपनी लहै॥
सगल सहेली अपनै रस माती॥ ग्रिह अपुने की खबर न जाती॥
मुसनहार पंच बटवारे॥ सूने नगर परे ठगहारे॥[1]

शब्दार्थ: बिसमाद=मोह रखा है; **मुसनहार**=लुटेरे; **बटवारे**=ठग।

भावार्थ: हमारे नेत्र सच्चाई की तरफ़ से सोए हुए हैं, क्योंकि वे विकारों और पराए धन आदि की तरफ़ ध्यान देते हैं। कान भी दूसरों की निंदा-चुग़ली की कथा-कहानियाँ सुनकर सोए हुए हैं। जिह्वा को रसीले पदार्थों के स्वाद ने सुला रखा है और मन ख़ुद माया की मस्ती में सोया पड़ा है। कोई विरला व्यक्ति ही, जो उसकी सुरक्षा के लिए सावधान रहता है, इस मानव शरीररूपी घर में अपनी पूरी पूँजी बचाकर रख पाता है। इस घर में रहनेवाली पाँचों सखियाँ (इंद्रियाँ) अपनी-अपनी पसंद के रस लेने में मग्न हैं, मनुष्य की संपत्ति का कैसे नुक़सान हो रहा है, उसको कुछ पता नहीं। काम, क्रोध आदि पाँच लुटेरों ने देखा कि घर का मालिक सोया पड़ा है, इसका कोई चौकीदार नहीं है, इसलिए वे उसे लूट रहे हैं।

उन ते राखै बाप न माई॥ उन ते राखै मीत न भाई॥
दरब सिआणप ना ओए रहते॥ साधसंग ओए दुसट वस होते॥

कर किरपा मोहे सारिंगपाणि॥ संतन धूर सरब निधान॥
साबत पूंजी सतगुर संग॥ नानक जागै पारब्रहम कै रंग॥
सो जागै जिस प्रभ किरपाल॥ इह पूंजी साबत धन माल॥[2]

शब्दार्थ: दरब=धन; **सारिंगपाणि**=परमात्मा।

भावार्थ: ऊपर बताए हुए पाँच डाकुओं से न पिता बचा सकता है न माता, न दोस्त न भाई। धन देकर उनसे पीछा नहीं छुड़ाया जा सकता और न ही सही दलीलों से समझाया जा सकता है। वे दुष्ट अगर वश में आते हैं तो केवल साधु की संगति से।

इसलिए गुरु साहिब परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु! मुझे संतों के चरणों की धूलि बख़्श जो सब ख़ज़ानों से श्रेष्ठ है। सतगुरु की संगति से ही मेरी साँसों की पूँजी बरबाद होने से बच सकती है। मैं परमेश्वर के प्यार में सराबोर रहकर ही जागता रह सकता हूँ। अपनी सावधानी से न कोई इंद्रियों के रसों की नींद से बच सकता है और न पाँच विकारों के प्रहार से। प्रभु की दया होने पर ही मनुष्य अपनी साँसों की पूँजी को लुटने से बचाकर उसे प्रभु की प्राप्ति के लिए काम में ला सकता है।